CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि यशःकीर्ति विरचित

चंदप्पह चरिउ

[अपभ्रंश-भाषा का महत्त्वपूर्ण चरित-काव्य]

5273

सम्पादक :
डॉ० भागचन्द जैन भास्कर

प्रकाशक :
वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

14'5

वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट की
ओर से समीक्षार्थ/स्वाध्याय हेतु
सादर भेंट

सुरेश चन्द जैन सरसावा
प्रबन्धक/संयुक्त मंत्री

डॉ० शीतल चन्द जैन
मंत्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाकवि यशःकीर्ति विरचित

चंदप्पह-चरिउ

(अपभ्रंश-भाषा का महत्वपूर्ण चरित-काव्य)

5273

सम्पादक

डॉ. भागचन्द्र जैन भास्कर डी. लिट्.
अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग, नागपुर
विश्वविद्यालय, नागपुर

वीरसेवा मन्दिर ट्रस्ट प्रकाशन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थमाला-सम्पादक व नियामक

डॉ० दरबारीलाल कोठिया
मानद मंत्री, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट

चंदप्पह-चरिउ (चन्द्रप्रभ-चरितम्)

रचयिता : महाकवि यशःकीर्ति

सम्पादक
डॉ० भागचन्द्र जैन भास्कर
अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

ट्रस्ट-संस्थापक
आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

प्रकाशक
मंत्री, वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट,
C/o पं. बंशीधर व्याकरणाचार्य,
बीना (सागर), म. प्र.

प्रथम संस्करण : 1986

मूल्य : बीस रुपये

प्राप्ति स्थान
व्यवस्थापक, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट,
बी. 32/13 बी. नरिया,
वाराणसी–5, (उ०प्र०)

मुद्रक : शीतल प्रिन्टर्स, फिल्म कालोनी, जयपुर–3

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय

1985 में 'भाग्य और पुरुषार्थ : एक नया अनुचिन्तन' को प्रकाशित करते हुए उसके प्रकाशकीय में हमने लिखा था कि आगामी वर्ष के प्रकाशनों में प्रस्तुत 'भाग्य और पुरुषार्थ : एक नया अनुचिन्तन' के अतिरिक्त निम्न प्रकाशन भी हैं—

1. सम्यग्ज्ञान-चिन्तामणि : डॉ. पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य
2. यापनीय संघ और उसका साहित्य : डॉ. कुसुम पटोरिया
3. देवागम-हिन्दी पद्यानुवाद : आचार्य विद्यासागर
4. चंदप्पह-चरिउ : डॉ. भागचन्द्र जैन, भास्कर
5. पत्र-परीक्षा : आ. विद्यानन्द : सम्पादन—डॉ. दरबारीलाल कोठिया
6. समन्तभद्र-ग्रन्थावली : संकलन—डॉ. गोकुलचन्द्र जैन

इन ग्रन्थों में प्रथम और तृतीय नं. के ग्रन्थ प्रकाशित होकर पाठकों के समक्ष आ गये हैं। पंचम और षष्ठ नम्बर के ग्रन्थ छप तो गये हैं किन्तु उनकी प्रस्तावनादि सामग्री अवशेष है। मेरे बनारस में स्थिर न रहने के कारण द्वितीय संख्यक ग्रन्थ अब तक प्रेस में नहीं दिया जा सका।

आज प्रसन्नता है कि चतुर्थ संख्यक 'चंदप्पह-चरिउ' ग्रन्थ छपकर सामने आ रहा है। इसके रचयिता महाकवि यशः कीर्ति "महाकइजसकित्तिविरइए........" समाप्तिपुष्पिका वाक्य, सन्धि 11, कडवक 29, पृ. 168) हैं। यह अपभ्रंश भाषा का चरित-महाकाव्य ग्रन्थ है। इसमें महाकवि ने लोकप्रिय अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का चरित बड़े सुन्दर ढंग से गुम्फित किया है। अपभ्रंश-भाषा प्राकृत की उत्तर कालीन और हिन्दी की जन्मदात्री तत्कालीन लोक-भाषा है। इस भाषा में स्वयम्भू, पुष्पदन्त आदि जैन कवियों ने कथा-साहित्य का सृजन करके उसे जन-सामान्य की प्रिय भाषा बनाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थमाला-सम्पादक व नियामक

डॉ॰ दरबारीलाल कोठिया

मानद मंत्री, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट

चंदप्पह-चरिउ (चन्द्रप्रभ-चरितम्)

रचयिता : महाकवि यशःकीर्ति

सम्पादक

डॉ॰ भागचन्द्र जैन भास्कर

अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

ट्रस्ट-संस्थापक

आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

प्रकाशक

मंत्री, वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट,
C/o पं. बंशीधर व्याकरणाचार्य,
बीना (सागर), म. प्र.

प्रथम संस्करण : 1986

मूल्य : बीस रुपये

प्राप्ति स्थान

व्यवस्थापक, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट,
बी. 32/13 बी. नरिया,
वाराणसी–5, (उ॰प्र॰)

मुद्रक : शीतल प्रिन्टर्स, फिल्म कालोनी, जयपुर–3

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशकीय

1985 में 'भाग्य और पुरुषार्थ : एक नया अनुचिन्तन' को प्रकाशित करते हुए उसके प्रकाशकीय में हमने लिखा था कि आगामी वर्ष के प्रकाशनों में प्रस्तुत 'भाग्य और पुरुषार्थ : एक नया अनुचिन्तन' के अतिरिक्त निम्न प्रकाशन भी हैं—

1. सम्यग्ज्ञान-चिन्तामणि : डॉ. पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य
2. यापनीय संघ और उसका साहित्य : डॉ. कुसुम पटोरिया
3. देवागम-हिन्दी पद्यानुवाद : आचार्य विद्यासागर
4. चंदप्पह-चरिउ : डॉ. भागचन्द्र जैन, भास्कर
5. पत्र-परीक्षा : आ. विद्यानन्द : सम्पादन—डॉ. दरबारीलाल कोठिया
6. समन्तभद्र-ग्रन्थावली : संकलन—डॉ. गोकुलचन्द्र जैन

इन ग्रन्थों में प्रथम और तृतीय नं. के ग्रन्थ प्रकाशित होकर पाठकों के समक्ष आ गये हैं। पंचम और षष्ठ नम्बर के ग्रन्थ छप तो गये हैं किन्तु उनकी प्रस्तावनादि सामग्री अवशेष है। मेरे बनारस में स्थिर न रहने के कारण द्वितीय संख्यक ग्रन्थ अब तक प्रेस में नहीं दिया जा सका।

आज प्रसन्नता है कि चतुर्थ संख्यक **'चंदप्पह-चरिउ'** ग्रन्थ छपकर सामने आ रहा है। इसके रचयिता महाकवि यशः कीर्ति **"महाकइजसकित्तिविरइए……"** समाप्तिपुष्पिका वाक्य, सन्धि 11, कडवक 29, पृ. 168) हैं। यह अपभ्रंश भाषा का चरित-महाकाव्य ग्रन्थ है। इसमें महाकवि ने लोकप्रिय अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का चरित बड़े सुन्दर ढंग से गुम्फित किया है। अपभ्रंश-भाषा प्राकृत की उत्तर कालीन और हिन्दी की जन्मदात्री तत्कालीन लोक-भाषा है। इस भाषा में स्वयम्भू, पुष्पदन्त आदि जैन कवियों ने कथा-साहित्य का सृजन करके उसे जन-सामान्य की प्रिय भाषा बनाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके सुयोग्य सम्पादक डॉ. भागचन्द्र जैन, भास्कर हैं, जिन्होंने इसका सम्पादन बड़ी योग्यता, परिश्रम और लगन के साथ किया है। उन्होंने इस भाष्य का वैशिष्ट्य अपनी अंग्रेजी और हिन्दी में लिखी प्रस्तावनाओं में प्रतिपादित किया है तथा पूरे ग्रन्थ का हिन्दी सार, महत्वपूर्ण शब्द-सूची आदि देकर ग्रन्थ को अनुसन्धित्सुओं एवं जन-सामान्य के योग्य बना दिया है। उन्हें इसके प्रकाशन में अनेक कठिन झेलनी पड़ी हैं। उनके लगातार बाहर रहने के कारण मुद्रण की अशुद्धियां भी रह गई हैं और प्रकाशन में विलंब भी हुआ है। उन्हें हम शुभाशीर्वाद के साथ धन्यवाद देते हैं। आशा है हिन्दी–प्रेमी इस कृति को समादृत करेंगे।

बीना (सागर), म० प्र०
15 अगस्त, 1986

डॉ० दरबारीलाल कोठिया
मानद मंत्री, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समर्पण

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी—
साहित्य के मर्मज्ञ मनीषि-
विद्वान साहित्यकार,
'अनेकान्त' के मूर्धन्य संपादक
स्वर्गीय पण्डित परमानन्द शास्त्री
को सादर समर्पित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय - सूची

प्रथम संधि

विषय	पृष्ठ
भ. चन्द्र प्रभु के गुणों के वर्णन की प्रतिज्ञा	1
सज्जन-दुर्जन वर्णन	1
रत्न संचय नगर का वर्णन	2
कनकप्रभ राजा एवं कनकमाला का सौन्दर्य वर्णन	3
पद्मनाथ का जन्म वर्णन	3
कीचड़ में फंसे बैल को देखकर कनकप्रभ को वैराग्य उत्पत्ति	4
संसार की असारता	4
पद्मनाभ का राज्याभिषेक और कनकप्रभ का श्रीधर मुनि के पास दीक्षा धारण ।	5

द्वितीय सन्धि

श्रीधर मुनि के आगमन की सूचना	6
उद्यान की महिमा और श्रीधर मुनि को वहां बैठे देखना	6
पद्मनाभ द्वारा मुनि स्तुति	7
श्रावक के पंचाणुव्रतों का उपदेश	8
सुगन्धि देश एवं श्रीपुर नगर का वर्णन ।	8
श्रीषेण राजा का वर्णन	8
श्रीषेण की रानी श्रीकान्ता का सौन्दर्य वर्णन और उसकी खेद-खिन्नता का कारण पूछना	9
चारण ऋद्धि मुनियों का आगमन	10
मुनिराज द्वारा धर्मोपदेश	11
राजा को पुत्रजन्म का ज्ञान और सागारधर्म का पालन	11
गुणव्रत शिक्षाव्रतों का वर्णन	11

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीकान्ता का गर्भाहरण 12
श्रीधर्म नामक पुत्र का जन्म
प्रभावती के साथ विवाह फिर
राज्याभिषेक 12

तृतीय सन्धि

श्रीषेरण को वैराग्योत्पत्ति 13
संसारी का वर्णन 14
पुत्र की शिक्षा दीक्षा 14
श्रीधर्म का राज्याभिषेक, दिग्विजय, मुक्ति 15
घातकी खण्डवर्ती अलकादेश तथा कोशला नगरी का वर्णन 16
राजा अजितेजय, रानी रजित सेना तथा पुत्र
अजितसेन का वर्णन 17
अजितसेन का राज्याभिषेक 18
पुत्र का अपहरण तथा राजा का विलाप 19
तपोभूषण मुनि का आगमन और पुत्र के अपहरण का वृत्तान्त 20

चतुर्थ सन्धि

अजितसेन का दिग्विजय वर्णन तथा श्रावक व्रत ग्रहण 21–28

पञ्चम सन्धि

अजितसेन का दिग्विजय प्रयाण
वसन्तऋतु, कामकेलि, वैराग्य तथा स्वर्गगमन वर्णन 29–35

षष्ठ सन्धि

पद्नभ द्वारा गणराज को वश में करना तथा पृथ्वीपाल के
दूत का आगमन 36
दूत का कथन 37
स्वर्णनाभ युवराज द्वारा उत्तर 37
पद्मनाभ का कथन 38
पुरुभूति मंत्री तथा युवराज की वार्ता 39

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रात की रंगरेलियों का वर्णन	39
युद्ध वर्णन	40–41
वैराग्य वर्णन	41
चारकषाय एवं सोलहकारण भावना	42–43
अनुत्तर विमान गमन	44–45

सप्तम सन्धि

पूर्व देश का वर्णन	46
चन्द्रपुरी नगरी, महासेन एवं लक्ष्मणा का वर्णन	47
गर्भ पूर्व का वर्णन	48
स्वर्ग का वर्णन	49–50

अष्टम सन्धि

सुमेरु पर्वत पर जाना, चन्द्रपुरी नगरी वापिस आना एवं जन्मकल्याणक महोत्व का वर्णन	50–58

नवम सन्धि

दीक्षाकल्याण महोत्सव वर्णन	59–67

दशम सन्धि

केवलज्ञान कल्याण वर्णन	68–73

एकादश सन्धि

धर्मप्रवचन एवं निर्वाणकल्याणक महोत्सव वर्णन	74–88

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Introduction

The present Apabhraṁśa text of the Candappahacariu (CPC.) critically edited for the first time is based on the material from the following Manuscripts :—

MS. KA (क)

It was received, with thanks, from late Pt. Paramanand Shastri, the well-known scholar of Jain literature in 1974. It has folios 6, the first being written on only one side. It measures 27 C.M. X 12 C.M., lines per page about 12, letters in each line about 50, margin right and left 3 C.M., top 2 C.M. and bottom 1½ C.M. Handwriting is beautiful and uniform. One particular sign with red ink spot is made in the middle of each page. The Ms. starts with the Granthasaṅkhyā. It has eleven Sandhis (Sargas) and all the Sandhis end with "Iya siri Candappahacarie Mahākai Jasakitti viraie..... sandhi samatto." From its colophon we understand that the MS. was completed in Samvat 1530 (1493 A.D), the 5th of the bright fortnight of Phālagun on a request made by Sidhapāla, the son of Kumvar Singh belonging to Humbaḍkula. The copy was made down by Brahmavisa belonging to Gangawāl Gotra. The MS. indicates the following ascetic genealogy of the author :—Prabhācandra—Padmanandi—Jinacandra—Bhuvanakīrti. The peculiarities of the Ms. are as follows :—

1. It has Na in beginning but in middle the joint NNa becomes NNAU, such as Nisanniu, Visannau.
2. The use of ya and i in place of i and ya respectively.
3. There is no difference between va and ba.
4. The use of ccha in place of ttha.

MS. KA (ख)

This Ms. belongs to Amera Shastra Bhandar preserved by the Jain Vidyā Sansthān, Mahāvīraji, Jaipur. Folios are 117, size 26 CM. X. 11 C.M , lines per page 9, letters per line about 40, margin

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

right and left 2 C.M. The colophon throws the light that the MS. was copied down in Sambat. 1583 (1526 A.D.) on Wednesday, the 3rd of the bright fortnight of Āśāḍa at Campāvatī Nagarī during the reign of Rāṇā Sangrām. It was written at the instance of Maṇḍalāchārya Dharmachandra, the co-disciple of Abhayachandra who has been referred to in the manuscript of Nāyakumāracariu. It was written for a layman of the Khandelawāla family Sahagotri. The spiritual line of teachers is as follows:—Kundakundacharyāmnāya—Padmanandī—Śruta candra—Jinacandra— Prabhācandra— Maṇdalācārya Dharamacandra.

The peculiarities of the MS. are as follows:—

1. Nasal Ṇa (ण) occurs instead of Na throughout.
2. Ya in place of i (इ)—Yaśruti
3. Hu instead of ho.
4. Anusvāra tendencies.
5. The portions which are left out in the Ka MS. are available here.

MS. GA (ग)

The MS. Ga belongs to Amer Shastra Bhandara, Jaipur. It has folios 120, size 25 C.M. X 12 C.M., lines per page vary from 10 to 11; letters in each line about 35, margin right and left 3 C.M.; top and bottom 2 C.M., Ghattā and number of verses are written in red ink. It bears glosses on the margin. The Ms. begins with "Oma Namaḥ Si dhebhyaḥ.' Its colophon indicates that the Ms. was completed in Samvat 1603 (1546 A.D.) on Saturday, the 10th of the Bright fortnight of Śrāvaṇa during the reign of Rāva Śuritāna, the son of Hādā Couhānavanshī Sūryamālā. It was written for a layman of the Khandelawalānvayī Saha Vothitha. The peculiarities of the MS. are as follows:—

1. It is based perhaps on the MS. Kha.
2. a (अ) and i (इ) are used in place of ya (Yaśruti).
3. a, ya, u and ma are used in place of va.
4. Anusvāra.
5. Glosses on the margin.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

MS. GHA (घ)

This Ms. also belongs to Amer Shastra Bhandar, Jaipur which is kept with the Jain Vidya Sansthan, Shrimahaviraji. It bears folios 108, size 27 C.M., lines per page 10, letters per line about 33, margin all 2–2 C.M. It ends with the colophon which informs that the MS. was completed in Samvat 1611 (1554 A.D.) on Thursday, the 5th of the date fortnight of Chaitra at Alhadpur in the Mallināth temple. It was copied down by a disciple of Dharmachandra belonging to Khandelavālanvayī popalyagotra. The peculiarties of the MS. are as follows:—

1. The uses of Yaśruti and ekāra.
2. Use of vakāra.
3. Use of Hu.
4. Anusvāra.
5. Glosses in the margin.
6. Similarties with the Ms. Kha.

1. PRINCIPLES OF TEXT CONSTITUTION

The following principles in present editing work have been adopted with all considerations:—

1, The proposed edition of the Candappahacarıu is mainly based on the MS. Ka which is the oldest one. Other Mss. are utilized for justifying the readings in the text and the readings are mentioned accordingly in the footnotes.
2. Na (न) has been changed into Ṇa (ण) initially, medially and in a conjunct group.
3. Va and ba have been used according to Sanskrit or varnacular usages.
4. Ccha(च्छ) and ttha (त्थ) are included according to the meaning.
5. Anusvāra has been sometimes ignored.
6. U (उ) is retained.

2. THE AUTHOR AND HIS PATRON:

The history of Jain tradition indicates that there have b en a number of Āchāryas by name of Yaśaḥkīrti such as the author of Candappahacariu, author of Pāṇdavapurāṇa (Samvat 1497), disciple of Ratnakīrti (Samvat 1693), the Bhattarak of Jorahat, branch (17th C,A.D.), the Bha. of Mathuragaccha (18th C.AD.), Vijayasena's

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

disciple, the disciple of Vimalakīrti, disciple of Rāmakīrti and so on. Of these, the controversy exists with the first two Yaśaḥkīrtis who are quite independent personalities in my opinion. On the basis of literary evidence it can be said that the author of the CPC belongs to the period of Siddhapāla who may be placed around 1173 A.D. Secondly, the poet has himself said as Puṣkaragaṇī. He must have been, therefore, from Puṣkara area of Ajmer (Rajasthan).

The poet has remembered his predecessors like Kundakunda, Samantabhadra, Akalaṅka, Jinasena, Siddhasena with all honour of appreciation. The author of the present epic is silent about his biographical details. It is, therefore, difficult to fix any certain period of his existence. However, it can be decided approximately on other grounds. The oldest Ms. of the CPC. is available of Samv. 1530. He cannot, therefore, be placed beyond this period, i. e. 1473 A. D. The poet has, of course, indicated at the concluding part (Puṣpikā) that he had composed the proposed work at the instance of Sidhapāla, the son of Kumarasinh belonging to Humbaḍakula. Siddhapāla must be onnected with Cālukya king Kumārapāla. The poet has also referred in his eulogy (Praśasti) to the name of a village Ummattagāma of Gujarat state. As we kn w, the last period of Kumārpala is V. Sam. 1230 (1173 A.D). Therefore, Siddhapāla can easily be placed around this period.

Yasaḥkīrti appears to have a great influence of Vīranandī's Candraprabhacaritam which belongs to the 11th Century A.D. This point has been elebroted in detail in the Hindi Introduction to the CPC. On these grounds it can be infurred that Yaṣaḥkīrti of the CPC. should have been earlier than that of Yaṣḥkīrti of Pāṇḍavpurāṇa Consequently, his existence can be proved in the 13th Century A.D. Śrīdhar, Madankīrti, Bhāvasen Traivedya, Āśādhara, Narendrakīrti, Arhaddāsa etc. might have been his contemperory scholars.

3. CONTENTS OF CANDAPPAHACARIU

The subject matter of the CPC. is to narrate the seven Bhavas of Candraprabha, the eighth Tīrthankar of Jain tradition. It is based on the Padmapurāṇa, Harivansapurāṇa and Uttarpurāṇa in general and Candraprabhacaritam of Vīranandi in Particular. The Mahākāvya is divided into eleven Sandhis.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

1. The auther, to begin with, directs salution to Chandraprabha and then Pañca Parameṣthis with an oath to write an epic CPC. He then refers respectfully to a numbur of Ācharyas like Kundakunda, Samantabhadra, Akalaṅka, Devanandī, jinasen and Siddhasen. He discussed traditionally the qualities and defects of a gentle man and malicious person respectively, and then started the story of the Tīrthaṅkara.

In the second Dhātakīkhaṇḍ Dwīpa, there is a country Maṅgalāvatī by name. There lived Kanakaprabha king with his queen Svarṇamālā and prince Padmanābha. One day Kanakaprabhā, conceived the transiency of world as soon as he happened to vasualise an old bullock fallen in mud then renounced the world by coronating his son to his kingdom.

2. While Padmanābha was seated in the inner assembly, the door-keeper left an exciting news that Śrīdhar, a Jain Muni came down to the city and consequently, the garden flowered untimely. The king with a great enthuism visitted the place, got the sermon from him and enquired about his own past births. Śrīdhar described them and said "There is a city Śrīpur by name in the west Videh. Its king Śrīṣena and queen Śrīkāntā were not happy as they had no issues. The reason was that looking to a pregnant lady, Śrīkāntā prayed that she should not have any child. This Nidāna has been put to an end and now the time is nearer when she would be begeting a nice child." The queen got accordingly pregnancy and gave birth to a son Śrīdharma by name. He was afterwards married with princess Prabhāvatī.

3. Śrīṣeṇa handed over the kingdom to Śrīdharma and became Muni. Śrīdharma then proceeded to attain victory over rullers and came back to the city with a great success. He also finally renounced the world, died and became Śrīdharadeva by name in the Saudharma Svarga. Śrīdhara then took a birth to Ajitasenā, the queen of Ajitañjaya and got name Ajitasena.

4. One day Ajitasena was unfortunately planderred and thrown away in Manoramā lake by Caṇḍaruci. Ajitasena somehow reached to the bank of Paruṣā forest and then climbed to Añjanagiri. There he had to fight with Hiraṇyadeva who did so just to test his courage and power. He then appeared and requested for having his cooper-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ation at any critical moment. Narrating an event occurred in previous birth he stated that you were a king of Śrīpur where a quarrel had started between Śaśi and Sūrya. Śaśi had stolen the wealth of Sūrya You rested with a justice, managed to get return the wealth to Sūrya and declared capital punishment to Śaśi. Śaśi has been by the name of Caṇḍaruci who had thrown you in the lake and Sūrya by name of Hiraṇ,adeva, myself.

P ince Ajitasena then came out of the forest and entered into the country Ariñjaya. At the samo time, its king Jayav ırmā had decided to have an engagement of his daughter Śaśiprabhā with king Mahen dra, but acknowledging the fact from ast ologers that Mahendra had a short span of life, he relinguished the idea. H. nce, the battle started between Jayavarmā and Mahendra. Ajitasena supported Jayavarmā and defeated Mahendra.

Another sub-ṣtory starts from this point. There is situated a city Ādityapur by name in south of Vijayārdha mountain. Dharaṇīdhvaja was its king. One day Priyadharma Brahmacārī reached to him and said that his life would be extinguished by such a person who was married to Śaśiprabhā. Dharaṇīdhvaja then asked Jayavarmā to marry his daughter with him. Jayavarmā refused to do so and hence war started between them. Prince Ajitasena jumped in between. He remembered immidiately Hiraṇyadeva who helped him all the while. Both together defeated Dharaṇīdhavaja. Consequently as a token of gratefulness, Jayavarmā arranged the marriage of his daughter Śaśiprabhā with Ajitasena. Subsequently, Ajitasena came back to his father who handed over his responsibility to him. Meanwhile, Ajitañjaya met with Svayamprabha Tīrthaṅkara who preached him the conception of Dharma and Karma.

5. After returned t ı Ayodhyā from a successful military operations against all the kings, Ajit ısena was greatly and affectionately welcomed by the people. In morning while he was seated in the Sabhābhavan, a report reached tɔ him that an eliphant had killed a person. Having been disguished with the eve t he relinquished the worldliness, accepted Jinadīkṣā, died and took birth in the sixteenth heaven Acyuta.

6. Concluding his talk Śrīdhara Muni said that from Acyuta heaven you usherred into abdomen of Suvarṇamālā, the queen of

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Kanakaprabhā and reborn as prince Padmanābha. He also said that this can be varified if after ten days an elephant comes to you leaving his own group. The incident accordingly occurred and the king capture; the elephant Vanakeli. One day Prathvipāla conveyed a massage to him that had he did not release the elephant within thirty days, he would have to face the battle. Padmanābha opted the second alternate. Prathvipāla was defeated, Padmanābha then gave up the worldliness, accepted Jinadīkṣā, passed away and took birth in Vaijayanta heaven.

7–8. From this Sandhi, the story of Tīrthṅkara Candraprabha is started. Mahāsen was a king of Candrapurī. During seventh month of pregenency period, queen Lakṣmaṇā saw the sixteen dreams and begot a son Chandraprabha by name who was taken away by Devas to Sumeru for the Abhiṣeka.

9. The story moves fastly. Candraprabha was very brilliant, industrious, couragious and powerful. He was married and coronated at the appropriate time. One day an old man reached to him with a request to save his life and then became invisible. He was, as a matter of fact, Dharmarucideva who instructed and diverted the mind o Candraprabha to the spiritual life. Consequently, Chandraprabha handed over his kingdom to son Varacandra and renounced the world.

10–11. The tenth Sandhi describes the way of spiritual life, penance and meditaion of Candraprabha who attained finally Kevalihood. The eleventh Sandhi submits the detailed account of the Samavasaraṇa and Atiśayas and penance. At the last, the Tīrthaṅkara attained Nirvāṇa from Sammedācala in the month of Bhādrapada. The men and Devas celebrated the Mokṣakalyāṇaka with a great zeal.

4. CRITICAL REMARKS.

Yaśaḥkīrti's CPC. is mainly based on the Candraprabhacaritam of Mahākavi Vīranandi. Both the epics run on parallel lines with slight changes regarding the arrangement of Sandhis and Sargas. Vīranandi divided his work into eighteen Sargas whereas Yaṣaḥkīrti completed his CPC. in eleven Sandhis. On our critical study, we easily observe that Yaṣḥkīrti has arranged the story in more systame-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

tic and impressive way, though with fast movement. This point has been dealt with in detail in Hindi introduction to the CPC.

Yaṣaḥkīrti has enriched his work with vast informations and inherited from other earlier works directly or indirectly. For poetic imgines, the author of the CPC. appears to have immense impect of Kālidāsa, Bhavabhūti, Māgha and Śrīharṣa, in addition to Somadeva and Viranandi. The religious and philosophical impect can also be observed from the works of Āchārya Kundakunda, Umāsvāmī, Samantabhadra, Siddhasena, Akalaṅka, Jinasena and so on.

The CPC. is undoubtedly an eminent epic written in Apabhraṅśa. All the Puṣpikās refer to the author as Mahākavi Yasaḥkīrti who ha followed all the norms and objects of Mahākāvya as directed by Sanskrit Acharyas. He utilized his radiance to make the story more popular with applying all the Rases, Alaṅkāras and other specific characteristics. For instance, in the context of amusement of Ajitasena and others, the poet has utilized his geniusness the seasons for Śraṅgārarasa, the battles for Vīrarasa and the introduction to Tattvas for Shāntaras. The Karuṇarasa and Vātsalyarasa can also be seen at the time of distress and childish pranks respectively. He also appears to have a view that the inclusion of Viśmitarasa and Adhyātmarasa (11·28) should be made to the Rasasaṅkyā.

Practically all the Alaṅkāras like Yamak, Upamā, Rūpak, Utprekṣā, Śleṣa, Viśeṣokti etc. have been used in natural way in the work. The Mādhurya, Oja and Prasāda Guṇas have also their due place in the epic. So far as concerned with metres, the poet has used Paḍhaḍiyā, Adillaḍa, Trotaka, Tripadī, Mātrik, Dohak, Druvak, Ghat'ā etc. according to the contexts.

The socio-cultural material is not very much used in the work. The poet, of course, followed Āchārya Kundakunda in context of Guṇavratas by mentioning Dikparimāṇa, Bhogopabhogaparimāṇa and Anarthadaṇḍa. He also payed an honour to the Kundakunda tradition by accepting the inclusion of Śāmāyika, Proṣadhopavāsa and Sallekhanā and also to Somadeva by replacing Atithisamvibhāga to Dāna into Śikṣāvratas.

The Candappahacariu is written in Pāscimī Apabhraṅśa which has a credit to originate the Rajasthani language/dilect. Its main peculiarities can be seen through out the entire work as follows:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

1. A अ) becomes U (उ —Puharu.
2. Initial A (अ) is retained—Acchai.
3. Availability of e (ए) and (एँ) in short and long vowel.
4. E (ए) becomes i (इ)
5. Anusvāra and Anunāsikatā.
6. Use of Hi, him, hum. (हि, हिं, हुं).

This is the brief introduction to the present edition of the Candappahacariu. The detailed account can be studied through the Hindi introduction. The importance of the present work lies with the linguistic standpoint which may be useful to decide the different stages of the dilectical forms of Hindi or say Rajasthani.

The editing work was completed in 1978 on the basis of two MSS. In subsequent years two more MSS. Were utilized for deciding the readings. On its complition the question was to get it published. It is a pleasure for me to record my sense of gratitudes to Professor Darwari Lal Kothia, my teacher, who has shown keen interest in getting it published from the Vir Seva Mandir Trust. He has a great zeal to enrich and publish the Jain literature. I, therefore, dedicate the present work to him as a token of honour

A vast Apabhransa literature is still waiting for publication. The scholars should come forward to edit the unpublished work and the institutions should take Keen interest in in this regard. it is a matter of pleasure that the Ministry of Education, Government of India has menifested its inclination in making available easily this lliteralare.

I should mention here at the last that the printing of the Candappahacariu was completed in October, 1985. The English intoduction was only remained. In November 1985, I have to attend the Assembly of world's Religions at New Jersy, U. S. A. and hence I could not write Introduction in time. The fault is thus on my part for which I make an appology. As soon as I went through the printed text, I found that a number of printing mistakes have been occured there in. The main reason is that the correction made in the proofs were not inserted properly by the Press. However, I am sorry for the inconvinience caused.

New Extension Are. Bhagchandra Jain Bhaskar
Sadar, **Nagpur**-440001 Head of the Department of Pali & Prakrit,
Dt. 14-4-86 Nagpur University, Nāgpur

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावना

1. जैन चरित काव्य–परम्परा

चन्दप्पह चरिउ एक पौराणिक अपभ्रंश चरित महाकाव्य है। यह पौराणिक चरित काव्य परम्परा जैन साहित्य में प्राकृत आगम ग्रन्थों से प्रारम्भ होती है। जैनाचार्यों ने शलाका महापुरुषों पर प्रारम्भिक रचनाएं कीं। ये रचनाएं संक्षिप्त पर सामग्री बहुल थीं। तिलोयपण्णत्ति, कल्पसूत्र आदि में जो कुछ भी चरितों का आकलन किया गया है वह महाकाव्यत्व की दृष्टि से खरा नहीं उतरता। इसलिए उसे आद्य परम्परा का रूप माना जा सकता है। इसके बीजों को भी खोजना चाहें तो आचारांग, सूत्रकृतांग आदि आगम ग्रन्थों में वीर स्तुति के रूप में दृष्टव्य हैं जहां यथारूप की प्रस्तुति की गई है।

धीरे-धीरे कल्पनात्मक तत्त्व का विकास हुआ और चरित काव्यों का आकार बढ़ने लगा। चरित नायकों का आधार लेकर धार्मिक तत्त्वों को उपस्थित करना ही प्रमुख लक्ष्य था। संसार की स्थिति का यथार्थ चित्रणकर पाप-पुण्य की प्रकृति का लेखा-जोखा करना तथा भेदविज्ञान होने पर वैराग्य भावना भाना और उसे दृढ़तर बनाये रखने के लिए कर्मफल योजना को एक अंग के रूप में स्वीकार कर लेना उस लक्ष्य की पूर्ति का साधन बना लिया गया। सामाजिक तत्त्वों तथा मूल्यों की उपेक्षा कवि कभी कर नहीं सकता। उन्हें वह अवांतर कथाओं के माध्यम से प्रस्तुत करता है। पर हाँ, कहीं-कहीं लोक तत्त्वों की बहुतायत हो जाने से कथा-प्रवाह में शैथिल्य अवश्य आ जाता है।

जैन चरित काव्यों का एक अपना ढांचा है। शास्त्रीय नियमों के अनुसार वे महाकाव्यों की श्रेणी में तो आ ही जाते हैं पर उनकी विशेषताओं को उदरस्थ कर उनपर जैन संस्कृति को आरोपितकर चरित लिखना-लिखाना जैनाचार्यों की एक अपनी विशेषता रही है। स्तुति, पूर्व कवियों का स्मरण, सज्जन-दुर्जन चर्चा, देश-नगर आदि का वर्णन, नगर के बाह्योद्यान में मुनि का पहुँचना और उनके उपदेश श्रवण के लिए राजा तथा प्रजा का जाना तथा अन्त में राजा को वैराग्य हो जाना ये ऐसे तत्त्व हैं जो सभी जैन चरित काव्य में मिलते हैं। इसी के साथ विद्याधर,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि दिव्य पात्रों के माध्यम से कथा में रोचकता लाना, प्रेम, मिलन, दूतप्रेषण, युद्ध, विवाह, उपदेश, पूर्वभव, कर्मफल आदि तत्त्वों से कथा तत्त्व को विकसित करना तथा अन्त में तपस्या के माध्वम से निर्वाण प्राप्ति का चित्रण करना चरित काव्यों की अन्तिम परिणति रही है। इस दृष्टि से पौराणिकता और धार्मिकता का यहां सुन्दर समन्वय हुआ है।

2. चन्द्रप्रभ चरित पर निर्भित साहित्य

जैनाचार्यों ने इस ढांचें पर पौराणिक आख्यानों का भरपूर उपयोग कर लगभग हर भारतीय भाषा में साहित्य सृजन किया है। इन आख्यानों का उपयोग जैन साहित्य के क्षेत्र में करीब पांचवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। कदाचित् विमल सूरि (वि. सं. 530) प्राकृत के प्रथम कवि थे जिन्होंने इस परम्परा का प्रवर्तन 'पउमचरियम्' के माध्यम से किया। उत्तरकाल में रामायण और महाभारत के आख्यानों पर अनेक महाकाव्य लिखे गये।

इनके अतिरिक्त त्रेसठ शलाका महापुरुष-विषयक पौराणिक महाकाव्य उपलब्ध होते हैं। जिनसेन (सन् 763–843) का आदिपुराण और गुणभद्र का उत्तर पुराण (समाप्ति काल सन् 908) इस सन्दर्भ में मानक काव्य रहे हैं। श्रीचन्द्र का पुराणसार (वि. सं. 1080), दामनन्दी का पुराणसार संग्रह (लगभग 12वीं शती), मुनि मल्लिषेण का महापुराण (शक सं. 969), आशाधर का त्रिषष्टिस्मृति शास्त्र (वि. सं. 1292), हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाका महापुरुष चरित (वि. सं. 1261-28), अमरचन्द्र सूरि का चतुर्विशतिजिनेन्द्र संक्षिप्त चरित (सन् 1238 के पूर्व), पद्म सुन्दर का रायमल्लाभ्युदय (वि. सं, 1622), मेघ विजय उपाध्याय का लघु त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित (वि. सं. 1760) आदि कुछ ऐसी संस्कृत रचनाएं हैं जिनमें भ. चन्द्रप्रभ का चरित निबद्ध किया गया है। प्राकृत में भी शीलाचार्य का चउप्पन्न महापुरिस चरिय (वि. सं. 925) और आम्रकवि (12वीं शती) का चउप्पन्न महापुरिस चरिय प्रसिद्ध ग्रन्थ माने जाते हैं। इनमें चन्द्रप्रभ स्वामी का चरित अत्यन्त संक्षिप्त में उपलब्ध होता है।

कुछ स्वतन्त्र काव्य लिखे गये हैं जिनमें चन्द्रप्रभ का चरित विस्तार से आकलित हुआ है। ऐसी रचनाओं में वीर सूरि (सं. 1138), जिनेश्वर सूरि (सं. 1175) यशोदेव अपरनाम धनदेव (सं. 1178), हरिभद्र सूरि (12–13वीं शती), व जिनवर्धन सूरि (सं. 1461), द्वारा लिखित प्राकृत चन्दप्पह चरियम् विशेष उल्लेखनीय हैं। संस्कृत प्राकृत उभय मिश्र भाषा में भी चन्द्रप्रभ पर एक काव्य मिलता है जिसे देवेन्द्रगणि ने सं. 1264 में लिखा था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्रप्रभ पर कुछ संस्कृत काव्य भी उपलब्ध हैं। प्रथम काव्य आचार्य वीरनन्दि (11वीं शती का प्रारम्भ) कृत चन्द्रप्रभ महाकाव्व है जिसे यशःकीर्ति ने अपने चन्दप्पह चरिउ महाकाव्य का आधार बनाया है। दूसरी रचना असग कवि (सं. 1045 के लगभग) कृत का उल्लेख मिलता है। तीसरी रचना देवेन्द्र सूरि (सं 1260) की है जिसका उत्तर भाग नाटक शैली में लिखा गया है। चौथी रचना सर्वानन्द सूरि (सं. 1302) की 6141 श्लोक प्रमाण है जो अभी तक अप्रकाशित है। पंचम कृति भट्टारक शुभचन्द्रकृत (16–17वीं शती) बारह सर्गात्मक है। अन्य कवियों द्वारा लिखित उक्त काव्य के जो उल्लेख मिलते हैं उनमें पण्डिताचार्य, आंचलिकगच्छ के एक सूरि, पं. शिवाभिराम (17वीं शती) तथा दामोदर (सं 1727) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

अपभ्रंश में चन्द्रप्रभ पर अभी तक कुल तीन कृतियां ज्ञात हैं। प्रथम कृति भ. यशःकीर्ति की है जिसकी प्रतियां आमेर शास्त्र भण्डर जयपुर, दि. जैन पाटोदी मन्दिर जयपुर, सरस्वती भवन नागौर व राजस्थान प्रात्यविद्या प्रतिष्ठान चित्तौड़गढ़ में सुरक्षित है। इसी की एक प्रति स्व. पं. परामानन्द जी के पास भी रही है। दूसरी कृति कवि दामोदर की है जिसकी प्रतियां ए. प. सरस्वती भवन व्यावर में हैं। तथा तीसरी कृति कवि श्रीचन्द्र की है जिसकी प्रति कोटड़ियों का दि. जैन, मन्दिर, डूगरपुर में रखी हुई है। ये सभी ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित हैं। इनमें **चंदप्पह चरिउ** प्रथमतः संपादित होकर प्रकाश में आ रहा है।

3. संपादन परिचय

प्रति परिचय

यशःकीर्ति द्वारा रचित इस "चंदप्पह चरिउ" के संपादन में निम्नलिखित प्रतियों का उपयोग किया गया है—

1. 'क' प्रति

यह प्रति श्री स्व. पं. परमानन्द शास्त्री, दिल्ली के सौजन्य से प्राप्त हुई थी। प्रति में कुल 67 पत्र हैं जिनमें प्रथम पत्र एक ओर लिखा गया है। आकार 27 से. मी. × 12 से. मी. पंक्तियां प्रति पृष्ठ 12, अक्षर प्रति पंक्ति प्रायः. 50, हाशिया दोनों पार्श्वों में 3 से. मी., ऊपर 2 से. मी. और नीचे $1\frac{1}{2}$ से. मी.। लिखावट समान और सुन्दर है। प्रति के मध्य में पांच पंक्तियों के बीच एक विशिष्ट आकार का चिन्ह

जिनरत्नकोश पृ. 119

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बना हुआ है और छूटी हुई जगह में लाल स्याही से बड़ा शून्य रख दिया गया है। पत्र की दूसरी ओर दोनों ओर के हाशियों में भी लाल स्याही से इसी प्रकार बड़ा शून्य बना दिया गया है। इससे प्रति अधिक सुन्दर दिखने लगी। घत्ता और पद्य क्रमांक भी लाल स्याही से लिखा हुआ है।

प्रति का प्रारम्भ 'नमः सर्व्वनाय' से होता है। कुल ग्यारह संधियाँ हैं और प्रत्येक संधि के अन्त में "इय सिरि चंदप्पह चरिए महाकइ जसकित्ति विरहिए.........संधी संमत्तो" लिखा है। हर संधि के अन्त में ग्रन्थ संख्या भी लिखी हुई है।

प्रति के अन्त में प्रशस्ति इस प्रकार है—

संवत् 1530 वर्षे फाल्गुण सुदि 5 भरणि नक्षत्रे श्री मूलसंधे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे भट्टारक श्री कुंदकुंदाचार्यान्वये, तस्यानुक्रमेण भट्टारक श्री प्रभाचन्द्र देवान् तत्पट्टे भट्टारक श्री पद्मनंदिदेवान्, तत्पट्टे भट्टारक भी शुभचन्द्रदेवान्, तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेवान्, तत्सिस्य मुनि श्री भुवनकीर्ति देवान्, तत्सिस्य ब्र. बीसा, खण्डेलवालान्वये गंगवालगोत्रे सं. साभू. भार्या नउखी, तस्य पुत्र डालू, चाचा पीपा, द्वितीयक सा. आसू, तस्य भार्या दामा, तस्य पुत्र डीडा, तस्य भार्या हेमी, तृतीइक सा. लाखा, भार्या गागा, तस्य पुत्र ताल्हू, फल्हू, इदं स्वास्त्रं चंद्रप्रभ चरित्रं दामा ब्रह्म बीसा योग्य कर्म्मक्षय निमितं घटापितं, (स्वहस्तेन दत्तं। श्री चंद्र प्रभ चैत्यालये लिखी। सा. कुमरीमहा निधानालु।

याद्दशं पुस्तकं द्दष्ट्वा ताद्दशं लिखितं मया।
यदि सुद्धमसुद्धंवा मम दोसो न दीयते॥
भग्न पृष्टिक ग्रीवा वद्धद्दष्टि अधोमुखं।
कुष्टेन लिखितं सा च पत्रेन प्रतिपालिता॥
तैलरक्षं जले रक्षं रक्षेसि थलबंधनं।
पर हस्ते न दातव्यं, एवं वंदति पुस्तकम्॥ चिरं जीवात्
पंडित देवा लिखितं।

इस प्रशस्ति से निम्नलिखित जानकारी मिलती है—

1. यह प्रति सं. 1530 में फाल्गुन सुदी 5 भरणि नक्षत्र में चन्द्रप्रभ चैत्यालय में लिखी गई। इसके अनुसार गुरु परम्परा इस प्रकार है—

मूलसंघ, बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ, कुंदकुंदाचार्यान्वय—

भ. प्रभाचन्द्र
|
भ. पद्मनन्दि
|

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भ. शुभचन्द्र
|
भ. जिनचन्द्र
|
भ. भुवनकीर्ति

2. महाकवि ने यह ग्रन्थ हुंब्रडकुल भूषण कुंवरसिंह के सुपुत्र सिद्धपाल के अनुरोध पर रचा।

3. भुवनकीर्ति के शिष्य ब्रह्म वीसा खंडेलवालान्वय में गंगवाल गोत्री थे। उनकी श्रावक शिष्य परम्परा में ताल्हू, फल्हू ने इस 'चन्द्रप्रभ चरित्र' को वीसा के कर्मक्षय निमित्त लिखवाकर अपने हाथों से ही प्रदान किया। इस श्रावक परिवार का वंक्ष इस प्रकार है—

सा. सामू–भार्या नउखी
|
सा. डालू
|
आसू–भार्या दामा
|
डीडा–भार्या हेमी
|
लाखाभार्या गागा

(i) लाल्लू

(ii) फलहू

इस प्रति की निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टव्य हैं—

1. आदि 'न' का प्रायः सुरक्षित रहना। नकार बहुला होना।

2. मध्यवर्ती एवं पदान्त असंयुक्त तथा क्वचित् संयुक्त 'न्न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग होना, जैसे करण, विसण्णु, जिण आदि।

3. मध्यवर्ती संयुक्त 'न्न' के स्थान पर प्रायः 'ण्ण' का प्रयोग होना, जैसे णिसण्णिउ, अण्णु, संपवण्णु।

4. 'इ' के स्थान पर 'य' श्रुति का तथा 'य' श्रुति के स्थान पर 'इ' का प्रयोग मिलना।

5. 'व' के स्थान पर ब तथा 'ब' के स्थान पर 'व' का प्रयोग करना। इसमें बकार का प्रयोग अधिक हुआ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

6. 'व' के स्थान पर कहीं-कहीं 'म' का प्रयोग मिलना।

7. 'त्थ' के स्थान पर 'च्छ' का प्रयोग–सत्थु > सच्छु।

2. 'ख' प्रति

यह प्रति श्री आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर की है। इसमें कुल 117 पत्र हैं। आकार 26 से. मी. × 11 से. मी. है। हाशिया दोनों पार्श्वों में तथा ऊपर नीचे 2 से. मी., प्रत्येक पत्र में 9 पंक्तियां और प्रत्येक पंक्ति में प्राय: 40 अक्षर हैं, अक्षर सुन्दर और स्पष्ट हैं। लाल स्याही से घत्ता, पद्य संख्या तथा संधि समाप्ति सूचक पंक्ति लिखी गई है।

इस प्रति का प्रारम्भ 'ॐ नमो वीतरागाय' से हुआ है। अन्तिम प्रशस्ति अधूरी है, जो इस प्रकार है—

संवतु 1583 वर्षे आषाढ सुदी बुद्धवासरे पुष्यनक्षत्रे राणा श्री संग्राम राज्ये चंपावती नगरे राव श्री रामचन्द्र प्रतापे श्री मूलसंघे, नंद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्वियेन भट्टारक श्री पद्मनंदीदेवास्तत्पट्टे भ. श्री श्रुतचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ. श्री जिनचंद्रदेवा स्तत्पट्टे भ. प्रतापचन्द्रदेव तत्शिष्य मण्डलाचार्य श्री धर्मचन्द्र सदुपदेशात् खण्डेलवालान्वये साहगोत्रे सा. काधिल' भार्या कावलदे तत्पुत्रा: सा. गूजर, द्वितीय सा. राधौ, तृतीय सा. वाच्छा, सा. राधौ भार्या रयणदि, तत्तुत्रा: चत्वार: प्र. सा. रामदास, तत्भार्या रायवादे, द्वि. सा. साथू, भार्या हरिखमदे, तत्पुत्रौ द्वो सापासा भार्या पाटमदे, द्वितीय गूजरि तत्पुत्र हरराज सा. आसा भार्या अहकारदे, तृतीय सा. दासा, तद्भार्या दाडिमदे, तत्पुत्रो प्र. भीखसी, तत्भार्या बलदे, तत्पुत्रौ नानू-दादू, द्वितीय धर्मसी, तद्भार्या धारादे, चतुर्थ सा. घाटम तद्भार्या घाटमदे' तत्पुत्रौ द्वौ देवसी, तद्भार्या देवलदे........।

इस अधूरी प्रशस्ति से निम्नलिखित बातों की जानकारी मिलती है—

1, इस प्रति का लेखन सा. 1583 आषाढ़ सुदी 3 बुधवार को पुष्य नक्षत्र में मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के सदुपदेश से राणा संग्राम के राज्य में चंपावती नगरी में राव रामचन्द्र के काल में संपन्न हुआ।

2. इसके अनुसार गुरु परम्परा इस प्रकार है—

मूलसंध-नंद्याम्नाय–बलात्कारगण–सरस्वतीगच्छ—

कुन्दकुन्दाचार्याम्नाय

|

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भ. पद्मनन्दि देव
|
भ. श्रुतचन्द्र देव
|
भ. जिनचन्द्र देव
|
भ. प्रभाचन्द्र देव
|
मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र

मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के आम्नाय में खण्डेलवालान्वयी साहगोत्र था. जिसका वंशवृक्ष इस प्रकार है—

साह काधिल—भार्या कावलदे

सा. गूजर | सा. राघौ-भार्या रयणादे | सा. वाछ

(सा. राघौ के पुत्र:) रामदास भार्या रायवदे | हाथू, भार्या-हरिवमदे | दासा भार्या दाडिभदे | घांटम भार्या घाटभदे

(हाथू के पुत्र:) सा. पासा, भाया | सा. गूजरि

(सा. गूजरि के पुत्र:) सा. हरराज आसा भार्या अहकारदे

(घांटम के पुत्र:) देवसी भार्या-देवलदे

(दासा के पुत्र:) भीवसी-भार्या भावलदे | धर्मसी, भाया धारांदे

(भीवसी के पुत्र:) नानू | फादू

इस प्रति की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. आद्यवर्ती 'न' सुरक्षित है पर कहीं-कहीं उसे 'ण' भी कर दिया गया है। णकार प्रवृत्ति अधिक मिलती है।

2. मध्यवर्ती संयुक्त 'न्न' भी सुरक्षित है पर इसके भी अपवाद मिल जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3. कुल मिलाकार इसमें एकार प्रवृत्ति अधिक है ।

4. 'इ' के स्थान पर य श्रुति का प्रयोग अधिक हुआ है ।

5. शब्दांत अथवा मध्यवर्ती 'हो' के स्थान पर 'हु' का प्रयोग अधिक हुआ है ।

6. कुछ पद्यांश जो 'क' प्रति में छूट गये हैं, यहां मिल जाते हैं ।

7. 'ह' के स्थान पर प्रायः 'य' तथा ब के स्थान पर व मिलता है ।

8. अनुस्वार बहुलता तथा व के स्थान पर व का प्रयोग अधिक है । पाठान्तर में इसे हमने छोड़ दिया है ।

'ग' प्रति

यह भी आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर की प्रति है । इसमें कुल 120 पन्ने हैं जिनमें प्रथम और अन्तिम पत्र एक ओर लिखा हुआ है । आकार 25 से. मी. × 12 से. मी. पंक्तियां प्रतिपृष्ठ 10–11 तथा अक्षत्र प्रति पंक्ति लगभग 35; हांशिया दोनों पार्श्वों में 3–3 से. मी. तथा ऊपर–नीचे 2–2 से. मी. है । लिखावट सुन्दर और समान है । घत्ता और पद संख्या में लाल स्याही का प्रयोग हुआ है । लिखने के बाद प्रति को किसी सफेद पदार्थ से काफी सुधारा गया है । हांशियों में जहां कहीं कठिन शब्दों के अर्थ भी द्योतित किये गये हैं ।

प्रति का प्रारम्भ "सिधि" "ऊ नमः' सिद्धेभ्यः" से इस प्रकार हुआ है । अन्तिम प्रशस्ति इस प्रकार है—

संवत् 1603 वर्षे शाके 1468 षष्ठयाब्दयो मध्ये प्रमाथिनाम संवत्सरे दक्षणायने मासनौ वर्ष रितौ महामांग्ल्य श्रावणमासे शुक्लपक्षे दसम्यां तिथो शनिवारे घटीप्परत एका 11 दश्यां तिथौ मूलनक्षत्रे घटी 39 विकुंभ नामयोगे घटी 9 परत प्रीत्यनामयोगे, मध्यान्हवेलायां, वृंदावतीठाणात् हाडा चौहाणान्वये, राव श्री सूर्यामल, तत्पुत्र राव श्री सुरीतण राज्य पवर्तते । अथ जंबूदीते सरस्वतीगक्छे श्री कुंदकुंदाचार्यान्विये तद्गच्छे तदाम्नाये श्रीतत्पट्टे भटारीग श्री पद्मनन्दी देवा तत्पटे भ. श्री शुभचन्द्र देवा तत्पटे भ. श्रीजिनचण्द्र देवा तत्पटे भ. श्री प्रभाचन्द्र देवा तत्शिष्य मण्डलाचार्य श्री धर्मचन्द्र तदाम्नाये खण्डेलवालान्वये, जीवदयाव्रत षालणां सह श्री वोट्टीथान्याती गंगवालान्वये साह वोट्टीथा भाया डोडी तयो पुत्र प्रथम जिणदास भार्या नेमी, द्वितीय भार्या लाछी, तृतीय भार्या गुजरी द्वितीय साह मेला, भार्या ल्होककना, तयो पुत्र प्रथम उदा द्वितीय भोज्या । गंगवाल साह वोहीथा तस्य गृहे भार्या डोडी तयो पुत्र साहा जीणदास भार्या गुर्जरी, तयो पुत्र प्रथम नीनीगाद, भार्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारंगदा, द्वितीथ जालय कर्मक्षयार्थे लिखाइतं वहुगुजरी। इदं चंदप्रभा सम्पूर्ण समाप्तः। वाइयो ल्हीवीद्या उपदेश दातव्यः। जोसी गैया। ततपुत्र जोसी लिखितं। ज्योसी गरोस। इदं चंदप्रभ शास्त्रं ॥·······

इस प्रशस्ति से निम्नलिखित जानकारी मिलती है—

1. यह प्रति संवत् 1603 में श्रवणमासीय शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि की मध्यान्ह वेला में समाप्त हुई। इस समय हाडा चौहाणवंशी सूर्यमल के पुत्र राव सुरीताण का राज्य था।

2. इसके अनुसार गुरु पम्परा इस प्रकार है—

कुन्दकुन्दाचार्य
|
भ. पद्मनन्दि देव
|
भ. शुभचन्द्र देव
|
भ. जिनचन्द्र देव
|
भ. प्रभाचन्द्र देव
|
मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र देव

3. मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के शिष्य खण्डेलवालान्वयी साह वोहीथ की वंश परम्परा इस प्रकार है

खण्डेलवाल–गंगवाल गौत्र
|
सा. वोहीथ–भार्या डोडी
|
- जिणदास–भार्या-गुजरी, नेमी, लाछी
  - नानीगाद, भार्या नारंगदे
  - जालम
- साह भेला भार्या-ल्हौकनां
  - उदा
  - भोज्या

4. इस प्रति की निम्यलिखित विशेषताएं द्रष्टव्य हैं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

1. इस प्रति का आधार 'ख' प्रति रहा होगा। विशेषता यह है कि इसे किसी विद्वान ने बाद में सुधारा है और जो सुधार हुआ है वह प्रायः ठीक है।

2 अ तथा इ के स्थान पर प्रायः य श्रुति का प्रयोग हुआ है।

3. व के स्थान पर अ, य, उ तथा म भी किया गया है।

4. शब्दों में इकार का प्रयोग अधिक हुआ है।

5. अनुस्वार बहुल है।

6. यत्र तत्र शब्दार्थ भी दिये गये हैं हाशियों में।

'घ' प्रति

यह भी आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर की प्रति है जो आज जैन विद्या संस्थान, महावीर जी के ग्रन्थ भण्डार में सुरक्षित है। इसमें कुल पन्ने 108 हैं जिनमें प्रथम पत्र एक ओर लिखा हुआ है। आकार 27 से. मी. × 11 से. मी.। पंक्तियां प्रनि पृष्ठ 10 तथा अक्षर प्रति पंक्ति लगभग 33 हैं। हांशिया चारों पार्श्वों में 2–2 से. मी. हैं लिखावट सुन्दर और समान है, घत्ता और पद संख्या लाल स्याही से अंकित हैं। इस प्रति को भी यथावश्यक किसी सफेद पदार्थ से सुधारा गया है। हांशियें में जहां कहीं कठिन शब्दार्थ भी लिख दिये गये हैं।

प्रति का प्रारम्भ "ॐ नमो वीतरागाय" से हुआ है। अन्तिम प्रशस्ति लिपिकार की इस प्रकार है—

ॐ नमः संवत् 1611 वृषे चैत्र वदि 5 विसपतिवारे स्वातिनक्षत्रे अल्हादपुर नगरे श्री मल्लिनाथ चैत्यालये श्री मूलसंघे कुन्दकुन्दा (१) म्नाये बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे श्री कुन्कुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दि देवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री जिणचन्द्र देवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री प्रभाचन्द्र देवास्तत् शिष्य मण्डलाचार्य श्री धर्मचन्द्र देवास्तदाम्नाये खण्डेलवालान्वये पोपल्य गोत्रे संभाला तद्भार्या पुसिरि तत्पुत्र व्रतारि प्रथम पुत्र सानह, द्वितीय णामल तृतीय संकान्हा, चतुर्थ संजालपन तद्भार्या नोलादे तत्पुत्र संहेम भार्या हीरादे संरणामल भार्या रईदे, द्वितीय गुजरि तत्पुत्रे चथ प्रथम पुसमसमताद्युति अरट्टाचिति विरदा संमता भार्या व्रतिद्या तत्पुत्र तेजपाल भार्याद्विय प्रथम भवनदे द्वितीय सकतादे तत्पुत्र विरजा प्रेमराज अरट्टा भार्या अकरदे।

यह प्रशस्ति अधूरी, अस्पष्ट और भाषागत गल्तियों से आपूर है। फिर भी जो कुछ जानकारी मिलती है, वह इस प्रकार है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

1. यह प्रति सं. 1611 में चैत्रवदि 5 वृहस्पतिवार को आल्हादपुर नगर वर्ती श्री मल्लिनाथ चैत्यालय में समाप्त हुई।

2. इसके अनुसार गुरु परम्परा इस प्रकार है—

कुन्दकुन्दाचार्य
|
पद्मनन्दि देव
|
शुभचन्द्र देव
|
जिणचन्द्र देव
|
प्रभाचन्द्र देव
|
मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र

3. मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के शिष्य खण्डेलवालान्वयी पोपल्य गोत्री किसी विद्वान ने यह प्रतिलिपि की। प्रशस्ति कदाचित् बाद में जोड़ी गई है। अधूरी होने से लिपिकार का नाम अज्ञात है।

4. इस प्रति की विशेषताएं इस प्रकार हैं—

1. प्राय: यश्रुति का उपयोग हुआ है। एकार भी मिलता है।
2. व का प्रयोग अधिक हैं।
3. अनुस्वार बहुल है।
4. 'हु' का प्रयोग अधिक हुआ है।
5. हांशियों में शब्दार्थ जहाँ कहीं दे दिये गये हैं।
6. 'ख' प्रति से यह प्रति अधिक मिलती है।

पाठ संपादन की पद्धति

1. प्रस्तुत ग्रन्थ का संपादन पूर्वोक्त चार प्रतियों के आधार पर किया गया हैं। उनमें 'क' प्रति प्राचीनतम और कदाचित् सुन्दर व शुद्धतम है। अतः इसी को सामान्यतः आदर्श प्रति के रूप में स्वीकार किया गया है। जहां कहीं पाठ को निश्चित करने के लिए 'ख', 'ग' अथवा 'घ' प्रति को भी आदर्श मान लिया गया है।

2. आदि 'न' को 'ण' कर दिया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

3. मध्यवर्ती 'न' की सुरक्षा, पर कहीं-कहीं उसके स्थान पर 'ण' की भी स्वीकृति ।

4. यथावश्यक व के स्थान पर ब तथा ब के स्थान पर व का प्रयोग ।

5. य श्रुति एवं व श्रुति के प्रयोग में एकरूपता नहीं ।

6. यथास्थान 'उ' का प्रयोग सुरक्षित रखा गया है ।

7. शब्दों में विद्यमान इकार की स्वीकृति ।

8. तृतिया एवं सप्तमी विभक्तियों के कारक प्रत्ययों तथा पूर्व कालिक कृदन्त शब्दों में इ तथा ए को स्वीकार किया गया है ।

9. ख तथा ग प्रति अनुस्वार बहुला हैं । क प्रति में आगत अनुस्वरों को भी स्वीकार किया है ।

4. ग्रन्थकार परिचय

यश:कीर्ति नाम के अनेक आचार्य हुए हैं–

1. चन्द्रप्पह चरिउ के रचयिता
2. पाण्डव पुराण के रचयिता (वि. सं. 1497)
3. रत्नकीर्ति के शिष्य (वि. सं. 1613 में स्वर्गवास)
4. पद्मनन्दि के शिष्य जोरहट शाखा के भट्टारक (17वीं शती)
5. पद्मनन्दि के शिष्य माथुरगच्छ के भट्टारक (18वीं शती)
6. विजयसेन के शिष्य
7. विमल कीर्ति के शिष्य
8. रामकीर्ति के शिष्य (19वीं शती)–ईडर शाखा के भट्टारक

यश:कीर्ति नाम के इन आचार्यों के बीच प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता कौन हैं, यह प्रथम दो आचार्गों के बीच विवाद का विषय है । ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के किसी भी भाग में न तो कोई विशेष परिचय दिया है और न ही ग्रन्थ रचना काल का उल्लेख किया है अतः उनकी स्थिति के विषय में निश्चित रूप से कहा जाना कठिन हो गया है ।

चंदप्पह चरिउ की अद्यावधि उपलब्ध प्रतियों में सं. 1530 की लिखी प्राचीनतम प्रति हमारे सामने है । इसलिए इतना निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि कवि वि. सं 1530 के पूर्व हुए होंगे ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि ने अपने एक मात्र ग्रन्थ चंदप्पह चरिउ में आचार्य कुन्दकुन्द, समन्तभद्र अकलंक, देवनन्दि, जिनसेन और सिद्धसेन के नाम पूर्ववर्ती आचार्यों के रूप में उल्लिखित किया है। अतः इस आधार पर उनका समय जिनसेन के बाद का होना चाहिए। पर यह कालावधि बड़ी लम्बी प्रतीत होती है।

पाण्डव पुराण के रचयिता भट्टारक यशःकीर्ति काष्ठासंघीय माथुर गच्छ तथा पुष्कर गण के भट्टारक गुणकीर्ति के लघुभ्राता और पट्टधर थे, यह उनकी हरिवंश पुराण की प्रशस्ति से स्पष्ट हो जाता है। ये ग्वालियर के शासक तोमरवंशीय राजा डूंगरसिंह के समकालीन हैं। महाकवि रइधू ने इन्हें अपने गुरु के रूप में उल्लिखित किया है। परन्तु आश्चर्य है कि 'चंदप्पह चरिउ' में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता। अतः यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक-सा लगता है कि चंदप्पहचरिउ के रचयिता और पाण्डव पुराण के रचयिता में व्यक्तित्व भेद होना चाहिए।[1] दोनों ग्रन्थों की पुष्पिकाओं में भी अन्तर दिखाई देता है। पाण्डव पुराण के कर्त्ता ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख भी नहीं किया। इतना ही नहीं, भाषा प्राञ्जलय की दृष्टि से भी चंदप्पह चरिउ और पाण्डव पुराण के कर्त्ताओं को पृथक्-पृथक् माना जा सकता है।

महाकवि यशःकीर्ति ने अपने ग्रन्थ की रचना हुंबड कुल भूषण कुमरसिंह के पुत्र सिद्धपाल के अनुरोध पर की है। यह ग्रन्थ की प्रत्येक पुष्पिका से पता चलता है।

इय सिरि चंदप्पह चरिउ महाकइ जसकित्ति विरइए महाभव्व-सिद्धपाल-सवण भूसणे सिरि चन्दप्पह सामिणि वण गमणो एयारहमो नाम संधी परिच्छेओ सम्मत्तो।

सिद्धपाल का सम्बन्ध चालुक्यवंशीय राजा कुमारपाल से सम्भावित है। कवि ने ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति में गुर्जर देश के 'उम्मत्तगाम' का उल्लेख भी किया है। अतः कवि का समय कुमारपाल के बाद का तो निश्चित हो ही जाता है। कुमारपाल का अन्तिम समय वि. सं. 1230 (ई. सन् 1173) है। पश्चिमी चालुक्यवंश का यह अन्तिम समय था। सिद्धपाल इन्हीं के वंश के रहे होंगे। प्रशस्ति का भाग यह है—

गुज्जारदेसहं उम्मत्तगामु, तहिं छड्डा सुअ हुंअ दोण णामु।
सिद्धउ तो णंदणु भव्ववंधु, जिणधम्म भारि जें दिण्णखंधु।

---

1. परमानन्द शास्त्री, जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह, पृ. 80–81

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहु हुग्र जिहउ वहुदेवभव्वु, जें धम्मकज्जि विवकलिउ दव्वु ।
तहु लहु जायउ सिरि कुमारसिंहु, कलिकाल करिंदहो हणए सीहु ।
तहो हुग्र संजायउ सिद्धपालु, जिणपुज्जदाण-गुणगण रमालु ।
तहो उवरेंहि इह कियउ गंथु, हउं णमु णामि किंपिवि सत्थु गंथु ।

जहां तक जन्म स्थान का प्रश्न है, कवि ने यद्यपि इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है पर पुष्कर गणी होने के कारण उसे अजमेर के आसपास का होना चाहिए ।

यशःकीर्ति के 'चंदप्पह चरिउ' पर वीरनन्दि के चन्द्रप्रभ चरितम् का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है । वीरनन्दि का समय विक्रम का ग्यारहवीं शताब्दी का पूर्वार्घ माना जाना चाहिए । यद्यपि उन्होंने अपनी एक मात्र कृति 'चन्द्रप्रभचरितम्' में न अपने विषय में कुछ लिखा है और न ग्रन्थ रचनाकाल का ही उल्लेख किया है । आचार्य वादिराज ने अपने पार्श्वनाथ चरित शक सं. 947 सन् 1025 तथा नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने अपने कर्मकाण्ड में वीरनन्दि का उल्लेख किया ।
अतः इन प्रमाणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि 'चन्दप्पह चरिउ' के रचयिता यशःकीर्ति पाण्डव पुराण के रचयिता यशःकीर्ति के पूर्ववर्ती होंगे और उनका समय लगभग 13 वीं शताब्दी माना जा सकता है ।

पूर्ववर्ती और समकालीन कवि

जैसा हम पहले कह चुके हैं, कवि ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों में आचार्य कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, अकलंक, देवनन्दि, जिनसेन और सिद्धसेन का उल्लेख किया है । ये आचार्य अत्यन्त प्रसिद्ध आचार्य हैं अतः इनके विषय में लिखने की आवश्यकता नहीं । हाँ, यहां यह अवश्य उल्लेखनीय है कि यशःकीर्ति ने समन्तभद्र के जीवन में घटने वाली उस घटना का उल्लेख बड़ी श्रद्धा के साव किया है जब आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का स्तवन करने पर शिव पिण्डि फट गई और उसमें चन्द्रप्रभ की भव्य मूर्ति प्रकट हुई ।

कवि के समकालीन आचार्यों में श्रीधर मदनकीर्ति, भावसेन त्रैवेद्य, आशाधर, नरेन्द्रकीर्ति, व अर्हद्दास के नामों का उल्लेउ किया जा सकता है । इनमें कुछ आचार्य यशःकीर्ति के कुछ पूर्ववर्ती और कुछ परवर्ती भी हो हकते हैं ।

5. कथावस्तु

प्रस्तुत ग्रन्थ का अभिधेय अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का जीवनवृत्त है । चन्द्र-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रभ की कथावस्तु का आधार पद्मपुराण हरिवंश पुराण और उत्तर पुराण (महापुराण) में उपलब्ध कथा है जिसे महाकवि ने अपनी प्रतिभा से पल्लवित किया है। पद्मपुराण और हरिवंश की अपेक्षा उत्तरपुराण में कथा का विस्तार अधिक मिलता है। उत्तरपुराण के चतुःपंचशतम् पर्व (पृष्ठ 44 से पृष्ठ 65 तक) में चन्द्रप्रभ का जीवन चरित अंकित किया गया है। उत्तरकालीन कवियों ने अपनी रचनायें इसी ग्रन्थ पर आधारित रखी हैं।

यशःकीर्ति के चंदप्पहं चरिउ पर वीरनन्दि के चंदप्रभचरितम् का प्रभाव अधिक है। इस तथ्य को हम सारांश के माध्यम से देख सकते हैं। चंदप्पह चरिउ ग्यारह संधियों में विभक्त है।

1. प्रथम संधि

प्रारम्भ में महाकवि यशःकीर्ति ने चन्द्रप्रभस्वामी को नमस्कार किया और त्रैकालिक परमेष्ठियों को प्रणामकर 'चंदप्पह चरिउ' की रचना करने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद चंदप्पह चरिउ की रचना-पृष्ठभूमि को बताते हुए आचार्य कुन्दकुन्द समन्तभद्र, अकलंक, देवनन्दि, जिनसेन और सिद्धसेन को पूर्वाचार्यों के नामों के रूप में उल्लिखित किया। तदनन्तर सज्जन-दुर्जन के गुण-दोषों का वर्णन करते हुए कथा का प्रारम्भ किया है।

द्वितीय धातकीखण्ड द्वीप में पूर्व विदेह में मंगलावती नामक देश है। उसमें रत्नसंचय (मणिसंचउ) नामका नगर है। इस नगर का प्रशासक कनकप्रभ नामक राजा था। और उसकी स्वर्णमाला नामकी महिषि थी। उनके पुत्र का नाम पद्मनाभ था। कनकप्रभ बड़ी दूरदर्शिता पूर्वक राज्य करता रहा। एक दिन कीचड़ में फंसे बूढे बैल को देखकर उसे वैराग्य हो गया। फलतः उसका मन संसार की क्षणभंगुरता से भर गया और पद्मनाभ को राज्याभिषिक्त करके स्वयं ने श्रीधर मुनि से जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

2. द्वितीय संधि

एक दिन पद्मनाभ राजसभा में बैठा था। इतने में ही द्वारपाल ने वनमाली के आने का समाचार दिया। उसने बताया कि नगर के बाह्योद्यान में श्रीधर नामक जैन मुनि पधारे हुए हैं। उनके प्रताप से सारा उद्यान पुष्पित हो गया है। राजा पद्मनाभ यह समाचार सुनकर प्रसन्न हो गया और सपरिकर मुनि के दर्शन करने चल पड़ा। उद्यान में पहुंचकर मुनि को भक्ति भाव से प्रणाम किया और 'शुभधर्म' का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्षण पूछा। मुनि ने शुभ धर्म अर्थात् श्रावक धर्म का प्रतिपादन करते हुए बारह व्रतों तथा अष्ट मूलगुणों के परिपालन की आवश्यकता बताई।

इसके बाद पद्मनाभ के पूछने पर मुनि श्रीधर ने उसके भवान्तर का वर्णन किया।

तृतीय द्वीप पुष्करार्ध के पूर्व में स्थित मेरु (पूर्व मन्दर) के पश्चिम विदेह में शीतोदा नामक नदी के उत्तरी तट पर सुगन्धि नाम का देश है। यह देश ग्राम शोभा से विभूषित है। इस देश में श्रीपुर नामक नगर है जो परिखा तथा कामनियों से सुशोभित है। इस नगर के राजा श्रीषेण तथा रानी श्रीकान्ता का जीवन अधूरा-सा लगता था।

एक दिन रानी ने छत पर से कुछ धनिकों के बालकों को गेंद खेलते हुए देखा। तब से उसके मन में पुत्र प्राप्ति की आकांक्षा जागी। यह बात उसकी सखी ने राजा को बता दी। राजा ने समझाया कि तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ के समय अनेक केवलज्ञानी और अवधिज्ञानी मुनि हैं। उनसे इसका कारण और उपाय पूछेंगे।

इतने में वनमाली ने आकाश से एक चारण ऋद्धिधारी मुनि को आते हुए देखने की बात कही। राजा ने उनके पास जाकर बन्दना की तथा पूछा कि उसका मन संसार से विरक्त क्यों नहीं हो रहा है ? मुनि ने इसका कारण जानकर कहा कि पुत्र-प्राप्ति के बिना तुम्हारा मन शान्त नहीं होगा। पुत्र-प्राप्ति भी जल्दी ही होगी। अभी तक पुत्र न होने का एक कारण था।

तुम्हारी यह पत्नी श्रीकान्ता पूर्वजन्म में उसी नगर के वणिक् देवांगद तथा उनकी पत्नी श्री की सुपुत्री सुनन्दा थी। उसने अपनी तरुणावस्था में किसी गर्भालसा तरुणी को देखकर निदान बांधा कि उसे इस प्रकार का दुःख सहन न करना पड़े। उसी का यह फल है। अब जल्दी ही यह पुत्रवती होगी। राजा ने श्रावक व्रत ग्रहण किये तथा आष्टान्हिका-नन्दीश्वर पूजा की। फिर कुछ दिनों बाद रानी ने गर्भ धारण किया। बाद में पुत्र जन्म हुआ जिसका नाम श्रीधर्म (श्रीवर्म) रखा गया। पुत्र बड़ा पराक्रमी और सर्वगुण संपन्न था। तरुण होने पर राजाने उसे युवराज पद पर अभिषिक्त किया तथा उसका विवाह प्रभावती राजकुमारी से कर दिया।

तृतीय संधि

एक दिन उल्कापात देखकर श्रीषेण को वैराग्य हो गया। संसार की असारता का चिन्तन करते हुए उसने पुत्र को सम्बोधित किया और यह समझाया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि उसे राज्य किस प्रकार चलाना चाहिए। इस संदर्भ में राजनीति को प्रस्तुत किया गया है। राज्य संचालन में गुप्तचर प्रमुख अंग हैं। किसी को भी अकारण कष्ट मत दो। कभी विधर्मी न बनो, कामी न बनो। अधिक कर ग्रहण न करो। मंत्रियों से सलाह लेकर काम करो। बाद में श्रीषेण ने श्रीप्रभ मुनि से जिनदीक्षा ग्रहण की और वे संसार से मुक्त हो गये।

इधर श्रीधर्म (श्रीवर्म) दिग्विजय के लिए निकला। उस समय अनुकूल वायु चल रही थी राजा की चतुरंगणी सेना शत्रु राजाओं के मन को आतंकित करने वाली थी। कुछ राजा शरणाकाँक्षी होकर भेंट देने आये। जिन्होंने युद्ध किया वे मृत्युमुख में पहुंचे। मांडलिक और द्वीपिक राजा उनके अनुयायी हो गये। दिग्विजय कर श्रीधर्म समुद्र तट का आनन्द लेते हुए अपने नगर श्रीपुर वापिस आ गया और सांसारिक भोगों में आसक्त हो गया।

एक दिन शरत्कालीन मेघ को देखकर संसार की क्षणभंगुरता का आभास हो गया। फलतः उसने अपने पुत्र श्रीकान्त को राज्य भार सौंप दिया और स्वयं ने श्रीप्रभ से दिगम्बर दीक्षा ले ली। तपश्चरण करते हुए वे सौधर्म स्वर्ग में श्रीधर नामक देव हुए।

इसके बाद श्रीधर्म से सम्बद्ध कथा का सूत्र संचालन होता है। द्वितीय द्वीप धातकीखण्ड की दक्षिण दिशा में एक इषुकार गिरि है जिसके यूर्व 'अलका' नामक देश है। सरोवरों के लिए वह देश प्रसिद्ध है। अलका देश में कौशल नाम की एक सुन्दर नगरी है जो अत्यन्त वैभवशाली है। उसका राजा अजितंजय और उसकी पत्नी अजितसेना थी। उनके श्रीधर का जीव अजितसेन नामक पुत्र हुआ। अजितसेन बाल्यावस्था से ही सर्वकलाओं में निपुण था। गुणवान पुत्र को पाकर कौन प्रसन्न नहीं होता ?

एक दिन की बात है कि चण्डरुचि नामक कुख्यात असुर,जो राजकुमार का पूर्व जन्म का वैरी था, राजसभा में आया और सारी सभा को मूर्छित कर युवराज को हर ले गया। चेतना आने पर दम्पति हृदय विदारक विलाप करते हैं। यहां करुण रस प्रधान वर्णन मिलता है। कुछ समय बाद तपोभूषण नामक चारण मुनि आये और उन्होंने बताया कि तुम्हारा पुत्र सकुशल वापिस आ जायगा। चिन्ता मत करो। राजा प्रसन्न होकर पूर्ववत् काम करने लगा।

चतुर्थ संधि

क्रोधी चण्डरुचि असुर ने अजितसेन को मनोरम नामक सरोवर में फेंक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिया। वह मगर-मच्छ से जूझता हुआ किनारे आ गया। पास ही 'परुषा' नाम की गहन अटवी थी। उसमें उसने प्रवेश किया। थोड़ी ही देर बाद अंजरण गिरि शिखर दिखा। उस पर वह चढ़ गया। वहां पहुंचते ही उसे एक आमिष पिण्ड सदृश नेत्र वाला क्रोधी पुरुष दिखाई दिया। उसने अजितसेन को ललकारा। बाद में दोनों में भीषरण युद्ध हुआ। अन्त में अजितसेन ने अपने दोनों हाथों से उसे ऊपर उठाकर ज्यों ही उसे फेका, उसने अपना दिव्य रूप प्रगट कर दिया। उसने कहा कि उसका वास्तविक नाम हिरण्य है। वह उत्तम ऋद्धि-संपन्न देव है। जिन मन्दिर के दर्शन करते हुए यहां क्रीड़ा करने के लिए चला आया। अपना रूप बदल कर तुम्हारे साहस की परीक्षा की। अब ज़ब भी मेरी आवश्यकता प्रतीत हो, स्मरण कर लेना।

हाँ, पूर्व जन्म की भी बात बताये देता हूँ। पिछले तीसरे जन्म में तुम सुगन्धि नामक देश के श्रीपुर नामक नगर के राजा थे। वहां नगर में दो गृहस्थ किसान थे-शशि और सूर्य। शशि ने सूर्य के घर सेंध लगाकर सारा धन चुरा लिया। तुमने उसका पता लगाकर धन वापिस दिला दिया और सूर्य को फांसी की सजा दे दी। वही शशि चण्डरुचि नामक असुर हुआ और में ही पहले सूर्य था। चण्ड-रुचि ही तुम्हें हरकर सरोवर में फेंक गया। मैं तुम्हारा मित्र हूं। इतना कहकर वह सूर्य अदृश्य हो गया।

राजकुमार बाद में बड़ी सरलता पूर्वक अटवी से बाहर आ गया। आगे उसने अरिंजय नामक देश में प्रवेश किया जहां राजा जयवर्मा अपनी महिषी चन्द्र-मुखी जयश्री के साथ राज्य करता था। उनकी शशिप्रभा कन्या थी जिसका विवाह महेन्द्र राजा के साथ निश्चित हो गया। परन्तु निमित्त ज्ञानियों से उसकी अल्पायु का पता हो जाने पर यह निश्चय छोड़ दिया गया। फलतः महेन्द्र के साथ युद्ध छिड़ गया। इधर अजितसेन उस देश में पहुंच गया और संघर्ष महेन्द्र से हो गया। चतुरंगणी सेना के साथ अकेले अजितसेन का युद्ध दर्शनीय था। अजितसेन ने अपनी वीरता से महेन्द्र की सेना को पराजित किया। इस प्रसंग में वीर रस का सुन्दर प्रयोग हुआ है। महेन्द्र को पराजित करने पर राजकुमार कुछ समय जयवर्मा का अतिथि रहा। बाद में शशिप्रभा का सम्बन्ध अजितसेन के साथ कर दिया गया। इस प्रसंग में विप्रलम्भ श्रृङ्गार रस का प्रयोग द्रष्टव्य है।

इसके बाद उपकथा प्रारम्भ होती है। विजयार्ध पर्वत के दक्षिण में आदित्य-पुर (रविपुर) नगर है। वहां धरणीध्वज नाम का राजा राज्य करता था। वह विद्याधरों का स्वामी था। एक दिन राजसभा में उन्होंने प्रियधर्म ब्रह्मचारी के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शन किये। ब्रह्मचारी ने कहा, यद्यपि वे योगी और निर्मोही हैं पर मुनि से तुम्हारे विषय में जो वृत्तान्त सुना है उसे तुम्हें बताना चाहता हूँ।

अरिंजय नामक देश में एक विपुल नामक नगर है। वहां का प्रशासक जय वर्मा है। उसकी मृगनयनी पुत्री शशिप्रभा का जिसके भी साथ सम्बन्ध होगा वह तुम्हारा प्राणघातक होगा। यह जानकर धरणीध्वज चिंतित हो गया। फिर भी अपने मनोभाव को गुप्त रखकर उद्धत नामक दूत को जयवर्मा के पास भेजा, यह संदेश लेकर कि या तो वह शशिप्रभा का सम्बन्ध उसके साथ कर दे अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रहे। जयवर्मा ने युद्ध को स्वीकार कर लिया। यह बात अजितसेन को भी बता दी गई। फलतः धरणीध्वज का युद्ध जयवर्मा के साथ प्रारम्भ हो गया। इधर अजितसेन ने हिरण्य देव का स्मरण किया। स्मरण करते ही हिरण्य देव दिव्यास्त्रों से सुसज्जित रथ लेकर उपस्थित हो गया। हिरण्य ने सारथी बनाकर अजितसेन का साथ दिया अजितसेन के साथ विद्याधरों का घनघोर युद्ध हुआ। राजकुमार की प्रचण्ड शक्ति उन्हें असह्य हो गयी। उसके विविध अस्त्र-शस्त्रों ने धरणीध्यज की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया। अन्त में अमोघ शक्ति का प्रहार कर धरणीध्वज की जीवन लीला भी उसने समाप्त कर दी। जयवर्मा की विजय हो गई अजितसेन ने हिरण्य को विदाई दी। विजय यात्रा प्रारम्भ हुई और शशिप्रभा का सम्बन्ध अजितसेन के साथ हो गया। इसके बाद अजितसेन अपने माता-पिता से भेंट करने के लिए अपने नगर की ओर चल पड़ा। अजितसेन के पिता ने अपने पुत्र का आगमन सुनकर बड़े उत्सव के साथ उसका नगर प्रवेश कराया।

इसके बाद अजितसेन चक्रवर्ती को चौदह रत्न (चक्र, खड्ग, छत्र, चर्म, दण्ड काकणी, चूडामणी, गज, अश्व, शक्ति, पुरोहित, शिल्प, गृहपति और शशिप्रभा) तथा नव निधियां (पाण्डुक, पिङ्गल, काल, शंख, पद्म, महाकाल' माणव, नैसर्प और सर्वरत्न) प्राप्त हुईं। इसके बाद अजितंजय ने अजितसेन का पट्टाभिषेक किया।

इसी बीच स्वयंप्रभ नामक तीर्थंकर राजधानी में पधारे। यह जानकर अजितंजय अपने पुत्र अजितसेन के साथ उनकी वन्दना करने के लिए घर से चल पड़ा। उनके पास पहुंचकर अजितंजय ने प्रणाम किया और तीर्थंकर से जिज्ञासा प्रकट की कि जीव शुभाशुभ कार्मों से कैसे बंध जाता है और फिर उनसे कैसे मुक्त हो जाता है। उत्तर में उन्होंने कहा कि मिथ्यात्व, प्रमाद. कषाय और योग ये पांच कर्मबन्ध के कारण हैं। इन कारणों को दूर करने का उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का संम्यक् परिपालन है। इस प्रसंग में जैन धर्म का अच्छा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्णन किया गया है । अजितंजय धर्म और कर्म का इतना सुन्दर विवेचन सुनकर संसार से विरक्त हो गया और राज्य भार अजितसेन को सौंप दिया । अजितसेन ने भी श्रावक व्रत ग्रहण किये ।

पंचम संधि

इसके बाद अजितसेन दिग्विजय के लिए निकल पड़ा । चौदह रत्न और नव निधियां उसके साथ थीं । प्रभुशक्ति मन्त्रशक्ति और उत्साह शक्तियों से वह संनद्ध था । पराक्रम और वात्सल्य का वह धनी था । चक्रवर्ती का सारा वैभव उसके पास था । सेना, नाट्य, निधि, रत्न, भोजन, आसन, सेज, पात्र, पुर और बाहन ये दस भोग थे । म्लेच्छखंड और आर्यखण्ड को जीतकर वह षड्खण्डाधिपति बन गया । अजितसेन का पराक्रम अप्रतिहत था ।

दिग्विजय करके अजितसेन सम्राट् अयोध्या वापिस पहुंच गया । नगर को इस शुभ अवसर पर खूब सजाया गया । तरुणियों की भावभंगिमायें इस समय विचित्र हो रहीं थीं । राजप्रासाद में अजितसेन का स्वागत किया गया समागत राजे-महाराजे वापिस चले गये ।

इसके बाद ऋतुराज वसन्त का आगमन हुआ । युवक-युवतियों को नया वातावरण मिला । इस प्रसंग में प्रकृति वर्णन शृङ्गार रस की समरसता को उत्पन्न करता है । अन्त:पुर में पहुंच कर शशिप्रभा के साथ अजितसेन का प्रेमालाप और उसके संदर्भ में भी इसी प्रकार का मनोहारी वर्णन दृष्टव्य है ।

इस अवसर पर अजितसेन ने वन विहार यात्रा करने का निश्चय किया । पुरवासी भी उनके साथ चल पड़े । सभी ने जलाशय में स्नान किया । काम क्रीड़ा और जल क्रीड़ा का बहुत अच्छा वर्णन कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है । जल क्रीड़ा करते-करते सूर्यास्त हो गया । बाद में चन्द्रोदय भी हो गया । कमल विकसित हुए । कुमुदनी पर भौंरे मड़राने लगे । रात्रि का प्रहर बीत गया । रागी युवक अपनी प्रेमिकाओं के साथ एकान्त स्थान में चले गये । रत्नोसव बढ़ने पर अजितसेन ने भी शशिप्रभा के साथ संपर्क किया । कवि की कल्पनायें यहां उल्लेखनीय बन पड़ी हैं ।

प्रात: काल होने पर दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर अजितसेन अपने 'सर्वावसर' नामक सभा भवन में पहुंचा उस समय वहां आये हुए गजराज को उसनें देखा । यह गजराज युद्ध के अभ्यास के लिए प्रस्तुत किया गया था । संयोग की बात है, उस हाथी ने एक असहाय व्यक्ति को सूड़ से उठाकर नीचे पटक दिया । वह मर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गया। यह देखकर अजितसेन को संसार से वैराग्य हो गया। संसार की क्षणभंगुरता का इस प्रसंग में अच्छा चित्रण हुआ है।

इसी अवसर पर वनपाल से अजितसेन को पता चला कि गुणप्रभ आचार्य शिवंकर नामक उद्यान में पधारे हुए हैं। अजितसेन धर्म चर्चा के लिए उनके दर्शनार्थ उद्यान पहुंचे। विचार-चर्चा करते हुए अजितसेन ने जिनदीक्षा लेने का संकल्प प्रकट किया। गुणप्रभ ने स्वीकृति दे दी। फलतः जितशत्रु को राज्य भार सोंप कर अजितसेन ने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। वे घोर तपश्चरण करने लगे। महाव्रतों और समितियों का निरतिचार पालन करने लगे। बारह अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन, परीषहों का सहन, समुचित चारित्रों का परिपालन करते हुए **अजितसेन की शुभ लेश्याओं में निखार आ गया। शुभ ध्यान करते हुए** समाधिमरण पूर्वक प्राणों का त्याग किया। इसके बाद वे अच्युन नामक सोलहवें स्वर्ग में जाकर अच्युत स्वर्ग में इन्द्र हुआ।

षष्ठ संधि

श्रीधर मुनि ने अपनी बात पूरी करते हुए कहा कि तुम आयु समाप्त करने पर अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर मणिसंचयपुर में कनकप्रभ की महिषि सुवर्णमाला की कुक्षि से पद्मनाभ नामक राजकुमार हुए हो। पद्मनाभ श्रीधर मुनि के वचन (भवान्तर परम्परा) सुनकर रोमाञ्चित हो गया। विश्वस्त हो जाने के लिए श्रीधर मुनि ने यह भी कहा कि आज से दस दिन बाद एक मदोन्मत्त हाथी अपने झुण्ड को छोड़कर तुम्हारे नगर की ओर आयेगा। उसे देखकर तुम्हें विश्वास हो जायगा और सारी बातों की सचाई का आभास हो जायगा।

पद्मनाभ मुनिवर को प्रणामकर राजधानी वापिस आ गया ठीक दसवें दिन कोलाहल शुरू हो गया और बताया गया कि पद्मनाभ ने लोगों को शान्त किया और अपनी प्रतिभा, बल और बुद्धि से उसे वश में कर लिया। पुरवासी प्रसन्न हो गये। उस हाथी का नाम 'बनकेलि' रखा गया।

एक दिन की बात है, राजा पद्मनाभ की सभा में राजा पृथ्वीपाल का दूत आया और उसने कहा कि यह 'वनकेलि' हाथी पृथ्वीपाल को सप्रणाम वापिस कर दीजिए अन्यथा संघर्ष की तैयारी कर लीजिए। युवराज स्वर्णनाभ ने दूत को उत्तर दिया और कहा कि क्षमा और नीति के कारण तुम्हें बचाया जा रहा है अन्यथा मेरे पिता पद्मनाभ पृथ्वीपाल को कभी बचाने न देते। दूत ने क्रोधित होकर पुनः अपनी बात दोहरायी। सारी सभा उसके कथन पर क्षुब्ध हो उठी। पर पद्मनाभ ने उसे शान्त कर दूत को बिदा किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके पश्चात् पद्मनाभ ने अपने मन्त्रिमण्डज से विचार-विमर्श किया। और कहा कि पृथ्वीपाल को मेरी राय में दण्डित किया जाना चाहिए। मन्त्री पुरुभूत ने पृथ्वीपाल के साथ साम नीति का आश्रय लेने की सलाह दी पर स्वर्णनाभ युवराज ने उसे दण्ड देने के विचार का भरपूर अनुमोदन किया। युवराज के मन्तव्य को सदस्यों का समर्थन मिला। तब यह निश्चय किया गया कि दूत को यह कहकर बिदा कर दिया जाय कि "आज से तीसवें दिन निश्चय ही मैं आपको हाथी दूंगा, या फिर युद्ध करूंगा"।

इसके बाद पद्मनाभ भीमरथ आदि मित्र राजाओं के साथ पृथ्वीपाल से युद्ध करने के लिए उसके नगर की ओर चल पड़ा। इस प्रसंग में कवि ने सेना-प्रयाण का काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। सेना ने जलवाहिनी नदी पर पड़ाव डाला। विश्रामकर वह वहां से आगे बढ़ी।

आगे पद्मनाभ ने एक मणिकूट पर्वत देखा वह किन्नारियों का क्रीड़ा स्थल था। सभी दृष्टियों से वह रमणीक था। पद्मनाभ की सेना वहां ठहर गई। बाजार, तम्बू, भोजनालय आदि की व्यवस्था वहां पहले से ही हो गई थी। सभी ने यहां विश्राम किया।

प्रातःकाल होते ही युद्ध की भेरी बज उठी। पद्मनाभ, स्वर्णनाभ आदि सभी योद्धा युद्ध करने चल पड़े। इधर पृथ्वीपाल भी अपनी सेना के साथ रणक्षेत्र में कूद पड़ा। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। अन्त में पद्मनाभ ने पृथ्वीपाल को अपने वज्रमुष्टि नामक अस्त्र से चूर-चूर कर डाला। यह देखकर पृथ्वीपाल की सेना भाग खड़ी हुई।

इसके बाद किसी सेवक ने पद्मनाभ के समक्ष पृथ्वीपाल का कटा हुआ सिर लाकर रख दिया। उसे देखते ही पद्मनाभ को वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह संसार की असारता का चिन्तन करने लगा। बाद में स्वर्णनाभ को राज्य भार सौंपकर स्वयं संहार से निवृत्त हो गया। श्रीधर मुनि के पास जाकर उस जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। तेरह प्रकार के चरित्र का पालन करते हुए सोलह कारण भावनाओं का परि-पालन करने लगा। दर्शन विशुद्धि, विनयसंपन्नता आदि सोलह कारण भावनाएं तीर्थंकर प्राप्ति के मूल कारण हैं। अन्त में तपस्या करते हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप की आराधना की। और फिर शरीर छोड़कर वे अनुत्तर वैजयन्त स्वर्ग में चले गये। वहां पद्मनाभ अहमिन्द्र हुआ। उसकी आयु तीसरे सागर प्रमाण थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तम संधि

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में एक पूर्व देश है जो धन-धान्य से परिपूर्ण है। उस देश की राजधानी का नाम चन्द्रपुरी है। उसके राजा का नाम महासेन और महिषी का नाम लक्ष्मणा है। महासेन के विषयासक्त हो जाने से अधीनस्थ राज्य स्वतन्त्र होने लगे। यह जानकर महासेन का प्रमाद दूर हुआ और वह दिग्विजय के लिए निकल पड़ा। अपने बाहुबल से अंग, कलिंग, पांचाल, उढ़, चेदि, आंध्र द्रविड़, लाट, कश्मीर आदि राज्यों को विजित कर स्वदेश वापिस आ गया। इसके बाद साम्राज्य सुख भोगते हुए लक्ष्मणा ने गर्भ धारण किया। छह माह तक उनके घर रत्नों की वृष्टि हुई। उसके उपरान्त एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में लक्ष्मणा ने सोलह स्वप्न देखे। महासेन ने उनके फल को स्पष्ट किया।

अष्टम संधि

लक्ष्मणा का प्रसूति-काल जैसे-जैसे समीप आता गया, जंभाई, आलस आदि गर्भचिन्ह स्पष्टतर होते गये। उसका चन्द्रपान का दोहद भी पूरा हुआ। इसके बाद पौष कृष्णा एकादशी के दिन लक्ष्मणा ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। दिव्य पुष्पों की वर्षा हुई। कल्पवासी, ज्योतिषी, भवनवासी और व्यंतर देवों की निवास भूमियों पर दुन्दुभियां बजने लगीं, सिंहनाद होने लगे। सभी देव तीर्थंकर के जन्म स्थान चन्द्रपुरी चल पड़े। इसके बाद इन्द्राणी ने प्रसूतिगृह में प्रवेश किया। वहां एक सद्योत्पन्न बालक को रखकर वह जिन भगवान को उठा लाई। सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने जिन बालक को हाथों में लेकर ऐरावत हाथी पर चढ़ा लिया। देवियां मंगलगान करने लगी। भेरियां बजने लगीं। सुमेरु पर्वत की पाण्डुक शिला पर स्थित सिंहासन पर जिन बालक को बैठाया। सुमेरु से लेकर क्षीरसागर तक खड़ी देव पंक्ति ने बालक का अभिषेक किया। फिर चन्द्र की कांति के समान कान्ति संपन्न होने से बालक का नाम चन्द्रप्रभ रखागया। सभी ने उनकी स्तुति की। बाद में उन्हें चन्द्रपुरी वापिस ले गये। और वहां उन्होंने जन्माभिषेक महोत्सव मनाया।

नवम संधि

धीरे-धीरे जिन बालक चन्द्रप्रभ बड़ा होने लगा। उनका स्वभाव चपल था और क्रीड़ायें मनोरंजक थीं। बाल्यावस्था में हाथी, घोड़ों की सवारी की। बाल्यकाल समाप्त होने पर राजा महासेन ने चन्द्रप्रभ का विवाह संस्कार किया और बाद में पट्टबंधन किया। उन्होंने राज्य शासन चलाया। सभी प्रसन्न रहे। उस समय अकाल मरण नहीं हुआ और न छह ईतियों से जनपद को कभी नहीं हुई।

एक दिन अत्यधिक वृद्ध व्यक्ति लाठी के सहारे आया। कहने लगा, नाथ!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बचाइये,बचाइये । आज मृत्यु देवता मुझे उठा ले जायगा । यह कहकर वह अदृश्य हो गया । सभासदों के पूछने पर अपने अवधिज्ञान से तीर्थंकर ने बताया कि वह धर्मरुचि नामक देव था । विक्रिया के वल से वह वृद्ध बन गया था । फलतः तीर्थंकर का मन सांसारिक भोगों से विरक्त हो गया । संसार असार है । हर प्राणी को स्वकृत कर्मों का फल भोगना पड़ता है । अतः अब में इन कर्मों की निर्जरा करूंगा । इतने में इन्द्र अपने परिकर के साथ आया और उन्हें 'विमल' शिविका में बैठाया और 'सकलतु' वन में ले गया । वहां वे अपने पुत्र वरचन्द्र को राज्यभार सौंपकर तप करने लगे । पंच मुष्टियों से केश लुंचन कर उन्हें क्षीरसमुद्र में प्रवाहित कर दिया गया । फिर सभी ने मिलकर भगवान का दीक्षाकल्याणक महोत्सव मनाया ।

दसम संधि

महाव्रतों और समितियों का पालन करते हुए मूलगुणों व उत्तरगुणों का निरतिरचार पूर्वक आचरण किया । वे छयालीस दोष रहित भोजन करते थे । परिषहों को सहन करते थे । उपवास समाप्त होने पर राजा सोमदत्त के घर उनकी पारणा हुई । अन्तरंग-बाह्य शत्रुओं को समाप्त किया । कर्म प्रकृतियों को क्षीण करते हुए उसी सकलतु वन में पहुंचे जहां उन्होंने जिनदीक्षा ली थी । नागवृक्ष के नीचे आसन लगाकर वे बैठ गये । और शुक्लध्यान का अवलम्बन कर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मों का विनाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । भगवान का समवरण $8\frac{1}{2}$ योजन विस्तृत था । उसकी गन्धकुटी में भगवान विराजमान हुए । सभी जीव उनके समवरण में धर्मोपदेश सुनने के लिए एकत्रित होते थे ।

एकादशम संधि

इसके पश्चात्, दिव्य ध्वनि प्रारम्भ हुई । भगवान् ने जीवादि सप्त तत्त्वों का सांगोपांग विवेचन किया । जीव भव्य-अभव्य अथवा त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार का है । अन्य तत्त्वों का भी उन्होंने इसी प्रकार विवेचन किया । वे जहां विहार करते थे, उसके 200 योजन तक सुभिक्ष हो जाता था । उनका शरीर छाया रहित था । तथा कवलाहार और उपसर्ग से अछूता था । उनके पलक निष्पलक थे । वे चौदह अतिशयों से सुशोभित थे । आठ प्रातिहार्यों से युक्त थे । उनका धर्म परिवार इस प्रकार था—

गणधर	93
पूर्वधारी	200000
उपाध्याय	200400

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवधिज्ञानी	8000
केवली	10000
विक्रियाऋद्धिधारी साधु	14000
मनःपर्ययज्ञानी	8000
वादी	7600
आर्यिकाएँ	180000
सम्यग्दृष्टि श्रावक	300000
श्राविकाएँ	500000

भगवान चन्द्रप्रभ पृथ्वी पर विहार करते रहे। बाद में सम्मेदाचल पर्वत के शिखर पर जाकर विराजमान हो गये। वहां उन्होंने एक मास पर्यन्त विहार का परित्याग कर मुनि संघ के साथ प्रतिमायोग धारण किया। फिर भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को शुक्ल ध्यान के द्वारा समस्त पापों का विनाश कर मुक्ति प्राप्ति की। इसके बाद देवताओं ने अगुरु चन्दन आदि से उनका अन्तिम संस्कार किया और मोक्ष कल्याणक उत्सव मना कर अपने-अपने स्थान चले गये।

6. पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव

यशःकीर्ति के चंदप्पहचरिउ का उपजीव्य वीरनन्दि का चन्द्रप्रभ चरित रहा है। उत्तरपुराण के कथानक से जो साम्य और वैषम्य 'चन्द्रप्रभ चरितम्' में देखा जाता है वही साम्य और वैषम्य चन्दप्पह चरिउ में भी उपलब्ध है।

तीनों ग्रन्थों में कथानक, भवसंख्या, आयु, नाम और धर्म परिवार संख्या समान है। जो वैषम्य है वह अन्तर्कथाओं के कुछ संदर्भों में। चन्द्रप्रभचरितम् के कथानक, नाम आदि में तो कोई भेद नहीं, भेद है उत्तर पुराणगत नामों में। इसे चन्द्रप्रभचरितम् के संपादकीय वक्तव्य में श्री पं. अमृतलाल शास्त्री ने उल्लेख किया है। अतः मुझे यहां उसे दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

वीरनन्दि ने अपने महाकाव्य की कथावस्तु को जिस प्रकार से विभाजित किया है उससे कहीं अधिक वैज्ञानिक दृष्टि यशःकीर्ति की रही है जिसे हम इस प्रकार देख सकते हैं—

चन्द्रप्रभचरितम् (संस्कृत) सर्ग	चन्दप्पहचरिउ (अपभ्रंश) संधि
1. पद्मनाभ का पट्टाभिषेक	1. पद्मनाभ का पट्टाभिषेक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

2. श्रीधर से भवान्तर पूछना और श्रीपुर नगर वापिस आना	2. भवान्तर, श्रीषेण की पत्नी श्रीकान्ता को 'श्रीधर्म' नामक पुत्र की प्राप्ति, उसका प्रभावती से विवाह
3. भवान्तर कथन, पुत्र प्राप्ति न होने का कारण, पुत्र 'श्री वर्मा का उत्पन्न होना ।	
4. राजकुमार श्रीवर्मा के गुणों का वर्णन, विवाह, श्रीषेण का वैराग्य, श्रीप्रभ से जिनदीक्षा श्रीवर्मा की दिग्विजय यात्रा, वैराग्य, श्रीकान्त को राज्यभार, जिनदीक्षा, सौधर्म स्वर्ग में गमन ।	श्रीषेण द्वारा श्रीधर्म का पट्टाभिषेक 3. श्रीषेण का वैराग्य, जिनदीक्षा, श्रीवर्मा की दिग्विजय यात्रा. वैराग्य, जिनदीक्षा, सौधर्म स्वर्ग में गमन ।
5. अलका देश का कौशल नगर, अजितसेन का हरण, तपोभूषण द्वारा सम्बोधन ।	अजितसेन का हरण, तपोभूषण द्वारा सम्बोधन ।
6. अजितसेन का हिरण्य देव के साथ युद्ध, महेन्द्र से युद्ध, जयवर्मा से मित्रता, धरणीध्वज से युद्ध शशिप्रभा (जयवर्मा की पुत्री) के साथ परिणय, स्वपुर प्रवेश	4. अजितसेन का हिरण्य के साथ युद्ध, शशिप्रभा के साथ संबन्ध, स्वपुर प्रवेश
7. अजितसेन का चक्रवर्ती होना, अजितंजय का वैराग्य, जिनदीक्षा, अजितसेन की दिग्विजय यात्रा, स्वपुर प्रवेश, राज्योपभोग	अजितंजय का वैराग्य, अजितसेन का पट्टाभिषेक, अजितसेन द्वारा श्रावक व्रत ग्रहण (चंद्रप्रभ चरितम् का 7. 56 तक का विषय)
8. वसन्त वर्णन, वन विहार, जलकेलि	5. अजितसेन द्वारा अनागार धर्म का परिपालन,
9. उपवन यात्रा, जलकेलि 10. सायंकाल वर्णन, रात्रि-क्रीड़ा वर्णन, शय्यात्याग	अच्युत स्वर्ग में गमन, (चंद्रप्रभ चरितम् का 11.72 तक का विषय)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

11. अजितसेन का वैराग्य, जितशत्रु को राज्यभार समर्पण, जिनदीक्षा, अच्युत स्वर्ग गमन, वहां रत्नसंचयपुर में कनकमाला के गर्भ से पद्मनाभ के रूप में उत्पत्ति, गजप्रवेश, वन क्रीड़ा	6. पद्मनाभ का अच्युत स्वर्ग में गमन
12. पद्मनाभ और पृथ्वीपाल के युद्ध की पृष्ठभूमि, मन्त्रियों के साथ चर्चा	
13. पृथ्वीपाल से पद्मनाभ के युद्ध का प्रसंग, सेना प्रयाण, 'जलवाहिनी' नदी पर विश्राम	
14. सेना वर्णन, भटों के साथ संग्राम विमर्श	
15. पृथ्वीपाल के साथ युद्ध वर्णन, वैराग्य, जिनदीक्षा, अनुत्तर स्वर्ग गमन	7. तीर्थंकर का गर्भ कल्याणक महोत्सव
16. चन्द्रपुरी वर्णन, महासेन राजा और लक्ष्मण, महारानी के गर्भ में चन्द्रप्रभ का प्रवेश	8. जन्म कल्याणक महोत्सव 9. दीक्षा कल्याणक महोत्सव
17. चन्द्रप्रभ का जन्माभिषेक, राज्यभार, धर्मरूचि से भेंट, वैराग्य, जिनदीक्षा, कल्याण, कैवल्यलाभ, समवशरण वर्णन	10. केवलज्ञान कल्याणक महोत्सव
18. तीर्थंकर द्वारा धर्म-प्रवचन, सप्त तत्त्व विवेचन, अतिशय वर्णन, धर्म परिकर, सम्मेद शिखर से मुक्ति प्राप्ति	11. धर्म प्रवचन निर्वाण महोत्सव

सर्गों और सन्धियों की इस तुलना से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यशःकीर्ति ने सन्धि विभाजन में अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है। महाकवि ने वीरनन्दि के समान शृाङ्गारिक वर्णन अधिक न करके तीर्थंकर के चरित वर्णन पर अधिक ध्यान दिया है। यही कारण है कि वीरनन्दि ने जिस वर्णन में लगभग दस सर्ग लगाये हैं वहाँ यशःकीर्ति ने उसे दो संधियों में ही समेट लिया है। इसी प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यश:कीर्ति ने हर कल्याणक के लिए पृथक्-पृथक् सन्धि का नियोजन किया है जबकि वीरनन्दि ऐसा नहीं कर सके।

इसके बावजूद, यश:कीर्ति पर वीरनन्दि का निश्चित ही बहुत अधिक प्रभाव रहा है। लगता है, वीरनन्दि के चन्द्रप्रभचरितम् को सामने रखकर यश:कीर्ति ने अपने ग्रन्थ की रचना की है। प्रकृति वर्णन, युद्ध व श्रांगारिक वर्णन के प्रसंग में तो कहीं-कहीं यश:कीर्ति ने भाव और भाषा, दोनों को वीरनन्दि से ग्रहण किया है।

हम समूचे कथा भाग की तुलना संक्षेप में इस प्रकार कर सकते हैं—

प्रथम संधि

	चन्दप्पहचरिउ	चन्द्रप्रभचरितम्
1.		1.6
2–3	सज्जन-दुर्जन वर्णन	1.10 सज्जन-दुर्जन वर्णन कम है।
4–6	मंगलावती देश का वर्णन (कल्पनाएं समान)	1.11–21
7–8	रत्नसंचयपुर का वर्णन	1.22–28
9–10	कनकप्रभ राजा तथा कनकमाला का वर्णन (गर्भावस्था का वर्णन अधिक है तथा पद्मनाभ का वर्णन कम है)	1.39,53–57
11	पद्मनाभ का वर्णन है।	58–63 गर्भावस्था का वर्णन है ही नहीं।
12	बैल को मरते देख कनकप्रभ को वैराग्योत्पत्ति	64–66 कनकप्रभ का वैराग्य
13–14	संसार की असारता	67–77 संसार चिन्तन
15–16	पद्मनाभ का राज्याभिषेक और कनकप्रभ का श्रीधर मुनि के पास जाकर दीक्षा लेना	78–85 एक जैसा

द्वितीय संधि

1.	वनपाल द्वारा श्रीधर मुनि के आगमन की सूचना। यहां मुनिराज के गुणों की प्रशंसा बहुत कम है।	2.1–23 सूचना, मुनिराज की गुण वर्णन अधिक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

2.	उद्यान की महिमा और श्रीधर मुनि को वहां बैठे देखना	2.23–36 उद्यान का सुन्दर वर्णन।
3.	पद्मनाभ द्वारा मुनि की स्तुति	2.37–43 कल्पनात्मक वर्णन
4–6	श्रावक व्रतों का वर्णन। यहां साम-यिकता अधिक है, दार्शनिकता कम है।	2.14–110 आत्मा की अस्तित्व सिद्धि का दार्शनिक विवेचन
7.	सुगन्धि देश का वर्णन	2.111–124 कल्पनात्मक वर्णन
8.	उसमें श्रीपुर नगर का वर्णन	2.124–143 आलंकारिक वर्णन
9.	श्रीषेण राजा का वर्णन	3.1–13 श्रीषेण का वर्णन
10-11	श्रीषेण की राज्ञी श्रीकान्ता का सौन्दर्य वर्णन और उसकी खेद-खिन्नता का कारण	3.14–26 वही
12-13	सखि द्वारा स्पष्टीकरण और राजा द्वारा सान्त्वना	3.27–41 वही
14.	उद्यान तथा वसंत ऋतु का वर्णन तथा मुनिराज का आगमन	3.42–44
15.	श्रीकांता का पूर्व जन्म वृत्तान्त	3.45–55
16.	राजा को पुत्र-जन्म का ज्ञान और सागार धर्म का पालन। पंच व्रतों में कुछ विशेषता है।	3.56–58
17.	गुण व्रत-शिक्षा व्रत	इसनें इनका वर्णन नहीं दिखा।
18.	श्रीकान्ता का गर्भाहरण	3.59–68 हां
19.	श्रीधर्म नामक पुत्र का जन्म। प्रभावती के साथ उसका विवाह, फिर राज्याभिषेक	3.69–76 पुत्र का नाम श्रीवर्मा

तृतीय संधि

1.	श्रीषेण को वैराग्योत्पत्ति	4.18–32
2–4	संसारी का वर्णन	
5.	पुत्र की शिक्षा दीक्षा। इसमें गंभीरता नहीं।	4.33–43 राजनीतिक शिक्षा। यहां गम्भीरता अधिक है।
6–9	श्रीधर्म का राज्याभिषेक, दिग्विजय, मुक्ति	4.44–78 विषय वही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

10.	धातकी खण्डवर्ती अलका देश तथा उसकी कोशला नगरी का वर्णन	5,1–22 कल्पनाएं अच्छी हैं। कुछ का उपयोग चंदप्पह चरिउ में भी हुआ है।
11.	राजा अजितंजय, रानी अजित-सेना तथा पुत्र अजितसेन का वर्णन	5.23–40
12.	अजितसेन का राज्याभिषेक	5.41–49
13–14	पुत्र का अपहरण और राजा का विलाप	5.56 विलाप। यहां मार्मिकता अधिक है
15–16	तपोभूषण मुनि का आगमन और पुत्र के अपहरण की कथा का निर्देशन	5.57–91 वही

चतुर्थ संधि

1–21	अजितसेन का दिग्विजय वर्णन तथा श्रावक व्रत ग्रहण	सर्ग षष्ठ तथा सप्तम के 52 श्लोक तक का विषय

पंचम संधि

1–16	अजितसेन का दिग्विजय प्रयाण, वसंत ऋतु, कामकेलि, वैराग्य तथा स्वर्ग-गमन वर्णन। यहां आलंकारिकता दृष्टव्य है।	यहां तक का विषय वर्णन 11.73 तक समाप्त

षष्ठ संधि

1–2	पद्मनाभ द्वारा गजराज को वश में किया जाना, तथा पृथ्वीपाल के दूत का आगमन	11.74–92
3.	दूत का कथन	12.2–25
4.	स्वर्णनाभ युवराज का उत्तर, यहां व्यावहारिकता कम है।	12.26–54
5.	पद्मनाभ का कथन	12.55–58

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

6–8	पुरुभूति और युवराज के तर्क। पृथ्वीपाल से युद्ध के संदर्भ में भवभूति का नाम नहीं। कथा प्रवाह अधिक है।	11.67–111 यहां नीति का वर्णन दृष्टव्य है। तेरहवां सर्ग समाप्त।
10–11	रात की रंगरेलियों का वर्णन	चौदहवां सर्ग समाप्त। यहां यह वर्णन नहीं है।
12–14	युद्ध वर्णन	
15.	वैराग्य वर्णन	
18–25	क्रोध, मान, माया, लोभ तथा सोलह कारण भावना	यह वर्णन चन्द्रप्रभ में नहीं। यहां पन्द्रहवां सर्ग समाप्त।
26.	अनुत्तर विमान गमन	

सप्तम संधि

1–2	पूर्व देश का वर्णन	16.1–10
3–4	चन्द्रपुरी नगरी का वर्णन	
5–6	महासेन का वर्णन	यहां दिग्विजय का वर्णन नहीं है।
7–8	लक्ष्मणा का वर्णन	
9–10	गर्भ पूर्व का वर्णन। यहां सुर-लोक के आनन्द का वर्णन अधिक है।	
11–17		सोलहवां सर्ग समाप्त

अष्टम संधि

1–24	सुमेरु पर्वत पर जाना तथा चन्द्र-पुरी नगरी में अभिषेक कर वापिस आना, जन्म कल्याणक महोत्सव	17.1–44 पर समाप्त

नवम संधि

1–07	दीक्षा कल्याणक महोत्सव	इसका वर्णन नाम मात्र है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दसवीं संधि

1–17	केवल ज्ञान कल्याणक महोत्सव	सत्रहवां सर्ग समाप्त

ग्यारहवीं संधि

1–29	धर्म प्रवचन तथा निर्वाण महोत्सव	अठारहवाँ सर्ग समाप्त

इस तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यशःकीर्ति ने कथा प्रवाह को द्रुतगति से बढ़ाया पर समयानुसार उसका निर्वाह भी अपनी प्रतिभा और क्षमता के आधर पर किया। जहां आवश्यक हुआ वहां उन्होंने वीरनन्दि से भी अधिक विषय वस्तु का वर्णन किया है। इसमें कभी-कभी बड़ी सुन्दर कल्पनाएं भी दिखाई दे जाती हैं। वसंत वर्णन, सौन्दर्य वर्णन जैसे प्रसंगों पर यशःकीर्ति ने अपनी प्रतिभा का अच्छा प्रदर्शन किया है।

वीरनन्दि के अतिरिक्त महाकवि यशःकीर्ति पर कुन्दकुन्दाचार्य, उमास्वामी, पूज्यपाद, अकलंक, जिनसेन आदि जैनाचार्यों का तथा कालिदास, भारवि, माघ आदि जैनेतर कवियों का भी प्रभाव दिखाई देता है। पुर प्रवेश तथा सेना-प्रयाण वर्णन में काम क्रीड़ा का प्रसंग कालिदास, माघ आदि महाकवियों की वर्णन-परम्परा का स्मरण करा देता है। यहां इतना अवश्य दृष्टव्य है कि यशःकीर्ति ने अपनी प्रतिभा समय और शक्ति को श्राङ्गारिक वर्णन में न लगाकर सभी रसों का समान रूप से प्रयोग किया है। जैन धर्म का विवेचन करते समय भी उन्होंने जैन दर्शन की गम्भीरता को प्रकट न कर सीधा-साधा वर्णन किया है। उदाहरणार्थ वीरनन्दि ने द्वितीय सर्ग में आत्मा और परमात्मा का दर्शनिक विवेचन किया पर यशःकीर्ति ने उसके स्थान पर श्रावक व्रतों को प्रस्तुत किया है। ऐसे प्रसंगों में भाषा भी बोझिल नहीं हुई है।

7. चंदप्पहचरिउ का महाकाव्यत्व

काव्य कवि की अन्तश्चेतना का निष्यन्द है। वह अनुभूति के खरल में घिसकर शब्दों के माध्यम से रसात्मकता के साथ अभिव्यक्त होता है। यह अभिव्यक्ति चाहे गद्य में हो या पद्य में, सर्वत्र कवि का जीवन दर्शन तथा दृष्टि उसमें प्रतिबिम्बित होती रहती है। पद्य विधा में यह प्रतिबिम्बन महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा मुक्तक काव्य के रूप में होती है। महाकाव्य को ही प्रबन्ध काव्य कहा जाता है जिसमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुराण और चरित, दोनों प्रकार की धाराएं मिलती है इनमें अन्तर यह है कि प्रबंध में अलौकिकता, आवान्तर कथानकों तथा पौराणिक रूढियों को जो विस्तार दिया जाता है वह चरित काव्यों में नहीं मिलती। चरित काव्यों में तो संक्षिप्त शैली का उपयोग अधिक होता है। कडवकों की संख्या भी अपेक्षाकृत कम रहा करती है। लोक तत्त्वों का विशेष उपयोग भी इसमें किया जाता है। धार्मिक, साम्प्रदायिक तथा उपदेशात्मक दृष्टिकोण इन कथा काव्यों की भूमिका में मुख्य रहता है।

कवि इन काव्यों में धार्मिक, सामाजिक और ऐतिहासिक तत्त्वों का आलेखन करता है। साथ ही काव्यात्मक रूढ़ियों का भी परिपालन करता चलता है। जहां देश नगर, हाट के वर्णन में कवि आत्मविभोर हो जाता है वहीं स्वयंवर और काम-केलि, में वह रसासक्त हृदय को उड़ेल देता है। युद्ध के वर्णन में सम्भावित-असंभावित तत्त्वों को दर किनारे रखकर नायक की वीरता की चरमोत्कर्षता को कवि अपने काव्य में पहुंचा देता है। पारिवारिक जीवन में मान्य सामाजिक उत्सवों को भी वह पर्याप्त स्थान देता चलता है। इन सारे प्रसंगों में आठों-नवों रस यथा-स्थान प्रवाहित होते हुए दिखाई देते रहते हैं। पारम्परिक और नये उपमानों के साथ रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग भी साथ-साथ चलता रहता है।

यशःकीर्ति का चंदप्पहचरिउ इन सारी दृष्टियों से एक रसात्मक सुन्दर काव्य सिद्ध होता है। कवि की दृष्टि यद्यपि अपने आराध्य तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के चरित को उद्-घाटित करने की रही है पर उसने आनुषंगिक रूप से जीवन के मर्म को समझाते हुए जैनधर्म के प्रमुख सिद्धान्तों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। जिन्दगी के मर्म स्थलों को भावुकता से सहलाते हुए कथानायक के जीवन प्रसंगों को उपस्थित करता चला जाता है। कथा को अनावश्यक विस्तार देने में भी वह विश्वास नहीं करता।

यशःकीर्ति ने स्वयं को हर पुष्पिका वाक्य में 'महाकवि' कहा है। इस कथन से सम्भवतः कवि का यही भाव रहा होगा कि उसके काव्य को महाकाव्य कहा जाना चाहिए। ग्रन्थ के अन्तरावलोकन से उनका कथन प्रमाणित हो जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण मिल जाते हैं। चौदहवीं शती के आचार्य विश्वनाथ के समय तक महाकाव्य की परिभाषा लगभग स्थिर हो चुकी थी। उन्होंने साहित्य दर्पण में महाकाव्य का निम्नलिखित स्वरूप बताया है—

जो सर्गबद्ध हो वह महाकाव्य है। उस काव्य का नायक देवता होना चाहिए अथवा अच्छे वंश का क्षत्रिय, जिसमें धीरोदात्त आदि गुण हों अथवा वंश में उत्पन्न अनेक राजा भी उस काव्य के नायक हो सकते हैं। ऐसे महाकाव्य में शृङ्गार, वीर,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और शान्त रस में से एक रस प्रधान होता है तथा अन्य रस गौण रूप से वर्णित होते हैं। उसमें नाटक की समस्त संधियां होती है। महाकाव्य की कथा किसी ऐसे महान् व्यक्ति पर आश्रित होती है जो लोक प्रसिद्ध अथवा इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हो। धर्म, अर्थ, नमस्कारादि आशीर्वचन, या वस्तु का निर्देश होता है। महाकाव्य में कहीं-कहीं खलों की निन्दा और सज्जनों के गुणों की प्रशंसा रहती है। एक सर्ग में एक ही वृत्त की प्रधानता रहती है। परन्तु सर्ग के अन्त में वृत्त भिन्न हो जाता है। सर्ग न बहुत छोटे और न बहुत लम्बे हों। उनकी संख्या आठ से अधिक होती है। सर्ग के अन्त में आगामी कथा का संकेत मिलना चाहिए। उसमें सन्ध्या, सूर्य, रजनी चन्द्र, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्यान्ह, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर, संभोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, यज्ञ, युद्ध, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र, और अभ्युदय आदि का सांगोपांग वर्णन होता है। इस प्रकार के प्रबन्ध काव्य का नाम कवि, चरित अथवा चरित नायक के नाम पर आधारित होता है। कहीं-कहीं इससे भिन्न नाम भी हो सकता है। सर्गों का नाम कथा पर आश्रित होना चहिए।[1]

महाकाव्य की उपर्युक्त परिभाषा 'चन्दप्पहचरिउ' पर पूर्णतः घटित होती है। यह एक नायक प्रधान, सर्गबद्ध, शान्त रस प्रधान, ग्यारह संधियों (सर्गों) में निबद्ध, प्रकृति आदि के वर्णन से संयोजित, चरित नायक पर आधारित महाकाव्य है। तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के चरित का वर्णन करना ही महाकवि का मुख्य अभिधेय रहा है।

इसमें चन्द्रप्रभ तीर्थंकर के परम्परागत सात भवों का वर्णन किया गया है— 1. श्रीधर्म (श्रीवर्मा), 2. श्रीधर देव, 3. अजितसेन, 4. अच्युतेन्द्र, 5. पद्मनाभ, 6. वैजयन्तेश्वर, और 7. चन्द्रप्रभ। इस प्रसंग में धातकीखण्ड आदि द्वीपों, तथा मंगलावती, रत्नसंजयपुर, कोशल आदि नगरों का वर्णन किया गया है। चन्द्रप्रभ को नायक बनाकर उनके चरम उत्कर्ष को उनके जन्म में बताया गया है चन्द्रप्रभ की जन्म-जन्मान्तर की पत्नियों—सुवर्णमाला, श्रीकान्ता, अजितसेन आदि को नायिकाओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

1. अलंकार, रस और छन्द योजना—चंदप्पहचरिउ रस सिद्ध काव्य है। इसमें ऋतुओं में विशेष रूप से वसन्त ऋतु का वर्णन किया गया है। अजितसेन की क्रीड़ा के वर्णन-प्रसंग में ऋतुओं का विशेष आधार लिया गया है इन्हीं प्रसंगों में श्रृङ्गार रस का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। श्रीवर्मा और अजितसेन की दिग्विजय

---

1. साहित्य दर्पण, विश्वनाथकृत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यात्राओं तथा, महेन्द्र, पृथ्वीपाल आदि राजाओं के साथ उनके युद्ध प्रसंगों पर वीररस का सुन्दर प्रयोग हुआ है। संसार चिन्तन और जीवादि तत्त्वों के विवेचन के संदर्भ में शान्तरस का आधार लिया गया है। प्रस्तुत कृति का यही मुख्य रस है अजितंजय का पुत्र शोक करुणरस के लिए तथा चन्द्रप्रभ की बाल लीला वात्सल्य रस के लिए उद्धृत की जा सकती है।

अलंकारों में शब्द और अर्थ, दोनों प्रकार के अलंकारों का उपयोग किया गया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक तथा अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान, अपह्नुति, श्लेष, अप्रस्तुत प्रशंसा, विशेषोक्ति, अर्थान्तरन्यास, संसृष्टि, संकर, समासोक्ति, दृष्टान्त आदि अलंकारों का सुन्दर संयोजन हुआ है।

छन्द-योजना की दृष्टि से यह ग्रन्थ वैविध्य लिये हुए अधिक नहीं है। फिर भी उसका संयोजन मनोहारी हुआ है मात्रिक समवृत्तों में पद्धडिया, अडिल्लह, त्रोटनक और पादाकुलिक; वार्णिक समवृत्तों में त्रिपदी, मात्रिक; विषम वृत्तों में गाथा, दोहउ, तथा ध्रुवक और घत्ता का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है कवि ने इन वृत्तों का प्रयोग विषय और संदर्भ के अनुकूल किया है। माधुर्य, प्रसाद और ओज गुणों का भी मणि-काञ्चन संयोग हुआ है।

चन्दप्पहचरिउ में ग्यारह सन्धियां हैं जिनमें कुल पद्य और उनकी श्लोक संख्या (ग्रन्थ संख्या) इस प्रकार है—

सन्धि	पद्य (कडवक)	श्लोक (ग्रन्थ) संख्या
प्रथम	16	162
द्वितीय	19	193
तृतीय	16	165
चतुर्थ	21	214
पंचम	16	173
षष्ठ	26	248
सप्तम	17	160
अष्टम	24	264
नवम	24	234
दशम	17	192
एकादशम्	29	300
कुल	225	2305

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सन्धि की रचना कडवक छन्दों से होती है और कडवक छन्दों का समुदाय होता है। इन छन्दों में प्रमुख छन्द चार हैं—पद्धडिका, अडिल्ल, वदनक और पारणक। हर सन्धि घत्ता से समाप्त होती है जिसे धुवा, धुवक या छड्डणिया भी कहा जाता है। यह घत्ता षट्पदी, चतुष्पदी या द्विपदी होता है। इसके भी अनेक भेद-प्रभेद होते हैं। घत्ता की अन्तिम मात्रा ह्रस्व हो या दीर्घ, इसका कोई निश्चित नियम नहीं है। कड़वक में कुल आठ यमक या सोलह पंक्तियों का होना आवश्यक माना जाता है पर उत्तरकाल में यह नियम शिथिल होता हुआ दिखाई देता है। यश:कीर्ति के चन्दप्पहचरिउ में भी इस नियम का पालन नहीं हुआ। सन्धि के प्रारंभ में आने वाले छन्दों को धुवक कहा जाता है। चन्दप्पहचरिउ में भी ऐसे धुवक मिलते हैं परन्तु उस परिमाण में नहीं जिस परिमाण में पुष्पदन्त ने दिये हैं।

9. धार्मिक और सामाजिक संदर्भ

इन सन्धियों में परम्परानुसार राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक विवेचन यथास्थान किया गया है। दो संस्थानों पर ग्राम वर्णन भी मिलता है। जैन धर्म के विवेचन की दृष्टि से तो यह ग्रन्थ एक अच्छा संग्रह ग्रन्थ है। गुणव्रतों के प्रसंग में कवि ने दिक्परिमाण, भोगोपभोगपरिमाण और अनर्थदण्ड व्रतों का उल्लेख कर आचार्य कुंदकुंद का अनुकरण किया है। कुंदकुंद द्वारा ही मान्य शिक्षा-व्रतों में सामायिक, प्रोषधोपवास और सल्लेखना को तो स्वीकार किया है पर सोमदेव का अनुकरण यश:कीर्ति ने अतिथि संविभाग के स्थान पर दान को रख कर किया है (2.6)। अष्टमूल गुणों का उल्लेख अवश्य आया है पर उनको गिनाया नहीं गया है। उत्तर गुणों अथवा शीलव्रतों के रूप में इन व्रतों का विभाजन किया गया है। मुनि आचार का भी संक्षिप्त वर्णन मिलता है। इन सारे संदर्भों में मुझे कोई विशेषता नहीं दिखी, इसलिए हम उसका पृथक् विवरण नहीं दे रहे हैं।

10. भाषा और व्याकरण

चंदप्पहचरिउ अपभ्रंश का काव्य ग्रन्थ है। अपभ्रंश पथ भ्रष्ट अर्थात् विगड़े शब्दों का प्रतीक है। ये ऐसे विकृत शब्द होते थे जो लोक भाषा में प्रचलित थे और जिन्हें शिष्ट प्रयोग की सफल श्रेणी में नहीं गिना जाता था। ये शब्द संस्कृत व्याकरण से भ्रष्ट और देशज रहते थे। अपभ्रंश शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग यद्यपि भर्तृहरि के अनुसार व्याडि ने किया है पर उनका ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता। उपलब्ध ग्रन्थकारों में पतंजलि (150 A-D) का नामोल्लेख किया जा सकता है जिन्होंने महाभाष्य में इस शब्द को अपभ्रष्ट के अर्थ में प्रयुक्त किया है और साथ ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृत गौ शब्द के अपभ्रष्ट रूप गावी, गोणी, गोता आदि दिये हैं। भरत (ईसा की तृतीय शताब्दी) ने प्राकृत को जाति भाषा मानकर उसे समान शब्द, विभ्रष्ट और देशीगत के रूप में विभक्त किया है। इसी प्रसंग में उन्होंने संस्कृत को आर्य भाषा माना है जो व्याकरण से परिष्कृत है। जाति भाषा का तात्पर्य उनकी दृष्टि में ऐसी भाषा से है जो सर्व साधारण जन समाज में प्रचलित थी और जिसका कोई व्याकरण नहीं था। भरत ने ऐसी भाषा को उकार बहुला कहा है जो पश्चिम में प्रचलित थी। और इसी तरह एकार वाली भाषा पूर्व में प्रयुक्त होती थी। इसके बाद भामह (ई. की छठी शती) ने अपभ्रंश को संस्कृत और प्राकृत के साथ पृथक् रूप में गिनाया और दण्डी ने इन तीनों में मिश्र भेद को और जोड़ दिया। राजशेखर ने तो अपभ्रंश के कुछ नियम भी बना दिये। उनके अनुसार परिचारकों को अपभ्रंश ही बोलना चाहिए। उन्होंने यह भी लिखा कि मरुभूमि, राजपूताना और पंजाब के कवि अपभ्रंश का विशेष प्रयोग करते हैं जिसमें टकार, ककार और भकार अधिक होता है। इसी तरह अन्य आलंकारिकों और वैयाकरणों ने अपभ्रंश को समुचित स्थान दिया है। नाटकों में तो उसका प्रयोग बहुलता से हुआ ही है। दण्डी ने उसे आभीरी भी कहा है। नमिसाधु ने भी उसका समर्थन किया है। यहां आभीरी का तात्पर्य ग्राम्य भाषा से है।

अपभ्रंश भाषा-विकास की कथा को द्योतित करती है। वह मध्यकालीन प्राकृत की अन्तिम अवस्था है। बुद्ध और महावीर ने प्राकृत में ही अपना उपदेश दिया। उन्होंने उसे संस्कृत में अनुदित करने की अनुमति नहीं दी। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि प्राकृत एक समृद्ध जनभाषा के रूप में उस समय प्रचलित थी। इसी भाषा का उत्तरकालीन विकसित रूप अशोक के उत्तर-पश्चिम, गिरनार,, गंगा यमुना तथा महानदी के बीचवर्ती प्रदेश और दक्षिण में प्राप्त अभिलेखों में पाया जाता है। निय प्राकृत का भी उल्लेख इस संदर्भ में किया जाना आवश्यक है जिसमें खरोष्ठी लिपि में लिखित धम्मपद उपलब्ध हुआ है। इन भाषाओं से इतना तो स्पष्ट ही है कि प्राकृत एक जाति भाषा के रूप में समग्र देश में फैली हुई थी। संस्कृत तो एक विशिष्ट वर्ग की भाषा थी जिसे कवियों और साहित्यकारों ने संवारा था। बुद्ध और महावीर ही प्रथम महापुरुष हुए हैं जिन्होंने सर्वप्रथम जनबोली को अपनाया। इसका जनरूप वेदों में भी खोजा जा सकता है।

अपभ्रंश को साधारणतः तीन भेदों में विभक्त किया जाता है–1. पूर्वी अपभ्रंश अथवा मागधी अपभ्रंश जिससे प. वंगला, उड़िया, भोजपुरी मैथिली आदि भाषाएं निकली हैं। 2. दक्षिणी अपभ्रंश, और 3. पश्चिमी अपभ्रंश जिसे नागर अपभ्रंश भी कहा जाता है। वैसे तो अपभ्रंश के सैकड़ों भेद हो सकते हैं पर मूलतः तीन भेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

 CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही माने गये हैं—नागर, व्राचड और उपनागर। नागर (शौरसेनी) अपभ्रंश से ही राजस्थानी, और गुजराती भाषाओं का जन्म हुआ है। इसी तरह अन्य भेदों के विषय में कहा जाये तो यह भाषा वैज्ञानिक तथ्य स्पष्ट हो जायेगा कि महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी, मागधी से बंगला, विहारी, आसामी, उड़िया और व्राचड सेसिन्धी का जन्म हुआ है। उनमें नागर अपभ्रंश में अधिक साहित्य लिखा जाता रहा है। चंदप्पहचरिउ भी इसी में लिखा गया है। पूर्वी-पश्चिमी हिन्दी के भेदों के आधार पर भी इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है।

अपभ्रंश में स्वर और व्यञ्जन के संदर्भ में निम्नलिखित प्रमुख विशेषताएं दृष्टव्य हैं—

1. ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ स्वर की वृद्धि।
2. ह्रस्व वर्णों का प्रचुर प्रयोग है। अन्त्य स्वर भी ह्रस्व हो जाते हैं।
3. यश्रुति का प्रयोग अधिक है।
4. प्राकृत की सामान्य प्रवृत्तियां स्थिर रहीं।
5. य के स्थान पर ज का प्रचुर प्रयोग
6. ञ का अभाव

7. दन्त्य न का प्रायः अभाव है। उसके स्थान पर ण हो जाता है विशेषतः उत्तर-पश्चिमी और प्राच्य क्षेत्र में प्रायः न और ण दोनों हैं।

8. प्राच्य प्रदेश में व को व उच्चारण करने की प्रवृत्ति अधिक है। इसके विपरीत पश्चिम में वकार बहुलता है।

चंदप्पहचरिउ वस्तुतः भाषा की दृष्टि से भी एक उच्चकोटि का अपभ्रंश काव्य ग्रन्थ सिद्ध होता है। भाषिक अध्ययन करने पर इसमें प्रयुक्त भाषा और उसका व्याकरण संक्षेप में इस प्रकार है—

प्रयुक्त स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ,
ं अनुस्वार एवं ँ अनुनासिक।

प्रयुक्त व्यञ्जन—क्, ख्, ग्, घ्
च्, छ्, ज्, झ्,
ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्,
त्, थ्, द्, ध्, न्
प्, फ्, ब्, भ्, म्
य्, व्, र्, ल्, स्, ह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाषा विज्ञान की दृष्टि से इन्हें हम इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं—

(1) खण्डात्मक स्वनिम

(i) स्वर :

1. जिह्वावा का व्यवहृत भाग—

(i) अग्र स्वर—इ, ई, ए

(ii) पश्च स्वर—आ, उ, ऊ, ओ

(iii) मध्य स्वर—अ

2. जिह्वावा के व्यवहृत भाग की ऊंचाई—

(i) संवृत—इ, ई, उ, ऊ

(ii) अर्ध संवृत—ए, ओ

(iii) अर्ध विवृत—अ

(iv) विवृत आ

3. ओष्ठ की स्थिति—

(i) वर्तुलित—ओ, ऊ,

(ii) अवर्तुलित—इ, ई, ए

मात्राकाल और कोमल तालु की दृष्टि से चंदप्पहचरिउ के स्वरों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—

मूल स्वर—(i) ह्रस्व–अ, इ, उ, ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ

(ii) दीर्घ–आ, ई, ऊ, ए, ओ

(iii) संयुक्त स्वर–अइ, अउ, एइ, एउ

(iv) अनुनासिक स्वर–अनुनासिकता प्रायः सभी स्वरों के साथ उपलब्ध है।

इन स्वरों के लघुतम युग्म शब्द की प्रत्येक स्थिति में मिल जाते हैं। इनके उपस्वनिम भी खोजे जा सकते हैं। इनमें बलाघात शून्य स्वर को ह्रस्व करने की विशेष प्रवृत्ति देखी जाती है। इसलिए अन्त्य स्वर ह्रस्व हो जाते हैं।

स्वर विकार

1. अ > इ = कारणि, उप्पलि

अ > उ = परिमलु, सम्मुहु

अ > ए = बेल्लि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

2. आ > अ = कंता, तह, चमर, अप्प, अम्ब
आ > उ = विणु, पुणु, गरवरु
आ > ऊ=विगू
आ > ओ = तहो
3. इ > अ = सिरस
इ > उ = उच्छु
इ > ए = जे, ते
4. ई > आ = आरिस
ई > इ = कित्ति, नइ, रयणि
5. उ > अ = मउड
उ > इ = पुरिस
उ > ई=धीय
उ > ओ=पोग्गल
5. ऊ > उ = पुव्व, मुहुत्त, बहु
ऊ > ए=नेउर
ऊ > ओ = थोर
6. ऋ > अ=पसरिय
ऋ > इ = अमिय, किमि
ऋ > उ – पुहवि
ऋ > ए – गेह
ऋ > रि – रिद्धि
ऋ > अरि – उब्भरिय
7. ए > इ – पंचेंदिय
8. ऐ > ए – केलास
ए > अइ – दइव
9. औ > उ – अण्णुणए
ओ > ए – करेमि
10. ओ > ओ – जोव्वणु
11. ह्रस्व स्वर की दीर्घीकरण प्रवृत्ति—सिहीं, सीस
12. दीर्घ स्वर का ह्रस्वीकरण—अच्छेरअ, परिक्खा, रज्ज
13. ह्रस्व स्वर का अनुस्वारत्व—दसण, असु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

14. स्वर लोप :
   (i) आदि स्वरलोप—हउं हेट्ठिल
   (ii) मध्य स्वरलोप—उदिट्ठ
   (iii) अन्त्य स्वरलोप—सहावें

15. आदि स्वरागम—इत्थि

16. स्वर भक्ति—आयरिय, किलेस

17. स्वर व्यत्यय—अच्छरिय, वंभचरिय

18. स्वरगम—इच्छु/उच्छु, पेक्खिवि, मेल्लिवि ।

संयुक्त स्वर

(i) (अइ) दइअ, अइस

(ii) (अउ) पउर

(iii) (एइ) देइ, लेइ

(iv) (एउ) नेउर

अनुनासिक स्वर

(अँ) : भउहँ

(इँ) : तहिँ, तुम्हहिँ, सइँ

(उँ) : संपत्तउँ, चउहुँ

अनुवार स्वर—अनुस्वार के पूर्ववर्ती स्वर प्रायः अनुनासिक होते हैं। वर्ग के सभी अन्तिम वर्ण अनुस्वार में परिवर्तित हो गये। अनुस्वार कहीं-कहीं बहुवचन का भी द्योतक है। निरनुनासिकता की प्रवृत्ति भी दृष्टव्य है—जैसे—तीसा, सीह।

(अं) पयंगु, जहं

(इं) तहिं, णाहिं, भणइं

(उं) तणउं, मुहुं

स्वर लोप

आदि स्वर लोप—हउं, वलग्ग

मध्य स्वर लोप—पडिलिउ

अन्त्य स्वर लोप—एउ

स्वराघात—गइ, कित्ति, विश्रास। अन्त्याक्षरों पर प्रायः बलाघात नहीं रहता।

व्यञ्जन परिवर्तन और विकार—यश्रुति का प्रयोग विशेष हुआ है। पर व श्रुति का अधिक प्रयोग नहीं हुआ।

क > य = लोय, मयरंद, अणेय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ख > ह = पमुह, सुह-दुह, साहा
ग > य = कालायरु, सायार, अणुराय
ध > ह = मेह
च > य=वयणइं; च > अ=लोअण
छ > ञ – अपभ्रंश में इसका अभाव है।
ज > य = तेयमंडलि

7. ट > ड = कोडि, फाडहु, अडविहि, सुहड
8. ठ > ढ = मढ, वीढ
ड > ल = कील
ण – णकार प्रवृत्ति अधिक है।
9. त > य = निग्गय, इयर, मीलिय, अमय
त > ड = पडिहारु
10. थ > ह = तह, मिहुण; थ > ढ=पढम; थ > ठ = गंठिहि
11. द > य = केयार; द > उ = पउमनाहु
12. ध > ह=निहाण, सिरिहरु
13. न > ण = वणवालहो, आणंद। यह प्रवृत्ति अधिक है।
14. प > व=उवरि, तव, रूव, दीव
15. फ > व=गुह
16. भ > ह = चंदप्पह
17. म > व=सवण
य > ज = जस, संजोयवि, जोइ
य > इ = अक्खइ, कोइल
19. र > ढ = ढ आविउ
र > ०लोप = पउ (प्रिय)
20. व > उ=देउ, भाउ
व > अ=तिहुअण
व > य = तिहुयण
व > म = एमइँ
21. ष > छ=छमुण
22. श > ह=दह; श > स=दस
23. पुरोगामी समीकरण—कम्म, धम्म
24. पश्चगामी समीकरण—अग्गि, जोग्ग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयुक्त व्यञ्जन परिवर्तन

क्त् > त् = मुत्ता, क्त > त्त = रत्तउ

क्ष् > क्ख् = रक्खण, उक्खित्त

क्ष् > ख्=खंतव्वु, खणि, खरीवहि

ज्ञ् > न्=नाणावरण; ज्ञ=ण्ण = विण्णाण

त्य् > च्च् = सच्च

त्स् > च्छ् = वच्छ, उच्छाह

द्य > ज्ज = उज्जोय

ध्य्, ध्व् > झ = अज्झाण

द्र > द्द = समंतभद्द

ष्ट > ट्ठ = दिट्ठ

ष्ठ > ट्ठ = परमेट्ठिए

ष्ण > ण्ह = उण्ह; ष्ण > ण्ह=तन्हा

ष्क > क्ख = पुक्खरहु

स्व > स = सहाव

श्री > सिरि = सिरिफल

स्म > म =विंभिय

स्त > थ = थंभ

(2) अधिखण्डात्मक स्वनिम–इसके अन्तर्गत अनुनासिकता, विवृति, सुरलहर, तथा बलाघात आते हैं। चंदप्पहचरिउ में इनमें प्रथम दो के उदाहरण खोजे जा सकते हैं।

कारक रूप

संज्ञाएं—चंदप्पहचरिउ के संज्ञा कारक रूपों का अध्ययन करने पर निम्न-लिखित प्रत्ययों का पता चलता है इनमें मुख्यतः प्रथमा, षष्ठी और सप्तमी विभक्तियां शेष रह गईं। उकार बहुला प्रकृति है। निर्विभक्तिक पुल्लिग अकारान्त प्रयोग अधिक मिलते हैं।

एकवचन	बहुवचन
1. उ, ओ (कम मिलता है)	०
2. उ, ०	०
3. ए, एँ, ण	हिं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

4. सु, स्सु हो ०	हँ
5. हु, हे	हुँ
6. सु, स्सु, हो	हं
7. इ, ए	हिं

पुल्लिग इकारान्त तथा उकारान्त आदि और स्त्रीलिंग के इकारान्त, उकारान्त आदि के रूप-प्रत्यय कुछ परिवर्तनों के साथ इसी प्रकार लगाये गये हैं।

सर्वनाम

एकवचन	बहुवचन
1. हउँ, तुमं, सो, इहु	जे., मे
2. मइँ, तं, तुमं, ममं	जाइँ, ताइँ, अम्हे
3. मइँ, तेण, जेण	अम्हारिंहि, अम्हेहिं
5. मइ, ममाहि	अम्हाहिंतो
6. मज्झु, मम, मोर, तोर तव, तहो, जासु, मम	तुम्हहँ, अम्हहँ, अम्हाण ताणं, जाणं
7. अम्हम्मि, मए	अम्हासु, ममेसु
8. संबोधन-तुमं	

विशेषण और अव्यय—

1. (i) परिमाणवाचक विशेषण—जोवडु, तेवडु, केवडु, एवडु
   (ii) गुणवाचक विशेषण—एहड, जेहड, अम्हारिस, तेहु, एहु, जेहु
   (iii) रीतिवाचक—जेम, केम, जिह, किह

2, अव्यय–(i) स्थानवाचक—एत्थु, जेत्थु, तेत्थु, केत्थु, इह, कह, कहिं, एत्तहिं,
   (ii) समयवचक—जा, जाम, ताम, जाव, ताव,
   (iii) रीतिवाचक—अह, जह, किह, जेम, तेम
   (iv) संबंधवाचक—सहुँ

संख्या वाचक शब्द—

एक्कु, दो, विण्णि, तिउ, तिण्णि चउ, पंच, छ, सत्त, अट्ठ, नव, दस, दह, एयारह, वारह, तेरह, चउदस, पण्णारह, सोलह, सत्तारह, अट्ठारह, वीस, बावीस, पणवीस, अडवीस, तीस, तेतीस, पंचास, सउसढु, बाहत्तरि, पंचासी, सय, सहस, लक्ख, कोडि, कोडाकोडि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संख्या वाचक विशेषण

पढमु, बीयउ, बीऊ, तइउ, चउत्थो, पंचमो, छट्ठो, छट्ठो, सत्तमो, अट्ठमो, नवमो, दसमो, दहमो, एयारहमो ।

तद्धितप्रत्यय—अल्ल, आल, आवण, इक्क, इण, इल, उल्ल, एर,

क्रिया रूप

क्रिया रूपों में वर्तमान और भविष्य वाचक रूप अधिक मिलते हैं । भूतकाल का काम प्रायः कृदन्त शब्दों से निकाला गया है । आत्मनेपद और परस्मैपद का भेद भी यहां समाप्त हो गया है । आज्ञार्थक और विध्यर्थक रूप समान हैं । कर्मणि-प्रयोग के रूप भी मिलते हैं । धातुओं में अधिक वैविध्य दिखाई नहीं देता ।

कृदन्त

(i) वर्तमान कृदन्त अंत और माण प्रत्यय जोड़कर बनाये गये हैं—जाणंत, पइसंत; वट्टमाण, सोहमाण । (ii) भूतकृदन्त में अ (हुअ, गअ), इअ इउं (भक्खिअ, दिट्ठउ,) तथा इय (कहिय, छडिड्य) प्रत्यय लगते हैं । (iii) सम्बन्धक कृदन्त—इ (लहि), इउ–(करिउ), इवि (करिवि, पेक्खिवि), ऊण (णमिऊण, मुत्तूण), प्पिणु (करेप्पिणु, मरेप्पिणु), विणु (देविणु) ।

(iv) हेत्वर्थ कृदन्त—गंतु, गंतूण

(v) विध्यर्थ कृदन्त—करिव्वउ, सहेव्वउं,

आधुनिक भाषाविज्ञान की शेष प्रणालियों के आधार पर भी चंदप्पहचरिउ का भाषिक अध्ययन किया जा सकता है । शब्दसाधक प्रणाली में पूर्व प्रत्यय, पर प्रत्यय, समास और पुनरुक्ति तथा रूपसाधक प्रणाली में संज्ञा, विशेषण, लिंगविधान, सर्वनाम, क्रिया, संयुक्तकाल, अव्यय आदि पर विचार किया जाता है । इसी प्रकार रूप स्वनिमिकी और वाक्य विन्यास पर भी चर्चा की जाती है । विस्तार भय से इसे हम फिलहाल यहां छोड़ दे रहे हैं ।

पीछे हमने अपभ्रंश के भेदों का उल्लेख किया है । उनकी कतिपय विशेषताएं चंदप्पहचरिउ की भाषा को समझने के लिए यहां उल्लेखनीय हैं । अपभ्रंश के भेद क्षेत्रीय आधार पर किये गये हैं । इसलिए विद्वानों ने दक्षिणी, पूर्वी और पश्चिमी ये तीन भेद किये हैं । तगारे के अनुसार ये विशेषताएं इस प्रकार हो सकती हैं ।[1]

(1) दक्षिणी अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएं

1. यहां ष का छ होता है जबकि अन्यत्र-क्ख या-ख होता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

2. यहां अकारान्त पु. तृ. एकवचन में एण मिलता है जबकि अन्य त्र यह रूप एकारान्त है।
3. उ. पु. एक. में यहां-मि जबकि अन्यत्र-उँ आता है।
4. अन्य ब.–न्ति परक होता है जबकि अन्यत्र हिं-परक होता है।
5. साम. भवि. क्रियापद–स-परक होता है जबकि अन्यत्र-ह-परक, जैसे करिसइ-करिहइ।

(2) पूर्वी अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएं—

(i) क्ष > ख–क्ख = खण, अक्खर
(ii) त्व > तु–त्त = तुहुं, तत्त
(iii) द्व > दु = दुआर
(iv) ष, स > श
(v) आदि में महाप्राण ध्वनियां नहीं आतीं।
(vi) निर्विभक्ति संज्ञा पदों का प्रयोग

(3) पश्चिमी अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएं—

1. -हि तथा–हिं दोनों प्रत्यय मिलते हैं।
2. ए और न दोनों मिलते हैं। पर शब्द के प्रारम्भ में प्रायः ए स्वीकार किया गया है।
3. व और ब की अदला-बदली।
4. अन्त्य स्वर का ह्रस्वीकरण
5. आदि-अनादि स्पर्श व्यंजनों का महाप्राण हो जाना।
6. य का ज।
7. स का शेष रहना।
8. मध्यवर्ती क, ग, त, द, च, ज का लोप और ख घ फ भ का प्रायः ह हो जाना।
9. म का व में परिवर्तन।
10. नपुंसक लिंग की प्रायः समाप्ति।
11. कारक विभक्तियों के तीन समूह—(i) प्रथमा, द्वितिया, सम्बोधन, (ii) तृतिया, सप्तमी, और (iii) चतुर्थी, पंचमी और षष्ठी।
12. लट् लकार के रूपों में घिसाव, करउँ, करहुं, जैसे रूपों का प्रयोग-बाहुल्य।
13. लोट् लकार में अ, इ, उकारान्त रूपों का प्रयोग। जैसे कर करि करु।
14. लृट् में -स-ह-रूप। जैसे करिसइ, करिहइ।

---

1. Historical Grammar of Ahabhransa, 18-19. : हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, डॉ. नामवरसिंह पृ. 52–63

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

15. भूतकालीन क्रियापद तिङ्न्त नहीं थे ;

16. तुमुन आदि प्रत्ययों के स्थान पर अण का प्रयोग ।

17. पूर्वकालिक प्रत्ययों में–इ,–एप्प-एप्पिणु-एव-एविणु आदि शब्दों का प्रयोग ।

18. स्वार्थिक प्रत्यय उ का प्रयोग बाहुल्य ।

इनमें चंदप्पहुचरिउ की भाषा पश्चिमी अपभ्रंश है। राजस्थानी भाषा इससे उद्‌भूत हुई है। इसमें पुरानी राजस्थानी के रूप सरलता पूर्वक देखे जा सकते हैं। कवि भी राजस्थानी ही रहा है इसलिए उसकी भाषा में ये विशेषताएं होना स्वाभाविक हैं। उदाहरणार्थ—

1. अ को उ हो जाना–पुहरु ।
2. आद्य अ का प्रायः सुरक्षित रहना–अच्छइ ।
3. इ का अ अथवा य हो जाना–एत्तिउ ।
4. दीर्घ और ह्रस्व दोनों में ए, एँ मिलना ।
5. ए का इ होना–अम्हि, वि. ।
6. अनुस्वार और अनुनासिकता।
7. हि-हिं, हुं के प्रयोगों में आधिक्य।

अपभ्रंश वस्तुतः हिन्दी का पूर्ववर्ती रूप है जिसे हम भाषा के विकास की सीढियों में खोज सकते हैं। देशज शब्दों के प्रयोग में भी इसके रूप सहजता पूर्वक प्राप्त हो सकते हैं। इस भाषा का साहित्य-भण्डार विपुल और समृद्ध रहा है। स्वयंभू योगीन्दु और हेमचन्द्र की परम्परा को जीवित रखने वाले अपभ्रंश कवियों की प्रतिभा से सैकड़ों ग्रन्थों का सर्जन हुआ है जो आज भी ग्रन्थ-भण्डारों में अनदेखे और असुरक्षित–से पड़े हुए हैं। इधर साहित्य और भाषा के विकास में उसका महत्वपूर्ण योगदान है। शोधार्थी इस दिशा में भी अब आगे बढ़ रहे हैं। भाषा विकास की भूली कड़ियों को खोज निकालने के लिए अपभ्रंश साहित्य को प्रकाश में लाने की महती आवश्यकता है। इससे जनबोली के रूप का क्षेत्रीय प्रयोग प्राचीन साहित्य के अध्ययन से सामने आयेगा और उसके विकास की परिधि अभिव्यक्त हो सकेगी ।

प्रस्तुत ग्रन्थ सन् 1978 में संपादित होकर तैयार हो गया था। श्रद्धेय गुरुवर डॉ. दरबारीलाल कोठिया ने इसे वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट से प्रकाशित करने का विचार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यक्त किया जिसे मैंने स्वीकार कर लिया । तदर्थ हम उनकी साहित्यिक लगन के प्रति विनयावनत हैं। इधर शिक्षा और संस्कृति मन्त्रालय ने भी इसके प्रकाशन की ओर रुचि दिखाई है । अपभ्रंश साहित्य के प्रति बढ़ते हुए अनुराग का का यह फल है । इस मूल्यवान् साहित्य के प्रकाशन की ओर हमारा ध्यान अधिक आकृष्ट होना चाहिए ।

मुद्रण की अशुद्धियाँ पाठक के लिए खलेंगी, यह स्वाभाविक है । कुछ मेरा प्रवास और कुछ प्रेस की असुविधा, दोनों कारणों से मुद्रण पर पूरा ध्यान नहीं दिया जा सका । अनुनासिक तथा ह्रस्व एकार, ओकार का चिह्न भी नहीं दिया जा सका । इसका हमें खेद है । विस्तार के भय से अनुवाद को हमने शब्दशः न रखकर भावात्मक रखा है ।

जयपुर का प्रवास, लगता है, अब समाप्ति की ओर आ रहा है । पारिवारिक परिस्थितियाँ जयपुर छोड़ने के लिए विवश कर रहीं हैं । नागपुर से इतनी दूर पारिवारिक उत्तरदायित्व से विमुख-सा होकर रहना न तो संभव है और न उपयुक्त ही । जैन संस्कृति की सेवा के लिए जैन केन्द्र का अधिभार स्वीकार किया था, पर उसका समुचित विकास नहीं कर सका । हर संस्थान की एक सीमा होती है । साधनों, परिस्थितियों और अन्तर्मन से किये गये प्रयत्नों पर उसका विकास निर्भर करता है । यह विकास मैं सारे प्रयत्न करने के बावजूद नहीं कर सका, इसका हमें अफसोस है । आशा है समाज इस पर विशेष ध्यान देगा । स्वार्थ का दीमक संस्थान को खाये बिना नहीं रहता । त्याग किये बिना संस्थान का निर्माण नहीं होता । और ईमानदार व्यक्ति को जीवित रहने नहीं दिया जाता । एसी स्थिति में प्रेम-सहयोग के बिना किसी भी केन्द्र का समुचित विकास करना सम्भव नहीं हो पाता ।

प्राच्य ग्रन्थों का संपादन-प्रकाशन एक ज्ञान-यज्ञ है । इस ज्ञान-यज्ञ में जिन्होंने भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से हमारा सहयोग किया है, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ । विशेष रूप से प्रो. माधव रणदिवे सातारा का सहयोग उल्लेखनीय है जिन्होंने कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये हैं । प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन इस प्रवास में हो गया, यह प्रसन्नता का विषय है ।

पी–3, विश्वविद्यालय निवास
जयपुर–302004
न्यू एक्सटेंशन एरिया
सदर नागपुर–440001

दि 12–8–1985

भागचन्द जैन भास्कर
प्रोफेसर एवं निदेशक,
जैन अनुशीलन केन्द्र,
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5273

ॐ णमो सुददेवदाए

सिरिजसकित्तिविरइउ

चंदप्पहचरिउ

पढमो संधि

(1)

णमिऊण[1] विमल[2] केवललत्थी सव्वंगदिण्णपरिरंभं, ।
लोयालोयपयासं, चंदप्पह सामियं सिरसा ॥1॥

तिक्कालवट्टमाणं[3], पंच वि परमेट्ठिए तिसुद्धो हं ।
तह णमिऊण[1] भणिस्सं, चंदप्पहसामिणो चरियं ॥2॥

जिणगिरिगुहणिग्गय[6], सिवपहसंगय, सरसइसरिसुहकारिणिय[5] ।
महु होउ पसण्णिय. गुणहरवण्णिय[6], तिहुवणजणमणहारिणिय ॥
हुंबडकुलणहयलि[7] पुप्फयंत, बहु देउ कुमरसिंह वि[8] महंत[9] ।
तहो सुउ णिम्मलु[10] गुणगणविसालु[11] सुपसिद्धउ पभणइ सिद्धपालु [12] ॥
जसकित्तिविबुह[13] करि तुहु[14] पसाउ, महु पूरहि पाइयकव्वभाउ ॥

---

1. क, घ, नमिऊण,
2. क, बिमल०,
3. क, ख, वड्ढमाणं,
4. क, घ, ०निग्गय,
5. ख. कारणीय, घ. कारणिय,
6. गुणहिर०,
7. क. घ. ०नहयलि,
8. क. बि,
9. ख. कुमरसिंहहो (?) वे महत,
10. ख. णिम्मल,
11. क. ० बिसालु,
12. =शांतोदांत इत्यर्थः,
13. घ. ० विबुह०,
14. घ. तुहुं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तं णिसुणिवि[1] सो भासेइ-मंदु, पंगलु तोडेइ केम चंदु ।।
इह सुइ बहु गणहर णाणवंत, जिणवयण[2] रसायणु वित्थरंत ।।
गणिकुंदकुंदवच्छल्लगुणु,[3], को वण्णिउ[4] सक्कइ इयरु[5] जणु[6] ।।
कलिकालि जेण मसिलिहिउ णामु, सइ[7] दिट्ठउ केवलऽणंत धामु ।।
णामि[8] समंतभद्द वि मुणिंदु, अइणिम्मलु णं[9] पुण्णिमहिं[10] चंदु ।।
जिउ[11] रंजिउ राया रुद्दकोडि[12], जिणथुत्तिमित्ति[13] सिवपिंडिफोडि ।।
णीहरिउ[14] बिंबु चंदप्पहासु. उज्जोयं तउ फुडु दसदिसासु ।।
अकलंकु णाइ[15] पच्चक्खु णाणु,[16] जिं तारादेविहिं[17] दलिउ[18] माणु ।।
उज्जालिउ सासणु जय पसिद्ध[19], णिद्धाडिवि[20] धल्लिय सयलबुद्ध ।।
सिरिदेवणंदि मुणि[21] बहु पहाउ, जसु णाम गहणि णासेइ[22] पाउ ।।
जसु पुज्जिय अंबाईए पाय, संभरणमित्ति तक्खणि[23] ण आय ।।
जिणसेण सिद्धसेण वि[24] भयंत, परवाइदप्पभंजणकयंत ।।
इय पमुहहँ जाहिं वाणीविलासु,[25] तहि[26] अम्हह कह होई[27] पयासु ।।

घत्ता— जहिं[28] थुणइ[29] फणीसरु,बहुजीहाहरु, अह सहसक्खु णिरिक्खइ[30] ।
तहि परु जिणचरणइ, सिवसुहकरणइ, किह संथुणइ सभिक्खइ[32] ।।1।।

---

1. क. घ. निसुणिवि,
2. क. जिणवयण०,
3. क, ख. घ. . गुणू,
4. क. ख. घ. ०वण्णण,
5. क. ख. घ. इयर,
6. क ख. घ. जण,
7. ख. . घ. सइं,
8. क. ख. घ. नाभिं,
9. क. ख. घ. अइनिम्मलु नं,
10. ख. पुणमहिं (?)
11. ख. घ. जिं,
12. = शिवकोटि इत्यर्थः,
13. जिनस्तुतिमात्रेण
14. क. ख. नीहरिउ,
15. क. नाइ , ख. घ नाइं,
16. क. ख. घ. नाणु.
17. क. ख. देविहि,
18. घ. मलिउ,
19, ख. घ. पसिद्धु,
20. क. निद्धाडेवि, ख. घ. निद्धाडिवि,
21. क. ख. घ. नासेइ,
22. ख. घ. तक्खणि,
23 क. ख. वि.
24. क. वाणी०
25. ख. घ. तहिं अम्हहं,
26. ग, होइ, घ. होहीं,
27. ख. घ. जहिं,
28. ख. ग. थुणई,
29. क. ख. घ. निरिक्खइः
30. ख. घ. तहिं,
31. ख. घ. करणइं
32. वांछयतीत्यर्थः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(2)

पुणु तह वि करेव्वउ धम्मझाणु, जं जिणभासिउ भव्वजलहि[1] जाणु ।
अब्भत्थमि सज्जणगुणमहंत, परदोसगहणि मूई हवंत ।।
ससि कवलिज्जइ सिही सुएण[2], तहो मुहिं[3] वरिसइ[4] धारा[+] सएण ।
छिण्णउ घट्टउ दट्टउ जणेण, चंदणु तं वासइ सोरहेण ।
जइ कड्ढिउ महिउ सो दुद्धरसु[5], तो णेहु णहवइ जद्दवइ विरसु[6] ।
जइ मुत्ताहलु विद्धउ जणेण, तो हवइ गुणालउ तक्खणेण ।
जइ सिल अप्फालिय सुहुमवासु, तो अइउज्जलु हुइ सुक्खफासु ।
जइ खंडिउ ताडिउ दाहु दिण्णु, तहा मेम्मि* जियारु ण जाउ अण्णु ।
जइ[7] णिक्कारणु दुज्जणे णडिउ, सज्जणु तहा वि गुणणिव्वडिउ ।

घत्ता–जो संपइ दोसपरहु असेस, अणुहुंत वि गुण वित्थरइ ।
परकारणि देहु, वहुय सणेहु, लीलए[8] तिणु जिम परिहरइ ।।2।।

(3)

दुज्जणु पुणु इंगालह[9] सरिसु दुद्धें पोंइउ कालउ फरसु ।
सम्माणिउ[10] उत्तिउ[11] उल्लइ[12], घिउ तत्तउ जलविंदुहि जलइ[13] ।

---

1. ख. घ. जलहिं ।
2. राहुणा इत्यर्थः ।
3. क. ख. ग. मणहि ।
4. क. ख. वरिसइ कुत्रचित 'व' इत्यस्य स्थाने 'ब', 'व' इत्यस्य स्थाने 'ब' वा प्राप्तम् । संदर्भानुसारेण तन्नियतं कृतम् । अतएव इतः प्रभृति एषां पाठान्तराणां प्रथक्त्वेन उल्लेखं न कृतम् । तथैव 'न' इत्यस्यापि स्थाने 'ण' पाठभेदो न दत्तोऽत्र ।
5. क ख. घ, दुद्धरसू ।
6. क. ख. घ. विस्सू ।
7. क. जय.
8. ख. घ. लीलइं,
   +1 – ख.घ. धाराम,
   *क. ख. ग. ताहेमि ।
9. ख. घ. इंगालहं ।
10. घ. सम्माणिउ ।
11. घ. उत्तिउ ।
12. क. ख. उल्लइ ।
13. क. ख. जलई ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गुणि दोसु णियच्छइ पिसुणजणु[1], रयणि दिणेसु जह घूयगणु ।
मच्छियकाया[2] तह पिसुणजणु, तहि[4] अहि लसंति जहिं होइ वणु ।
इय बहु अउ णिक्कारणु[5] पिसुणु, महु पुणु पंडित्तणु कवणु गुणु[6] ।
लक्खणु महु अंगि वि कह वि णत्थि, अच्छउ[7] जं थक्कउ सद्द सत्थि ।
छंदउ ण उ कासु वि मइं कयउ, णिरलंकारहु इहु भउ गयउ ।
सत्तक्कउ मइ[7] भोयणु मुणिउ, अहियाणउ गुरुदेवहो सुणिउ ।
विग्गहु[8] महु परबुद्धिए समाणु, संधि वि सद्दु[9] मूढत्ति पहाणु ।
तह वि हु मई[10] धिट्ठत्त गुणेण, अइजिणभत्तिय[11] गहलिय मणेण ।
आरंभिय कह मूढत्तणेण, अवगण्णिय दुज्जणहासएण ।
जे णिरु धम्मिय ते इह संरतु, जे पंडिय ते दूरेण थंतु ।
घत्ता—सकइत्तणमाणें, गव्वुत्ताणें, तहु[12] जिणचरिउ[13] कहिज्जइ ।
इह कारणि भवियहँ, भवदुहतवियहँ. धम्मझाणु रइज्जइ ॥3॥

(4)

दो दो रवि ससि विप्फुरियदीउ, इत्थत्थि पसिद्धउ जंबुदीउ ।
सुद्दंसण तसु मज्झत्थ मेरु । जिणपुज्ज[14] कज्जि[15] फुल्लिय णमेरू ।
जोयण सह संकिउ जासु कंदु, सहसूणु[16] लक्खु[22] उड्ढउ सकंदु ॥
जोयण दस सहसिहि जो विसालु, सव्वहं गिरिरायहं[19] सामि सालु ।
सासउ णिक्कंपु सुवण्णमउ, बहु बिहरममाण सुवण्णमउ ॥
परिणय दिग्गइ पायडिय सारु, विक्खित्त पवण णिज्झरउ सारु ॥

---

1. क, ख. ०जण 2. मक्षिकानां काया, मक्षिका काश्च का वा
3. क. ख. घ. ०गण, रत्न सूर्ययोरुपरि दोषं करोति
4. घ. तहिं 5. क. ख. घ ०पिसुण
6. क. ख. भण, घ. गुण 7. ख. घ. अच्छउं
8. घ. मइं 9. =कलह इत्यर्थोऽपि
10. घ. सहुं 11. घ. मइं
12. क.ख.ग. ०भत्तिए 13. घ. णवि
14. चंदप्रभस्य 15. ख. पुज्जि
16. शब्दोऽयं नास्ति 17. क. सहसूण
18. ख. लक्ख 19. क. ग. गिरिरायह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मणिकूड तेय जिय रवि किरणु, मणिसिलतलि वागर किय किरणु[1] ।
सुरतरु मंडवि वीस मिय सुरु, वणयरकुलसेविय ताड सुरु[2] ।
मयणाहिगंधसुरहिअ दिसासु, सुरराा सुप्पाइ य सुरइ[3] सासु ।
मंदारगलियमयरंदवासु, पुण्णिहि संपज्जइ तित्थुवासु ।

घत्ता–सोलह जिण हम्महि[4], चउदिसुरम्महि[5], जो मंडिउ चउण्हाण सिलु ।
चउवण्ण वित्थारहि[6], चउसुरणियरिहि[7], जहि[8] वंदिउ जिणण्हवणु जलु ॥

(5)

तउ पुव्वहि[9] पुव्वविदेहु अत्थि, जहि होंत भविय सिवणयरपंथि ।
तव यरणि तुरंगमि आरुहेवि[10], रयणत्तउ दिट्ठु[11] संबलु करेवि ।
ता सुक्कझाण पयडिहि चडंत, केवल सिवपोलिहि वीसमंत ।
तहिं मंगलवइ णामेण देसु, णं लच्छिहि केरउ दिव्ववेसु ।
जहि सरवराइं णं अमियकुंड, तिणु[12] सुलहइ[13] जहि उच्छु अहखंड ।
तिरु णिहणिउ[14] कप्पद्दमहं चलु, जें हक्कारेवि पंथियहं फलु ।
दिण्णउ[15] दुमेहि[16] कीरहि[17] रवेण, इहु महुरु महुरु घोसण परेण।
जहि सालिहि मंजरि कणभरेण, विण्णमिय स चुंविय अलिविडेण ।
सरवरहं पालि जहि हंसउलु, पणिहारहि गइ सिक्खणु कुसलु ।

---

1. =माया सँग्राम प्रतिबिबेत वा, 2. ख. सुरू,
3. ख. सुरय = श्वास: 4. ख. हम्मर्हि,
5. ख. रम्माहिं, 6. ख. वित्थारहिं,
7. ख. ०रिहिं, 8. ख. जहिं,
9. ख. पुव्वहिं, 10. ख. धरुहेवि,
11. ख. दिट्ठु, 12. ख. तणु,
13. ख. सुलहइं, 14. ख. निसनिहणिउं,
15. ख. दिण्णउं, 16. ख. दुमेहिं,
17. ख. कीरहिं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केयारपालिरक्खणपराहि, अहि मुद्धयाहिं[1] गहवइसुयाहिं ।
कुवि धुत्तु कीरु ल्हिक्कइ भणइ[2] णिय पइरउत्ति जह सा मुणइ[3] ।
इम वंचिवि जहि केयार खट्टु, कीरें पवंचु किउ अइ रुणिट्ठु ।
घत्ता–पह सइदलु[4], णवपरिमलु, मिल्हिवि भमरु भुवंगउ[5] ।
सरपालिहि, गोवालिहि[6], चुंबइ मुहुमहु चंगउ ॥5॥

(6)

जहि गामइं धण धण णुण्णयाइं, गहवइलच्छिपरिपुण्णयाइं ।
जहि सेर हीउ[7] थिर थोरगत्त, मसिलिंपिय णं पीऊसपत्त ।
जहि गोवलाइं सिअ बहलपिंडु, णं देसकित्ति पसरिय पयंडु :
केलासकाइ[8] जहि वसहणाहं[9], णं देहज[10] सिंसिअ[11] हरिवराहं ।
अट्ठारह जहि रासिउ कणाहँ, खलिखलि दीसहि पोसिय जणाहँ ।
णं पेक्खच्छेउ[12] विग्गहि पवरु, संचिल्लिउ गिरिरायह सिविरु ।
जहि चंदकंति थल सारणिहि, गिम्हिवि सावणु णिसि तीरणिहि ।
जहि सव्वत्थ वि गुंछविय दक्ख, मंडव सीअल णिम्मुक्करक्ख ।
घत्ता– तहु[13] देसहु सुहवासहु, मज्झिणयरु मणिसंचउ[14] ।
जं पेच्छिवि, मणिरावंछिवि[15], सक्कु वि करइ पवंचउ ॥6॥

(7)

जहि गयण सरिसु सिय फलिह सालु[7], अइतुंगतमण्णहि[17] जो विसालु ।
जसु उप्परि मुणइ[18] अरुण पहु, गयणत्थि[19] तित्थु अप्फलय रहु[20] ।

---

1. ख. सुद्ध०, 2. ख. भणइं,
3. =निज पंति शब्द इव शब्दं करोति शुकः, 4. ख. सयदलु,
5. ख. मुअंगउं, 6. ख. ० हिं,
7. महिषीत्यर्थः 8. ख ०काय.
9. ख. नाह, 10. ख. देसज,
11. ख. सेंसिय, 12. पक्ख०,
13. ख. तहो, 14. = रत्नसंचयपुर इत्यर्थः,
15 ख.०वंडिवि, 16. क. ससालु,
17. ख. ग. तमंगहिं, 18. ख. मसुणइं,
19. =गगनस्थित शाले. 20. रथः,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहि चंदसाल पंगणि पसुत्त[1], णो लक्खिय राहुहि हरिणनेत्त ।
तम्मुहि पडिचंदहु करइ भंति, पिच्छिवि सबलं विय गहण हंति[2] ।
जइ णववाला सयणि परम्मुहं, तु वि मणिभित्ति दइय ठिय सम्मुहं ।
जासु परम्मुह सोतहे अग्गइ, मीलिय णयणिहि मुद्धा जग्गइ ।
पेच्छिवि चंदपडिम रयणंगणि, पायाहि[3] णिहणइ अहिणव सइरणि ।
जहिं तुंगगेह सिर संठियाइ[4], मिहुणइं रइरस सम कंठियाइ[5] ।
सुहसेवइ णहवाहिणि[6] हि वाउ, फुल्लारविंद कंपत्तु आउ ।
जहि इंदनीलमणि[7] सयण हरे. णीले सुअ सामल धरिय करे ।
आवि वि गेहिणि अग्गइ वइट्ठु, कंता लिग्गिअ पडिबंहु ण दिट्ठु ।

घत्ता—तहि पुरवरि[8], मणिमय हरि, दुत्थिउ धणइ समाणउ ।
अह सुक्खिउ, जइ पिक्खिउ, सो सक्कह[9] सम ठाणउ ॥7॥

(8)

जहि कालायरु बहु धूम भरु, उच्छलइ गयणि णं तम सिविरु ।
अणवरउ वेरुमणि संभरेवि, चलिलउ रवि उप्परि उच्छरेवि ।
जहि तरुणिहि अच्छ कपोलविंदि, चदउ पडिबिंबउ ते अरुंदि ।
लंछणहु लच्छिपोयडइ[10] मडत्ति, मलिणं गउणं सारंग[11] कित्ति ।
जहि दाण मणोरहं[12] सज्जणाहं, ण पहुव्वहि विणु अत्थिय[13]जणाहं ।
जहि जुण्हसरिस अइसण्हचीर[14] कोमल सीहल सुहइअ सरीर[15] ।
जहि दंड जुत्तु परिछत्तु होइ, अलि हउ विणु मेसे णत्थि कोइ ।
धासइ चंदणु पुच्छयह बंधु[16], अण्णहु पहु कासु वि दुहपबंधु ।

घत्ता—घट्टत्तणु, तरलत्तणु, तियथण मयणहं दीसइ ।
गुणवंतहु, तहिं संतहु, दोसु ण अंगिपईसइ ॥8॥

---

1. क. पसित्त
2. = राहु न भांति
3. क. पायाहिं
4. ख. ०याइं
5. ख. कट्ठियाइं, पवन इत्यर्थः
6. —आकाशगंगा इत्यर्थः
7. ख. ०मणे
8. ख. पुरवरे
9. ख. ग. सक्कहं
10. ख. लंछलहुलढिं
11. =नारायण इत्यर्थः
12. ख. मणोपह
13. ख. अच्छियय कं
14. खं. ०वीर
15. वेद इत्यर्थः
16. ख. बंधु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(9)

तहि कणयप्पहु णामेण राउ, जं पिच्छिवि सुरवइ हुउ विराउ[1] ।
जसु भमइं कित्ति भुवणं तरम्मि, थेरिव[2] अइ संकडि नियघरम्मि ।
जसु तेयजलणि णंदी वियंगु[3], जलनिहि सलिलट्ठिउ सिरि भुवंगु[4] ।
आइव्वु[5] वि दिणि दिणि देइ झंप, तत्ते अतत्तु जय जणिय कंप ।
सक्कु वि णिप्पायउ पढमु तासु, अब्भास कसणि पडिमहं पयासु ।
रूवाहं कारिउ कामवीरु, किउ तासु अंग मलिणहु सरीरु ।
तहु णयणुप्पलि णिवसेइ लच्छि, जा पुव्ववसिय हरि पिहुलवच्छि ।
तें कारणि जहिं जहिं देइ दिट्ठि, तहिं तहिं[6] ऊहट्टय दुत्थ सिट्ठि ।
जसु संगरि सम्महु[8] घणुहुं होइ, णहुं पुणु विचिंतिति वडि बक्खु कोइ ।
मुहिं णिवसइ सरसइ जासु निच्चु, पइ मित्तु लहइ कहिं तहि[10] असच्चु ।

घत्ता—इह तिहुयणि, बहुगुणजणि, तसु पडिच्छंडु[11] ण दीसइ ।
अह होसइ, गुणलेसइ, जसु बाईस रिसी सइ ॥9॥

(10)

जसु गुण गायहिं सुक्खामिणीउ, रोमंचतुद्द कंचुअ तणीउ ।
जसु रिउ तिय सिरु णिक्केसुजाउ. सव्वउ इहु हुउ संगर पहाउ ।
गहणिवि रिऊण[12] जसु णिव विलासु, संपत्तउ सत्तमखणि णिवासु ।
सुद्धं बरूप हिरणि पिहुलु दीहु, मुत्ता हरणउ कय हरि हरीहु ।
इम भुंजिय सिरिफलु निखसेसु, काणणि[13] वण रज्जहु कुवि विसेसु ।
जसु पवर गुणावं भंड भंडि[14], दुम्मा इय णं[15] करहु करंडि ।
तसु कणयमाल णामेण कंत, लावण्ण पुण्ण गुणसीलवंत ।

---

1. क. बि०
2. =वृद्धा कीर्ति
3. क. बि.
4. =धरणेन्द्रः विप्लुर्वा
5. =सूर्यः
6. क. तहि तहि
7. ख. उह.
8. ख. संमुहुं
9. ख. पय
10. ख. तहिं
11. ख. ०बंडु
12. =रिपून्, गृहीत्वा
13. ख. कणणि
14. क. ख. भडि
15. ख. नं.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोहग्गभारपरिपूरि अंग, मुहगंधामय जीविय अणंग ।
जहि वयण णयण जियदुम्मणाँह, चंदहु सारंगहु दुहु जणाहँ ।
मित्ततणु जायउ समदुहाण, णिरु दिवसुरत्ति भमडिय णहाण ।
णियरूव[1] गव्वभरकोवणाहँ, अवरुप्परुदोहं वि लोयणाहं ।
जुज्झंतहँ अंतरि गडइ वंसु, णासा वंसउ ठिउ वहु पसंसु ।।

।। घत्ता ।। सुरकामिणि, णरभामिणि, तहिं सरिसी किह होही[2] ।
ज[3] पिक्खवि, बउ लक्खवि, लच्छिवि णियमणि मोहि ।।10।।

(11)

अह अवरोप्पर पिम्मभरट्टहँ, पंचिंदियसुह जोइ पयट्ठहँ ।
संसारिय सुहरसि मज्जंतहँ, जाइ कालु वहु केलि करंतहँ ।
अह एक्क समइ[4] बहुलक्खणाल, गब्मेँ[5] संभाविय कणयमाल ।
सालसु सलोणु हुउ पंडुदेहु, अइ धवलु वहलु णं सरइ मेउ ।
सिइ मुहुं पंडुरु थण हरु विहाइ, भमरंकिउ सुक्खरि कुंमुणाइ ।
णं अमिय कलस णीलुप्पलास, णं दंतकुंप[6] गवलिहि पयास ।
बलिणोयरेण किउ तिबलि भंगु, कालेँ जिप्पइ धुउ तमि पयंगु ।
तहिं संपण्णइं मणि दोहलाइ,[7] जय साहारणि कय सोहलाइ ।
णवगासिहिं पुण्णिहिं जणिउ पुत्तु, वहु लक्खण वंजण फुरियगत्तु ।
णं धम्म अत्थ कामह णिहाणु, णं पवरवेरि काणण किसाणु ।
णं उग्गउ कुलणहि सहसभाणु, णं पिसुणवंस कट्टण किवाणु ।
तोसेँ उच्छल्लिउ पुहवि इंदु, चंदुग्गमि णं खुब्भिउ समुद्दु ।
सिरि पउमनाह णामेण उत्तु, सो सिसु ससि जिम वडढइ तुरंतु ।
ता णिम्मल कलसिक्खणि पउत्तु, सं सवलु वि जाणिउ ते[9] णिरुत्तु ।
कालेँ सो तरुणत्तणहु पत्तु, उम्मूलिउ णं तूलियहि[10] चित्तु ।

---

1. ख. णियत्तव,
2. ख. कह होही,
3. क. जा.,
4. ख. समए.,
5. ख. गब्भे,
6. =अग्नि:,
7. ख. लाइं
8. ख. विजाणिहं
9. ख. तं.,
10. क. तूलयहं = निज रूपगर्वकथकानां ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ घत्ता ॥ तरुणत्तणि सुहुत्तणि, सोमय, दोसिहि[1] चत्तउ ।
जरयंतहि[2], सुमहंतहं, तरुणु वि गुणि[3] संपत्तउ ॥11॥

(12)

एक्कहि[4] दिणि[5] णरवइ कणयपहु, ठिउचंद साल[6] सिरि तुच्छ सहु ।
दिट्ठइं पल्लिलि[7] गोहण सरंत, पउ पीउ पीउ तडिऊ[8] सरंत ।
ता इक्कु वुड्ढ पसु किसियगत्तु, दुद्दम कद्दम उत्तारि खुत्तु ।
णिक्कलि वि ण सक्कइ जलु विदूरि, उप्परि काया ठिय बणहं पूरि ।
बइ सिवि णहु सक्कइ हिट्ठ थाणु, संघडिउ पुव्वकम्महं विहाणु ।
पाणाण जंति बल्लह करंक, मुक्कलिय वि णं दुक्कालरंक ।
णरवइ अवलोयवि[10] तं विसण्णु, वितंतउ णिव्वे यहु पवण्णु ।
हाहा संसारिहि इह अवत्थु, ते धण्ण धण्ण जे सिवपयत्थु ।
सुहु सलिलु ण पावइ विसयतत्तु, णियविग्घकम्मपंकेण खुत्तु ।
तह उवरि रोयका एहि खद्धु, इय जंतु आउ खुंटेण विद्धु ।

॥ घत्ता ॥ अम्हारिसु, विंसयालसु, तरुणि वडि सरस सत्तउ ।
णियकम्में, मिद्धम्में, कट्टिवि तम विलिखित्तउ[11] ॥12॥

(13)

संसारि सुक्खु णहु कह वि अत्थि, सुरणर पसु णरयहं भमियपंथि !
खणि होइ रज्जु खणि सिरकमुज्जु, खणि सग्गा[12] नीडु खलि असुइ कीडु ।
खणि काणयगत्तु खणि कोढपत्तु, खणि सयलणाहु खणि जुयल बाहु[13] ।
खणि हरिपयासु खणि पुहं विदासु, खणि गव्वमेरु खणि दीणफेरु ।
खणि कोडिसूरु खणि इक्क[14] भीरु, खणि कप्परुक्खु खणि भमिय भिक्खु ।
खणि सयलसुक्खु खणि णरयदुक्खु, खणि जसनिहाणु खणि पाउपाणु ।

---

1. ख. दोसहिं,
2. ख. जरयंतहं,
3. ख. गुण,
4. ख. एक्कहिं,
5. ख. दिण,
6. = गृहे,
7. = तुच्छ जलसरोवरे
8. क. तडिउ, = सरोवरि
9. ख. मुक्कल्लिय
10. क. अवलोइवि
11. क. लिघित्तउ
12. ग. सग्गं,
13. = हाथसंकुचितः
14. ख. पक्क ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खणि रयणिदासि खणि सिवहं आसि, खणि घुसिण रंगु खणि किमिउ लंगु ।
खणि सुत्तु त्तु लिखणि छु द्धु सूलि, खणि पियरमंतु खणि विरहवंतु ।
खणि मरण कुक्कु खणिपाण मुक्कु, ... ।

॥ घत्ता ॥ खणि मारहो, जय सारहो, रूवें हसिवि चमक्कइ ।
खणि रंकहु, बहुसंकहु, सरिसउ होउ ण सक्कइ ॥13॥

(14)

संसार भावि संभंतु जंतु, दुक्खुवि मिण्णइ सुह ठाणि थंतु ।
कंडूलहं जह आइ अग्गिताउ[1], खणु सुहु पुणु दारणु दुक्ख ठाउ ।
अमुणंतउ वोहि सहाव सुक्खु, णिय मोहें[2] माणुसु चम्मचक्खु ।
जं[3] वज्जणीउ तं अहिल सेइं, जं[3] कज्जु ताहि दूरेंत सेइ ।
जह[4] कोइ[5] वालु मट्टियहि[6] गिद्धु, सक्कर[7] रसु मिल्लइ[8] अइसणिद्धु ।
जह वज्झउ[9] जंतउ वज्जणाणि[10], पइ पइ आसण्णिय आउहाणि ।
तह दिणि दिणि आसण्णु मरणु, लोयहु संपज्जइ दुहयरणु ।
खण मित्तु हु अज्जइ सुहह भंति, अग्गइ तो गरुइ दुहइ पंति ।
जह तक्खणि[11] कट्ठह वलिय काइ, सिंगारु करिवि सइ[12] लच्छिणाइ ।[13]
जहिं तहिं सुहु पयजंतीहि[14] होइ, तह सयलह विणु धम्मेण जोइ ।
णरसिवु लग्गइ[14] कामिणि करंकि, अप्पउ णिव्वोलइ पावपंकि ।
सो णत्थि जंतु जो महु ण[15] ताउ, सो विहु णत्थि[16] व्वि राजो[17] ण भाउ ।
सो णत्थि[18] जो ण[19] हुउ सुउ कलत्तु, सो णत्थि जो ण हुउ सत्तु मित्तु ।
तहि इह किज्जउ किरकेणु णेहु, भवि भवि उप्पज्जइ[18] अण्णुदेहु ।

---

1. क. अग्गि०
2. ख. मोहं
3. क. जें,
4. ख. जहं,
5. ख. कोवि
6. ख. वालुमदियहिं
7. ख. शक्कर,
8. मिल्हइ,
9. ख. ग. विज्झहु,
10. विज्झ,
11. ख. भक्खणि,
12. ख. सइं,
13. ख.०गाइं
14. ख. हिं,
15. ख. लग्गउ,
16. क. ०न,
17. ख. तहिं,
18. ख. उपज्जइ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ घत्ता ॥ जिणवयणाइं, भवदमणाइं, मेल्हिवि अवरु ण भल्लउ ।
तहि[1] उत्तउ, दयवंतउ, किज्जइ चरिउ बहिल्लउ ॥14॥

(15)

इय चिंतिवि णिद्धारियउ कज्जु. लइ देमि सुपुत्तहु एहु रज्जु ।
इय चिंतिवि कुक्किउ पउमणाहु, सुखरण करसारित्थ व हु ।
परिपुण्णराय लक्खण सणाहु, गभीरु णाइं[2] बाहिणिहि णाहु ।
हक्कारेवि[3]स सामंत मंति, जे रज्ज महाभरि णिव्वहंति ।
उव्वेसि वि णंदणु रायचीढि, बहुसेय रयण किरणावलीढि ।
ढालिय जलऊ रिय हेमकुंभ, उन्निय[4] मणि तोरण केलि खंभ ।
सइदंडु लेवि पडिहारु हूउ, किउ रायलोउ सयलु वि विणीउ ।
आउच्छिउ णंदणु बाह णयणु,[+1] सइ संचिल्लउ किर जाम गहणु ।
ता भणइ मंति जोडे विहत्थ, सुणि एक्कु वयणु सामिय कयत्थ ।
किं कारणि यहु मिल्हेवि रज्जु, पारंभिउ णाहें गहिल कज्जु ।
सो णत्थि जीउ देहहु[5] परक्खु,[6] जो मुक्के देहि लहइ मुक्खु ।
जीवहो देहहो णहु कोइ भेउ, इम्विज पइसिरि मच्छिद देउ ।
इय णिसुणिवि णरवइ मुणिय तब्बु, पभणइ[7] होणि सुणहिं मंति सव्वु ।
इह[8] देहमज्झि वहु णाण सत्ति, विक्कप्प जालि कहु घडइ जुत्ति ।
सासय वेयणु अप्पा मुणिज्ज, सुहदुह वेयणु मा मंति किज्ज ।
जइ जीवहो देहहु इक्कु भाउ, तो किं णहु मडयहु पीडताउ ॥

॥ घत्ता ॥ तव चरणें, बयधरणें, सो संसारहु मुच्चइ ।
घर सरणें, दुह करणें, सो भव भमणइं संचइ ॥15॥

(16)

इय करेवि[10] णिरुत्तरु पुहवि बाहु[9], संचल्लिउ वणि चरणिक्कगाहु ।
वणि जंतु जंतु सो पत्तु तित्थु, सिरिहरु णामेण मुणिंदु जित्थु ।

---

1. ख. तहिं, 2. ख. णाइं,
3. ख. हक्कारिवि, 4. ख. उभिय,
5. ख. देह हो, 6. ख. रुक्खु,
7. ख. पभणइं, 8. ख. इय,
9. विबाहु, 10. ग. करिवि ।
+1 = अश्रु प्रवाह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहु चरणमूलि णिव्वडिय सिक्ख' तिविहेण लइय जिणणाह दिक्ख ।
दूतहि णरवइ सिरिपोमणाह, णिय जणण विरुहि[1] णिरु दुम्मणाहु ।[2]
कयवय दिणाइ[3] ठिउ सोयजुत्तु, मंतिहि पडिबोहिवि किउ सुचित्तु ।
जो णायवतु सो परु विमित्तु, जो अण्णायउ सो सुउ वि सत्तु ।
इम मेयणि पालइ खत्ति धम्मि, बारइ जणवउ जंतउ कुकम्मि ।
अवगाहिय चारि विराय विज्ज[4], छग्गुणविहिणा[5] किय सयल कज्ज ।
सत्तिहिं[6] तिहिं[7] जुत्तउ उअइवंतु, पंचंगु[8] करइ सो गूढ़ मंतु ।
अरि छव्वग्गु वि तं पढमु जिणिउं, ण वि कोइ सत्तु तं कण्णि सुणिउ[9] ।
सत्तंगुरज्जु इम सो करेइ, सक्कुवि णहु सरिउहु अणुहरेइ ।

।।। घत्ता ॥ तहो रायहो, महितायहो, सरिसउ अवरु जु[11] भासइ[12] ।
सो माणउं, गुण जाणउं; णियमइ मोहें णासइ ।।16।।

इय सिरिचंदप्पहचरिए-महाकय जसकित्ति विरइए ।
महाभव्व सिद्धपाल सवणभूसणो, सिरिपउमणाहराय पट्ट बंधो ।
णाम पढमो संधि समत्तो ।।छ।। ग्रंथ 162

---

1. ख. विरहि 2. ०णाहुं
3. ख. दिणाइ,
4. =आन्वीक्षिकी त्रयीवार्ता दंडनीति इत्यर्थः
5. =संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध, संश्रयश्चेति ।
6. ख. सवित्त; स षड्विधा-परिवार संरक्षण, विवेक पूर्वक कार्य संचालन, स्वरक्षण, प्रजारक्षण, दुष्टनिग्रह शिष्टपुरस्कारश्चेति,
7. प्रभुशक्ति, उत्साह शक्ति, मंत्रशक्तिश्चेतिः
8. आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता दण्डनीतिश्चः
9. ख. सुणिउं
10. =स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्रश्च,
11. अव-रुज्जु
12. ख. भासइं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बीउ संधि

(1)

जिण वयणकमलपरिमल-संकमणा, पुव्वलद्धसोहण्णा।
गणहरगणसंगहिया,[1] सरस्सई हवउ सुपसण्णा ॥छ॥

जिण भत्तउ, गुणरत्तउ, सयलभुवण चिंतामणि।
जा अच्छइ, सुहु इच्छइ, ता णिम्मलि एक्कहिं[2] दिणे ॥1॥

ता कणयदंड पिंजरसरीरु, पणविवि पभणइ[3] पडिहारू धीरु।
अहिणवफलफु-लयदक्खवंतु, वणवालु दारि आविउ तुरंतु।
सामिय तसु को आए सुदेहि, आवउ अहवा बलि जाउ गेहि।
ता राए[4] वुत्तउ कय पसत्ति, मालाइ खेउपइ सारि झत्ति।
आएसु लहेवि पडिहारएण, आणिउ वणमालिउ तक्खणेण।
पणविवि फलपल्लवफुल्लहत्थु, जोड़े वि हत्थ वोल्लइ कयत्थु।
तुह सुरहियवण णामेण वणे, णामे सिरिहरु मुणि पत्तु घणे।
णं णाणरासि पुरिसत्तु पत्तु, णं दंसणभरु जायउ सगत्तु।
णं चारु चरणु पच्चक्खु जाउ, णं संजमि धरियउ तवसि भाउ।
णं दिक्खं किउ इहु सीसभारु, णं पायहु ठिउ सइ समयसारु।
लज्जमि हउं जहु तहो गुण कहंतु, कालि विणु वणिजायउ वसंतु।

घत्ता—इय वयणइं, सुहजण णइं, वणवालहो णिसुणेप्पिणु।
बहुरयणइं, आहरणइं, उत्तारेवि तहो देप्पिणु ॥1॥

(2)

मिल्लिवि सिंहासणु हरिसधामु, पय सत्तहिं तद्दिसि किउ पणामु।
आणंदभेरि दाविय पुरम्मि, हरिसावे सिय णायरजणम्मि।

1. = स्वीकृतः
2. घ, इक्कहिं
3. ख. पभणइं
4. ख. रायं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहु सयलें णायर परियरेण, संवलिउ राउ धम्मायरेण ।
बहुअट्ठभेयपूयाकरेण, अणुवि सयल्लें अंतेउरेणं ।
अइतोसि संपत्तउ वणंति, जहिं अलिउल मेहिं घारयंति ।
विणु महुपाणो[1] केसरु पहुल्लु, णं मुणि णामिउसावयहँ सुल्लु ।
कं किल्लिवि फुल्लिउ णे वयासु, मिल्हवि पक्खामिणि पायफासु ।
णं बंभचेरु विलएण गहिउ, विणु तरुणि दिट्ठि जं कुसुमसहिउ ।
सहयारु रुक्खु मंजरिउ झत्ति, णं मुणि दंसणि तोसिउ सचित्ति ।
रोमंचकंचुइउ सव्वदेहु, मुणि दंसणि कसु वा णत्थि णेहु ।

घत्ता—इय तरुवर, कुसुमुक्कर, जो णियंतु वणि तुट्ठउ ।
ता णिम्मलि, सियसिलतलि, तरुतलि मुणिवरु दिट्ठउ ।।2।।

(3)

पिट्ठिवि तंति पयाहिणु करेवि, पंचंगपणामे पुणु णवेवि ।
अंचे विपाय संथुवण लग्गु, सेच्चइ[3] इहु कमु[4] तारिसह[5] जोग्गु ।
पइँ दिट्ठइं महु सकियत्थु जम्मु, पइँ दिट्ठइं णिच्चलु जिणहं धम्मु ।
पइँ दिट्ठइं लद्धउ मोक्खमग्गु, पइँ दिट्ठइं गेहं गणउ सग्गु ।
पइँ दिट्ठें तुद्धउ कम्मपासु, पइँ दिट्ठें महु संसारणासु ।
तुह दंसणु भवमरुकप्परुक्खु, तुहु दंसणु जीवहँ देइ सुक्खु ।
पइँ पेच्छहि जे आसण्णभव्व, पइ पणवहिं जे णिरु सुद्धदव्व ।
जं जं दिज्जइ उवमाणु तुज्झु, तं तं णियमोहहु तणउ गुज्झु ।
को सहस किरणु को अमियमाणु, को कप्परु रुक्खु का कामधेणु ।
को चिंतामणि को सलिलरासि, को मंदरु कहिं तुहु[6] जयपयासि ।
किं बहुणा तुहुं सुपसण्णु[7] जाहं, णिम्मलु रयणत्तउ हत्थिताहं ।।

घत्ता—ता मुणिवरु, तवसिरिहरु, आसियवाउ पयंपइ ।
सियकिरणहं, णियदसणहं, जुण्हाजलि सह लिंपइ ।।3।।

---

1. पाणें
2. =ववलश्रीवृक्षः
3. घ. सच्चउ
4. क. कम्मु
5. ख. तारिसहँ,
6. ख. कह तुह
7. ख. पसण्णु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(4)

जिं सासइ सुहि संभइ सिद्धि, सत्तुइ संपज्जउ धम्मविद्धि ।
ता णरवइ पभणइ सुद्धभाउ, महु धम्म कहिणि किज्जउ पसाउ ।
भवियणमण कइवर तोसणिदुं, सायारुधम्मु भासइ मुणिंदु ।
इह पठमि किज्जइ जीवरक्ख, बहु सुहकारणि जाणिय परिक्ख ।
जा णरइ दारि रुंधणहं भित्ति, जा तिरिय जोणि संवरणि मित्ति ।
जा सग्ग सिहरि सो वाणपंत्ति, जा मोक्ख महापहि सूरकंति ।
जा सयल सुक्ख विहवहं[1] णिहाणु, जा सुहमंगलु कमलाणभाणु ।
जा सयलविजय दुम मेहुकालु[2], जा असुहतिमिररवि किरणजालु ।
अण्णु वि वोल्लिज्जइ सब्बवयणु, जं पावरेणु[3] खयकालपवणु[4] ।
जं[5] सयलहं साहुत्तणहं हेउ, जं सयल पहुत्तण विजयकेउ ।
जं सयललत्थि बंधणहं दोरु[6], जं जम्मगहणलंघण किसोरु ।
जं सयलणाण उप्पत्ति वीउ, जं जहु तिमिहर ताडणपईउ ।
तइ यउ वज्जिज्जइ चोरकम्मु, जें चिंतिएण वि पलाइ धम्मु ।
जं गुणसेलहं सिरिवज्जदडु, जं सयल दोसविसहरकरंडु ।
जं पालबल्लि उप्पत्तिकंदु, जं लोहजलहिं पुण्णिमहिं चंदु ।
जं णरयदारफाडण कुहाडु, जं जसससरीरि अणिविति साडु ।।

घत्ता—वउ तुरियउ[7] सुहचरियउ[8], जं परदार विवज्जणु ।
तं गुत्तउ गुणवंतउ, कय संसार विवज्जणु ।।4।।

(5)

परदारगमणु णरयहो पयाणु, जं सयल कुकम्महं कुलणिहाणु ।
जं बहु कलंकउप्पत्तिठाणु, जं वंधु सुअ णाउरि तक्खथाणु ।
जं सयलसील करकहहं किसाणु, जं णिम्मलगुणदेहं मसाणु ।
जं पिसुणलोय अक्खुद्द हासु, जं बुड्ढकित्ति खयरोय सासु ।

---

1. ख. विहविह,
2. ख. मेह,
3. घ. पाउरेणु,
4. क. खयकालु,
5. ख. जे,
6. ख. होरु,
7. ख. तुरिउ,
8. ख. चरिउ,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(15)

जं सयल सुक्ख भिक्खहं दुभिक्खु, जं पावकूवतडि मंदचक्खु।
पंचम वउ जं परिगहपमाणु, जं तण्ह तरंगिरंणि पलयभाणु।
संतोसें विणु तण्हा समुद्द, तिहु अणु वोल्लिवि[1] घल्लइ रउद्द।
लोहें सक्कु वि रंकहु समाणु, विणु वोहें रंकु वि घणयभाणु।
अइ लुद्धहु पासि ण थाइ णिद्द, जहं धुत्त मुअंग हं वेस खुद्द।

घत्ता—इय पंच वि, मणुखंचेवि, जो वयाइं परिपालइ।
सो सावउ, जिण गुण भावउ, मुक्खलत्थि मणु चालइ ॥5॥

(6)

अण्णु वि पालहं तिण्णि गुणव्वय, चउ सिक्खावयणियम करिव्वय।
तर्हि दिसि विदिसिर्हि गमणपमाणउ[2], अण्णुअ घम्मदेस परिहाणउ[3]।
भोयपभोयह संखावीयउं, णच्छ दंडपरिहरणउं तइयउ।
सिक्खावय चउरो अणुउं जहि, सामाइउति क्काल करिज्जर्हि।
अट्ठमि चउद्दसि पोसहु किज्जइ, तिविहहो[4] पत्तहो दाणु दइज्जहि।
अंतकालि सल्लेहण सरणउं, किज्जउ सण्णासि[7] सुहमरणउ।
इय बारह वय जयणा करेज्ज, धुउ रयणिहि भोयणु परिचयज्ज।
सम्मत्तु विसुद्धउ मणे धरिज्ज, ...
जो पंचवीस सम्मत्तदोस, ते सवि पालर्हि[8] जाणेवि असेस।
जे अट्ठ मूलगुण जिणगुण पयुत्त, ते अवि पालहं तुहुं णिरु णिरुत्त।
किरिया ते वण्णउ सावयाह[9], सयलु वि करि णिज्ज मुणिज्ज ताह।

घत्ता—इय णिसुणिवि, मणि मण्णेवि, णरवइ भणइ[10] सुहावें ॥6॥
तुह वयणिहिं, सुह सवणिहिं, सामिय मुक्कउ पावें।

---

1. ख. घ. वोलिवि,
2. ख. पमाणउं,
3. ख. परिहरणउं,
4. घ. अनुजुंजीत,
5. ख. तिविहहु,
6. ग. मरणउं,
7. क. सन्नासि,
8. घ. वज्जर्हि,
9. ख. सावयाहं,
10. ख. भणइं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(7)

महु पुव्वभवंतर जम्मकहा. आयण्णवि इच्छावित्त जहा ।
ता णिसुणिवि मुणि पच्चक्खु णाणु, धम्मावहि अक्खइ भवविहाणु ।
इहु[1] पुक्खरद्ध णामेण दीउ, णं सयलहं दीवहं एहु जीउ ।
तहिं सीऊयानइऽपर विदेहिं, बहु रमणिज्जमंडियविदेहि ।
तहिं उत्तरतडि णामें सुअंधि, देसुत्थि पक्ककमलेहि सुअंधि ।
जहिं णायबेल्लि वड्ढियतलाहं, फलनामिय फोफलि णउ लाह ।
घणछायामंडलि संचरंति, पोमिणि दलि दरवारसु पियंति ।
थलकमलिणि सत्थरि वोसमंत, वणजरिकिणि किउ पिक्खणुउवंत ।
जइ सव्वुदिवसु पहि णिण्वहंति, जंघालयपहिय तो कोसु जंति ।
जहि[2] उच्छुजंतरस सारणीहिं, मह णइउ हसिज्जहिं तीरिणीहिं ।।

घत्ता—पिहि आसहि, कणरासिहि, जो सव्वच्छवि भासइ ।
जणु कालहु, दुक्कालहु, णं बहु दुग्ग पायासइ ।।7।।

(8)

तहिं पुखरु णामिं सिरिसिरिपुरु, जं तिय लुक्क लच्छिकीलीयरू ।
जहिं मणि गेहकिरण उज्जालइ, कमल वियासुण वर रविपालइ ।
बहुकामिणि मुहुचंद[3] पयासइ, चंदकंत सलिलिहिं ससिभासइ ।
घरि घरि सिहरि सिहरि रंगंतउ, दीसइ[4] जहिं रवि कलसायंतउ ।
जहिं खाइय जलि पडिबिंबि याइं, पिक्खिवि तीरट्ठिय[5] उववणाइं ।
तह मूढा वाणरिं दिंति झंप, जहँ णायर विहसि वि करुणकंप ।
जहिं णील सालरुइ हरिय भंतु, चंदहु झंपावइ मउ तुरंतु ।
पुणु पेच्छिवि तियमुहयंद लक्खु, चंदु वि ण लक्खिउ हुअ विलक्खु ।

घत्ता—तहिं पुरवरि, बहु सुहधरि, णेह वि रइजइ दीवहु ।
अहदिट्ठउ,जणसिद्धउ, दाणच्छेउ करि[6] कीवहु ।।8।।

---

1. ख. इय,
2. ख. जहिं,
3. ख. मुह,
4. =सूर्यकलशमान,
5. ख. तीरठियउ,
6. =वालहस्तिनः,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(9)

तहिं पुरवरि सिरिसेणु राउ, णं धम्मअत्थकामहु सहाउ ।
णं खत्त धम्मुथिउपुरिस भाउ, णं देह जुत्तु जायउ पयाउ ।
णं मुत्ति भावि ठिउ सुद्धभाउ,[2] पच्चक्खु दिट्ठ णं दाणुराउ[1] ।
णं सयल बिज्ज संचउ, सकाउ, णं मयणतू अहंकार घाउ ।
णं जलहि गहिरगव्वहु बिसाउ, णं इहु गिरिधीत्तणु अपाउ ।
णं ससिसोहग्गसरीर लाउ, णं हरिसूस्तण पलयभाउ ।
णं सुरगुरू बिज्जावलि विराउ[2], णं सक्ककित्ति भूयहिं[3] सुवाउ ।
णं कुंदुज्जलगुणरासि आउ, णं णिम्मलुकल[4] सोहग्ग ठाउ ।
णं अरियणतिमिरहं सहसपाउ[5] णं कप्पसक्खु भिक्खुबहं चाउ[6] ।
णं कामिणि मण पीउस साउ, णं साह णेह रंगहं कसाउ[7] ।

घत्ता—णरणंहहु, गुणगाहहु, सयलपुहबि पालंतहु ।
जइवंतहु णं एवंतहु को सरिच्छु इंदु बिठाहु ।।9।।

(10)

जसु सियकित्ति अमियरस सायरि, तिहुवणु मुत्तिबंत[8] रइ अपायरि ।
जसु असिवर छेयेण पसिद्धा, भूमीहर वंसाणहु लद्धा ।
रक्खिउ तहु[9] बिहिणा इक्क वसु, तें इक्क छत्तु[10] तहु किउ पसंसु ।
सिरिकंता णामे तासु कंत, बहुरुवलच्छि सोहग्गवंत ।
जियमुहइंदहु लच्छण ठाणउ, जं पुण्णिम चंदहु उवमाणउ ।
तारु तरलु णिम्मलु जुइ णित्तहं, णं अलि उरि विउ केयइ पत्तहं ।
जिय[11] सवण जुग्लु[12] सोहाविलासु, णं मयण बिहंगम धरणपासु ।

---

1. =कर्णः,
2. =रागरहितः
3. =वृषः
4. =मनोज्ञ,
5. =त्यागः
6. =सूर्यः
7. =रडादि फिटकडी,
8. =मुक्तिरिव,
9. =राज्ञः,
10. =एकछत्रराज्यं कृतं,
11. =उपरि
12. =घ. जइ,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बत्थच्छलु णं पीउसकुंभ, अह मयणगंध गयपीणकुंभ ।
अयखीणु मज्झु णं पिसुणजणु; थणरमणगुरुत्तणि कुवियमणु ।
जिइ पिहुलणियं बउ अप्पमाणु; ठिउ मयणराय पोढहु समाणु ।

घत्ता—इय मयणहु, जयजयणहु ऊरुजुअलु[1] घर तोरणु ।
अइकोमलु, रत्तुप्पलु, जिय पय कंतिहिं चोरणु ॥10॥

(11)

सा तहो रायहो पाणबियारिय, चंदहो जोण्ह बरइसुहकारिय ।
णाणहु सत्ति व सुरहो कंति व, तक्कहु युत्ति व सिद्धहु मुत्ति व ।
धम्महो खंति व सीलहु संति व, दाणहु कित्ति व अत्थहु मुत्ति व ।
इक्कहिं दिणिताहिं लोउ बिसज्जि वि, सुकविसहा सुहरसु अणुहुंजिवि ।
जा णउइ अंतेउरि आवइ, ता अइदुम्मण पिय परिहावइ ।
गल्ल हत्थ णिरु अंसु मुवंती, कज्जल ऊरिहिं मुहु मइलंती ।
जंपइ णरवइ संभमवयणें, इहु अवराहु तुज्झ किवु कयणें ।
महु जीवंतहु मुवणु जिणंतहु; सक्कु वि कंपइ आण ण चंपइ ।
सूरु बिल्हिक्कइ तेउ ण मुक्कइ; कालु वि तासइ[2] बलु ण पयासइ ।
तातुहु णियमणि केण स दुम्मणि ॥ ....

घत्ता—इयकंते, पलवंते, पुणु पुणु सा णिरु पुच्छिय ।
ता चालइं, लज्जालइं, लीलइं सहिय णियच्छिय ॥11॥

(12)

सा पभणइं किं पि स सोयबत्त । सामिय णिसुणहिं इहि तणिय वत्त ।
जहिं तुहुं सामिउ तहिं कहिं विसाउ, पुणु सव्वहं उप्परि कम्मभाउ ।
पियसहिं अज्जु सणेह पहिट्ठिय, उवरि सिहरि पग्गी विवइट्ठिय ।
णायर डिंभ बहुअ कीलंता दिट्ठा अवरुप्परु णिवडंता ।
ता सामिणि हियउल्लउ सल्लिउ, पुत्त इच्छ भारें ण पेल्लिउ ।

---

1. = ऊर्वो र्युगलम्, 2. ख. तास्सइ.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तें कारिणियह अच्छइदुम्मणि, अवरं मंति मा किज्जहि णियमणि ।
तं णिसुणिविणरवइपडिभासइ, एय चिंतिय विक्खेण पणासइ ।
सव्वु विबुद्धि परक्कमि सिद्धउ, पुत्तलाहु पुणु पुण्णि पसिद्धउ ।।

घत्ता—अइपवियलु, अम्हइं कुलु, पुत्तें विणु णहु सोहइ ।
विणु तरणें, वहु किरणें, को णह मंडउ बोहइ ।।12।।

(13)

विणु णंदणेण किं रज्जफलु विणु णंदणेण किं पुरिसबलु ।
बिणु णंदणेण किं हसइ कु[1]लु, बिणु णंदणेण कसु लच्छि छलु ।
विणु णंदणेण मणि हसइ खलु, विणु णंदणेण कहिं पिय रजलु ।
विणु णंदणेण महु णाम वलु, विणु णंदणेण णहु जस सक्कु सलु ।
विणु णंदणेण महु विमलु[2], कह होही णिट्ठय कम्म मलु ।
पुणु तहवि य पुच्छिय कुविसवण, णियणाणु पयासिय भुवण गुण ।
तह मुणि वि करेसमि सुह णिहाणु, जहं तुहं संपज्जइ फल णिहाणु ।
तुहं सोएं महु, संतत्तु देहु, महु तावें तत्तउ[3] सयलुगेहु ।
महु गेह तावि पुहवी सतत्त[4], मा सुंदरि भुवणि पसारि वत्त ।
इय सुह वयणहि कंता सासि वि, कय बहु चाडुवे हिंसइ हासिवि ।
जा इच्छइ णिय गेहि वइट्ठउ, ता वणचालु दारि सइं दिट्ठउ ।

घत्ता—मउलियकरु, पणामियसिरु, चूयकुसुमदलधारउ ।
वणमालिउ, सरिसालिउ, जंपइ वयणु पियारउ ।।13।।

(14)

हों देव चूअ सुरहिय दिसासु, आविउ सिसिरंति वसंतमासु ।
कोइलढक्का वड्ढिय पयाउ, उवव णि सण्णट्ठउ मयणराउ ।
अंवय मंजरि तोमर करंतु, मलयाणिल गय वरि संचरंतु ।

---

1. घ. कहि सोहइ कुलू, 2. = तपोनिर्मलंः
3. = मम तापेन सर्वजनतप्तः, 4. = राजानः तप्ताः,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उड्डिरहंसावलि धयधरंतु, अलिपंति तिक्खखग्गइ वहंतु ।
कामिणि भूवल्ली धणु कुणंतु, अइतिक्ख कडक्खासरमुवंतु ।
तं णिसुणिवि चल्लिउ पुहविणाहु णं पवणें पेरिउ वारिवाहु ।
वहु पंचवण्ण कुसुमहिं रसालु, वह सोरहु धाविउ भमरमालु ।
कोइल भमरारव सुहियकण्णु, अइबहुइ[1] महुरफल भक्खवण्णु ।
सीयल मलयाणिल लीलविद्धु, इयपंचिंदिय विसर्यहिं सणिद्धु ।
वणु पिच्छिवि जा संतुट्ठु राउ, विहरणहं लग्गु वज्जिय विसाउ ।।

घत्ता—ता गयणहु, मणुय अगमणहु, चारणु मुणि संपत्तउ ।
तवजलणें, भवडहणें, जो सव्वंऽगें तत्तउ ।।14।।

(15)

जो अण्हाणें सामलियगत्तु, णं झाणजलण धूमेण छित्तु ।
जो वारहविहतवदुव्वलंगु, णं मुत्ति णारि विरहें णिसंगु ।
जो वड्ढिय अइदीहरण हयरु, णं मण मायंगहो सिणि णायरु ।
तसु पय पणविय वहु भत्तिजुत्तु, पभणइ णरवइ हउं हुउ पवित्तु ।
कइयहं महुहोही चरणलाहु, णिम्मुक्क सयलसंगाऽवगाहु ।
णिसुणिवि[2] भासइ मुणिवरिंदु, णिय णाणमऊहहिं पुण्णिमिंदु[3] ।
णियराय लच्छि उद्धरियधम्मु, जइं इहं तुहं[4] होही पुत्तजम्मु ।
पुणु पुत्तजम्मपडिसेहहेउ[5], णिसुणहिं जं हुअउ कालखेउ ।
पुव्वहिं इह पुरि वहु धणसणाहु, देवंगहु णामें आसि साहु ।
सिरिकुक्खि णाम तहु तणिय कंत, सोहग्गरुवलावण्णवत ।
णामेण सुणंदा तासु पुत्ति[6], सायारधम्मपालण सुजुत्ति ।
थिय एक्क दिवसि अवरिक्खणारि, णवजोव्वणि पीडियगब्भभारि ।

---

1. ख.वहुय,
2. ख. णिसुणेवि,
3. =पूर्णचन्द्रवत् मुनिः,
4. ख. यहं
5. =पुत्रजन्मप्रतिषेधकारणं,
6. देवांगदश्रीकुक्षयोः पुत्री सुनन्दा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवलोइवि[1] किवउ णियाणवंधु, माहोउ मज्झु गब्भहो पवंधु ।
इह परभवि गब्भि णच्छि कज्जु, जं माणुसु किज्जइ पीडपुंजु[2] ॥

घत्ता—जिणसरणें, सुहमरणें, मरिवि पढमकप्पहो गय[3] ।
तहु आविवि, सुहभाविवि, हुअ दुज्जोहण रायसुय ॥15॥

(16)

सा एह तुज्झ सिरिकंत भज्ज, चिरभवहु णिहाणें फल विरज्ज ।
एवहि उवहुत्तउ तासु फलु, कइवव दिणेहि सुअ अतुल वलु ।
होही णरवइ माभंति किज्ज, तहो पच्चअइ मुणिचरणउ[4] चरिज्ज ।
तावहिं करिज्ज सायारु धम्मु, अइचाररहिउ णिरु सुद्धकम्मु ।
ताणिउ पभणइं महु तोडि भंति, सायारहु कइ अइयार हुंति ।
बारह वयाहं एयारसिट्ठि[5], मुणि पभणइं णिसुणहिं सुद्धदिट्ठि ।
छेयणु वंधणु घायहि ताडणु, अइभरघल्लणु असणमिवारणु ।
अलियकहाणउं मम्मपयंपणु, कूडलेहकरसण्णा जंपणु ।
धवणी चोरणु जो वज्जो सइ, वीयाणुव्वउ सो सविसेसइ ।
दव्वहु रावणु हरियहु धारणु, रायविरुद्धउ करणी कारणु ।
लहु आहिय तुलमाणह संगहुं, तइया अव्वय दोसपरिग्गहु ।
अवरविवाहु अजोणिहि मेहुणु[6], भंड विज्ज अइ सुरह समीहणु ।
विहवसमुण सीसयरिणि कीलणु, तुरियाऽणुव्वयदो सुम्मीलणु ।
अइवाणहो अइसंगहु करणउ, विम्हइ[7] लोहा अइभरवहणउ ।

घत्ता—इय पंचहं, सुंहसंचहं[8], भासिय दोसाणुव्वयहं णिच्चलु ।
एवहि सुणु, णिच्चलु मणु, करि णिम्मलु, भासमि दोसगुणव्वयहं ।16॥

---

1. ख. ख. अवलोयवि, अन्यस्त्रियं गर्भवती अवलोक्य सुनन्दा निदानं कृतमित्यर्थः
2. ख. पुजु,
3. =सुनन्दा,
4. ख. चरणउं
5. = अतिचारसृष्टिः
6. =हस्तपादादिकामचेष्टा
7. ख. विम्हय=विस्मृतः
8. ख. सेचहं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(17)

उड्ढह तिरिच्छा अइक्कमणु, खित्तावहि पिहुलत्तरण करणु ।
संखित्तहु खित्तहु वीसरणु[1], इय पढमगुणव्वय दोस गणु ।
मंडइासु मंडागम पइयडणु, धिट्ठवयणु अइभोयपसाहणु ।
असमिक्खा करणउ वज्जिज्जहिं, बीयगुणव्वय दोस वइज्जहिं ।
विसयायरु विसयहं अइसुमरणु, अइलुल्लत्तणु अइतण्हत्तणु ।
अइ अणुहउ[2] वज्जहि जाणेप्पिणु, पेसणु[3] सद्दणु अणु आणावणु ।
अप्पहु[4] दंसणु पुग्गल खेवणु, जे पढमहो सिक्खावयहो दोसणु ।
ते कहियणि सुणि वीयहो[5] विसेउ, दुट्ठे तणु मणुवयणें जुत्तउ ।
विणु भत्तिए[6] वीसरणें गुत्तउ, दूय सामाइय दो समुणिज्जहिं ।
एवहिं पोसह वयणु सुणिज्जहिं, गहणवि सज्जणु अणुअच्छरणइं ।
मुक्कापीडिय अप्पडिलिहणइं, आयर सुमरण भुक्खाणट्ठइं ।
ए पोसहवयदोसा सिट्ठइं, हरियपिहाणवि हाणें मुत्तउ ।
आयर समरण भाव वि जुत्तउ, अंतरि मच्छर दो सिंगहियउ ।
हरिय पिहाण विहाणें जुत्तउ, बइया विव्वहो दोसा कहियउ ।

घत्ता—इय बयणिहिं, मलहरणिहिं, मुणिणाहहो णिउ हिट्ठउ ।
भवदमणइं, तहु चरणइं, वंदिवि भवणि पइट्ठउ ।।17।।

(18)

सायारधम्म धुर धरणधीरु, जिणण्हाणा पुज्ज णिम्मल सरीरु ।
चउविह दाणायर मण वि वसु, वर धम्म झाण बाहिय दिवसु ।
सकलत्तउ जिणहरु अणुसरेवि, णंदीसरि अट्ठाही करेवि ।

---

1. संख्याकृतक्षेत्रस्य विस्मृतिः
2. पूर्वानुभूतं
3. प्रेषितपुरुषं
4. ख. अइपहु
5. द्वितीय शिक्षाव्रतस्य दोषाः
6. =अनादरेण
7. ख. जिणठहाण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जा अच्छइ ता संजरिणय हरिस, कंतहि संपण्णा गब्भदिवस ।
सा गब्भत्थाय पंडुरियदेह, एां फलिह घडिय पुत्तलि रिणरेह ।
णीलासु पीणु थणु जुउ धवलु, संकलं णाइ चंहह जुवलू ।
जंभाई रिणयडी विर सहीव, अ ंगउ णहु मिल्हइ गुण गहीण ।
आलसु वरमित्तु व भत्तिजुत्तु, सामीउ ण मिल्हइ एय चित्तु ।
तहिं लज्जासहु ं वड्ढइ उवत्त, उज्जमि सहु णासइ बलिपवत्त ।
सा सुत्तिव मुत्तिय गब्भिरिणया, मोहालि व जलभर वाहिरिणया ।
मुरिण वारिण व रिणच्चल अत्थपरा, जयणालि व गुरु तसणारि हरा ।
तहि कुक्खि व लोयट्ठियउ अरा, केवल सत्ति व तहि भुवरण भरा ।

घत्ता—जिरण अ ंवरिण, सुहसंचरिण, तहिं दोहल या जाया ।
या मुरिणदारिणहिं, वुहमारिणहिं, सुहं रिणरु पूरइ राया ।।18।।

(19)

अह सुहतिहि वेला भरवहेसु, सयलेसु उच्चढाणय गहेसु ।
रिणयतेउज्जालिय सुइहरु, उप्पण्णु पुत्तु णंदि व सयरु ।
अ ंतेउरु पुरु रोमंचियउ, तूरत्तय भाव पवंचियउ ।
गुत्तिहिं मिल्हिय अरिवंदिदणीउ,[3] खंजंति पायमरण णंदणीउ ।
वद्धा वउ रायं अप्पतुल्लु,[4] किउ आधि विरज्जहं तणउं मुल्लु ।
दसमइ दिरिण तहु मंगलिउ धम्मु, गुरु सुयणहि किउ सिरिधम्मु णामु ।
दिरिण दिरिण णंदणु वड्ढणहलग्गु, सयलारिमणोरहमंडुभग्गु ।
राऐं कल[5] संचउ सिक्खविउ, रिणम्मलु गुणगारव लक्ख विउ ।
सयलउ रिणव विज्जउ सिक्खविउ, रिणरु णायर सायणु वक्ख विउ ।
णामेरण पहावइ रायकण्ण, ताए ं परिणाविय सील पुण्ण ।

---

1. ख. मोहासिव
2. कारागृहात् वंदिजममुक्ता
3. =आत्मसमान याचक कृत:
4. =कल समूह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—गुणरायहो जुवरायहो, अप्पि वि णियमहि रज्ज भरु ।
इंदियसुहु, णिहणिय.दुहं, सइं अणु हुंजइ कयपसरु ।।19।।

इय सिरि चंदप्पहचरिए, महाकव्वे महाकइजसकित्तिविरइये ।

महाभव्व सिद्धपाल सवण भूसणे सिरिधम्मजुवराय पट्टबंधो

णाम वीउ संधी सम्मत्तो ।।छ।। 2 संधिः ।।छ।।

।।ग्रंथ संख्या ।। 193 छ ।।

[इति द्वितीय संधि]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तइउ संधि

(1)

अह एक्कहिं दिणि सिरिसेणराउ, सुहरस पीयूस णिवुद्ध काउ ।
जा रयणिहिं घर पंगणि वइट्ठु[1], बहुकामकेलि विच्छरि पइट्ठु ।
ता णहहु पडंती उक्क दिट्ठु णं मुत्ति दिट्ठु अइराय पुट्ठु[3] ।
णं रज्ज मोह तम अरुण कंति वेरग्ग तेय णं दीवयंति ।
णं हरिसिय तव सिरि घट्टवीरु, णं कुंकुम छंट्टुइ कामभीरु ।
णं फुट्ठ भवोयर रत्तधार[4] इंदिय वेडं कण तत्त आर ।
तं पिक्खिवि[5] णरवइ मणि विसण्णु, वेरग्ग परम भावहु पवण्णु ।
मा धम्मु हणिवि सुह अणु हविज्ज, मा अत्थ काम तण्हा चरिज्ज ।
चिंतिय इह भवि णहि किं पि सारु, दिढ मणि वि वरिउ ण सहइ वियारु ।
फेणु व णिस्सारउ मणुअ जम्मु, परवावारें जहिं णत्थि धम्मु ।
मल वीयउ मल उप्पत्ति ठाणु, मल पूइगंध दुक्ख विय धाणु ।
जइ एरिसु णारिहिं अंगु मुणिउ, तो अमिय सुरहि भावेण थुणिउ ।

घत्ता---वा सिवि वहुगंधिहिं, णिहय दुगंधिहिं, आहारिसु मइं मोहियउ ।
तिय तणु मलपिंडउ, असुइहि भंडउ, अणु हुज्जइ तग्गअहिं यउ[6] ।।1।।

---

1. ख. वइट्ठु, 2. ख. पइट्ठु, घ. वइट्ठु,
3. = मुक्तिदृष्टि अति रागपृष्टः,
4. ख. भवोरहु०, (=संसारो दयस्य रक्तधारा क्वा दृष्टा)
5. ख. पेक्खिवि, 6. ख. व्यहियउ, घ. यहियउ,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(2)

जं चंद सिरिच्छउ मुहुं भणइं, तं कफ पिंडउं किं णंहु तुणइं ।
जे काम भल्लि तिक्खा कडक्क, ते सव्वउ दूसिय मल गल्वख ।
जे विंवाहर पीयूस[2] ठाण, ते फुड्डु णिट्ठीवण मल णिहाण ।
जे पीण तुंग थण अगयकुंभ, ते मंसहं पुट्ठलु दिढ वियंभ ।
जं रयण मज्झि सोहग्गु अच्छि, तं पिहिय धाणु को छिवइ हच्छि,
अणु वि किर जित्तिय[3] सयल खोणि, तो[4] सोयव्वउ[5] चउहत्थ कोणि ।
जइ कोडि संख खारीउ धण्ण, तो सइं भुंजइ दो पसइ[6] अण्ण ।
ता परकारणि[7] वित्थर विहाणु, किं किज्जइ अप्पहं पाव ठाणु ।
जहं णाडय अहिणय[8] सयण बंधु, तह पुत्त कलत्ता इय पवंधु ।

घत्ता—इय चिंतिवि राएं, जाणि विराएं, करणिज्जउ निद्धारियउ ।
सडिवक्कह खंडणु, णियकुल मंडणु, वेए सुउ हक्कारि अउ ।।2।।

(3)

पणमिय सिरु सो अग्गइ वइट्ठु, विरलिय णेहइ दिट्ठीय दिट्ठु ।
हे पुत्त पुत्त वहु अच्छ सुणहिं, मामहु वयणहु पडिवयणु भणहिं[9] ।
जा जरवाउलि णं तिण कुडीरु, धूणिवि[12] णिरु पाउइ महु सरीरु ।
जा णायणु वत्थु[12] भेयउ मुणेइ, संपेच्छिवि तसु[13] रक्खणु करेइ ।
जा सवणु साहु वयणइ सुणेइ. जा जीह जिणागमु पडु भणेइ ।
जा पय सु तित्थ पंथिहिं चडंति, जा कज्ज अकज्जइ संभरन्ति ।

---

1. ख. मुहु,
2. पीऊस,
3. ख. जेत्तिय,
4. क. ता.,
5. =शयितव्यं चतुर्हस्त भूमौ,
6. ख. पइसं,
7. ख. परकारणे,
8. ख. अहिणव,
9. भणिहिं,
10. –जरा एव वधूला तेन तृणकुटी इव ।
11. कंपयित्वा,
12. घटादि पदार्थभेदं जानाति,
13. वस्तुनः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ता इच्छमि छेंड[1] भंवहि पासु । जिण दुक्ख छुरीइ होइ वि णिरासु ।
अइ वुड्ढहु वट्टइ भोय तण्ह जह पुण्णिमचंदहु वहल जुण्ह ।

घत्ता—तिय[2] हासहु मंदिरु, वहु गय[3] कंदिरु, सयललोय असुहावणउ ।
सव्वंगें कंपिरु, सास वि जंपिरु, वुट्टत्तणु विलिसावणउ ॥3॥

(4)

थेरउ मणि तत्तउ सुरइ[4] भग्गु, णिद्दंतउ साणु[5] व अट्ठिलग्गु ।
णवि मिल्लइ णंवि उवभोय सक्कु, पिक्कं व हिट्ठि णं पंगु थक्कु ।
थेरहु ढंकिय सवणाइ वेवि, णं गइय वुड्ढि घर दारु देवि ।
णिक्किर डिय णयणइ णउ उवंति, णं विय सिय जरलय[6] कुसुम पंति ।
मुहहुं[7] तीणि वडइ दंतसेणि, णं फुट्टी पाण कवट्टु गोणि ।
पंडुरउ सीसु केरिसउ भाइ, वुट्टत्तण कित्तिए धवलु णाइ[8] ।
खल्ली[9] णं घोइय तंव पत्तु[10] दोहग्ग णासवं भणहुं वित्तु[11] ।
सव्वंगउ वलि विल्लरहिं छिण्णु, णं काल सुणहं[12] दंतिहिं विकिण्णु ।
अइ णिहुडुं णिहुडु पहि संचरेइ, णं काल हरिय रय[13] पउ[14] ठवेइ ।
अठ्ठंगइ तसु कप्पंति[15] केम, जरदेवि[16] चडिउ अवयारु[17] जेम ।

घत्ता—वहुलाल गलंतउ, रोय किलंतउ, वुट्ठत्तणु असुहाव णउं ।
णिल्लज्जु असुदरु, तण्हहं मंदिरु, को यं भिउडि भीसावणउ ॥4॥

---

1. =संसारपाशस्य छेदं वांछामि,
2. स्त्रीणां हास्यस्थानं,
3. =रोग,
4. कामो भग्न:
5. श्वान इव,
6. जरा एव लता,
7. ख. मुहहों,
8. ख. णाइं,
9. =टांटि,
10. ताम्रभाजनं,
11. =पात्र विशेष:
12. =काल ऐव श्वानस्नेसां दंतै:,
13. =वेग:
14. =पादो,
15. क ख.ग. कंपंति, घ. कंप्पंति,
16. =जरा एव देवि,
17. =लग्नापराध:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(5

ता हउं करेमि लहु अप्पकज्जु, तुहुं परिपालहिं[1] सत्तंगु रज्जु ।
मा णियजणु अप्प विरत्त किज्ज, मा जणउ बयारइं बीसरिज्ज ।
मा दुज्जण लोयहँ अग्घु दिज्ज, मा साहुहुँ गुण पच्छइं करिज्ज ।
मा केण वि गव्वुत्ताणु हुज्ज, मा विसम समण[2] पासए पडिज्ज ।
मा अजस गुरुअ[3] गयवरि चडिज्ज, मा चित्ति वि पावहु दव्वलिज्ज[4] ।
मा दाणरहिउ लच्छीउ भुज्ज[5], मा तित्थ सत्थु दूरों चइज्ज ।
मा असुरविजय कम्मइं सरिज्ज, मा मम्महं वाणी वज्जरिज्ज ।
मा पावपिसुणु चरिउं चरिज्ज, मा चिरमंतिहिं कुलु संहरिज्ज ।
मा अइकरपीडणि पइ[6] खइज्ज । ---------------

घत्ता इय रज्जु करंतहु, महि पालंतहु, सिरिसुह कित्तिउ पुण्ण भरु ।
तुहुं धुउ संपज्जउ, तेउ समज्जउ[7], सयलमणोरहकप्पतरु ।।5।।

(6)

इय सिक्खइं सहुं तहु दिण्णलच्छि, गउ उववणि वुट्ठय मंति पुच्छि ।
सिरिपहनामेण मुणिंद पासि, संगहिय दिक्ख भवभमण णासि ।
कालें दुद्धर तवि[8] वि[9] हणे वि दुक्खु, संपत्तउ णिरु णिव्वाण सुक्खु ।
इत्तहिं पुरवरि[10] सिरिभम्मराउ, णियजाणण[11] विउयं णिरु बराउ[12] ।
मंतिहिं मित्तिहिं पडिवोहयंतु, ठिउ सयल पुहवि णीइहिं ठवंतु ।

---

1. क. पयपालहिं,
2. ग. घ. वसण = विसन पाशौ,
3. = अयशः गुरुहस्तिनि,
4. ग. दव्वु = पापिनो द्रव्यं,
5. क. भोज्ज, घ. भुंज,
6. ख. ग. पय,
7. क. तउ समव्वउ
8. क. तवे
9. क. ख. घ. 'वि'—इति नास्ति शब्दोऽयं
10. ख. ग. घ. पुरवरे
11. ग. घ. जणण
12. ख. ग. विराउ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ता विजय जत्त[1] पायाणु दिण्णु, चउव्विह[2] वल सेरणा संपवण्णु ।
पायारण[3] तूर रवयाडियाइं, गिरिसिंगिहिं सुहुं वयरिहि[4] हियाइं ।
करि दाणपवाहिंहि समिउ मग्गि, रयभरि सहुं अरि पायाव[5] अग्गि ।
अणुकूलवान पसरिय धएहिं, छाइउ[6] रवि सहु अरियरणजसेहिं ।
बहुवलभारें[7] रिगरु कंपियाइं, सेसें सहु[8] अरिउल दप्पियाइं ।
चउरंगसेरण गइ चूरिवाइं, पहिं गिरि सहु अरिहंकारियाइं ।

घत्ता—वलभरि महि डुल्लइ, गिरिउ सुहुल्लइ, वुम्म पिट्ठिकडयडि[9] मुडइ ।
दिसि चक्कु[10] सलक्कइं उयइहिं[11] पलक्कइं, गायभुवणु खडहडि पडइ ।7।।

ता वेरिवग्ग वल खल भलन्ति, गं गरुडभयं फरिगसलवलंति ।
किवि तट्ठा किवि सम्मुहं चडंति, किवि कारगरिग किवि जममुहि पडंति ।
किवि दंततिरगउं किवि गलि कुहाडु, किवि दंतंगुलि किवि चवहिं चाडु ।
किवि मिल्लहिं पुत्तकलत्तवग्गु, पियपारग लेवि आरुहहिं दुग्गु ।
किवि सयललच्छि ढोवणु कुणन्ति, दव दद्धरुक्खु[12] वसइं[13] हवंति ।
किवि रिगम्मलि[14] मुहि घलंति अंकु, सकलंकु कुणहिं[15] गं छरणमियंकु ।
किवि गहहिं वेल मिल्लेवि[16] गव्वु, तक्खिरण ण लहहिं जिम रज्जु सव्वु ।
किवि पिच्छिवि सव्वुउ वाउ खीणु, दुद्धरु तव[18] साहहिं रिगरु अदीणु ।
किवि जारिगवि इहु[19] लेही ण भंति, रिगय सयलु रज्जु दारणेरग दिंति[20]

---

1. घ. यत्त
2. ख. छव्विह
3. संग्राम भेरि
4. ख. वेरिहि
5. क. पायाल – पादप इत्यर्थः
6. ग. छायउ
7. ग. भारिं
8. ग. सहु
9. ख. पुट्ठि
10. ख. बक्क
11. घ. उवहिं
12. दद्धरुक्ख,
13. ख. वसइं
14. ख. रिगम्मल
15. ख. कुणहि
16. ख. मेल्लवि
17. क. ख. वायु
18. ग. घ. तउ
19. एस. राजा समस्तराज्यं गृहणात्तीति
20. ख. दंति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—इय दुद्धर रिउयण, अइदप्पियमण, सयल वि आणा[21] वसिकरइ ।
पणमं तहं तूसइ थट्टह[22] रूसइ, खत्ति धम्मि सो णिउ चरइ[23]।।7।।

(8)

जइ णिह णिउ संगरि अरि णिकाउ, तो फिरि[4] फिरि जोवइ तहु पयाउ[5] ।
जो एतें[6] दिट्ठउ तियहिं यम्मि, विरहाणलमिसि पत्तउ तहम्मि ।
तहु रिउकुल सुरपूयाणिरास[7], कय[8] जीवियरक्खह तिणहं आस ।
तहु[9] अतुल परक्कमु संभरंति, जीवंति मुक्क किवि अरि भणंति ।
कण्णिट्ठंऽगुलि[10] किउ युद्ध कज्जु, दीहरभुवदप्पहु पडउवज्जु ।
कुवि भणइ चारुमइं कीय बुद्धि, सरसउ कोहाडउ[11] लइउ जुद्धि[12]
कुवि भणइ वम्म णिग्घाय[13] तत्तु, असिवरु मुहु सइं तेणं ऽकु घेत्तु ।
कुवि भणइ पढम महु हत्थ छिण्ण, पायंगुलि दंतहि तें[14] वियण्ण ।
कुवि भणइ तासु[15] करि कुंभ पिक्खि[16] अज्ज वि वीहमि तिय क्षण णिरक्खि[17] ।
कुवि भणइ खग्गुमइं तासु दिट्ठ, तें सुरयमज्झि[18] पिय वेणि तट्ठु ।
कुवि भणइ धणुहं अइवंकु तासु, तें गेहणि भूल्लइ णउ विसासु[19] ।
कुवि भणइ दिट्ठमइं वाणतिक्ख, अज्ज वि भीसावहिं तिय कडक्ख ।

घत्ता—पसरियजयछायहं, बहुरिउ रायहं[19] इय वित्तंतु पयट्टि वि[20] ।
चउदिसउ जिणेप्पिणु दंडुगहिप्पिणु, किउ पयाणु[21] ऊहट्टि वि ।।8।।

---

1. क. ०याण।
2. क. यद्दह,
3. ख. चरए
4. ख. ते फेरि फेरि
5. = राज्ञः प्रतापः
6. घ. यंते
7. क. ख. ०निवास=कुल देवतापूजायां निराशः
8. = स्वस्य जीवस्य रक्षा कृता मुखे तृणं धृत्वा
9. श्रीधर्मराज्ञः
10. कणिट्ठंगुलि = कणिष्ठांगुलिना कृत्वा मया कार्यं कृतम्
11. कुहाडकं स्कंधे कृत्वा,
12. क. युद्धि
13. हृदये निर्घातेन तप्तः
14. क. घ. ति
15. = राज्ञः करिणः कुंभच्छलं दृष्ट्वा,
16. ख. पेक्खि
16. ख. णिरिक्खि
17. = रतिमध्ये स्त्रीवेण्याः सकाकात् भयप्राप्तः
18. = भ्रूलतायां न विलासः
19. ख. रायह
20. = प्रवर्त्य
21. ख. उंहट्ठिवि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(9)

णियग्राण गहावि वि सयलराय, णिम्मलि जसि धवलि तिभुवण छाय ।
रिउदंडु लच्छि अच्छियहं[1] देवि, णिय णिय पुरि णरवर मुक्कलेवि ।
णिय पुरि संपत्तउं विजयवंतु, वहु वंदियणेहिं[2] णिरु वंदियंतु ।
हरिसिय पुरयर अग्घइ[3] लहं,तु पोरंगण[4] लज्जंऽजलि गहंतु ।
अइ णयरसोह मंगल णियंतु[5], जिणपडिमइं पहि पहि णिरु णमंतु ।
णियगेहि णिसण्णउं तुट्ठिवंतु, पंचेंदिय सुह माणइं महंतु ।
ता इक्क समय नहिं णयरु दिट्ठु, अवलोयंतहु तक्खणि विणट्ठु ।
चिंतिवि[6] वेरग्गुहुं सो पवण्णु, विसएसु तण्ण को कुणइं घण्णु ।
सिरिकंतहो[7] पुत्तहु देवि रज्जु, सइं[8] चल्लिउ साहण[9] अप्प कज्जु ।
सिरिपहहु[10] मुणिंदहु[11] पायमूलि, संगहिय[12] दिक्ख गुणकण[13] कुसूलि ।[14]
सो तेरह विहु चारित्तु चरिबि[15], सोहम्मसग्गि उप्पण्णु मरिवि ।
सिरिहरु णामें संपण्णु देउ, बहुदेवांगण संजाउ सेउ ।
दो सायर उवमइं आउमाणु, किं वण्णमि तहुं सुक्खहुं पमाणु ।।

---

1. =याचकानां,
2. ख. वंदियणिहि,
3. =अर्घ्यनिश्लाघानि
4. घ पडरंगण,
5. ग. समइं,
6. ख. चिंत्तिवि,
7. ख. घ. सिरिकंतहुं,
8. ख. सइ,
9. ख. साहणं,
10. ख. सिरिपहहो,
11. ख. मुणिदहे,
12. ख. घ. संगहिअ,
13. क. गण,
14. =पृथ्वी,
15, ख. चरेवि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—सोलह आहरणहिं, सुरमण हरणहिं[1], देवंगिहिं[2], णिरु भूसियउ ।
चउरसु संठाणउ, तेयणिहाणउं, तहो वउ णहु[3] मणइ सियउ ।।९।।

(10)

अह धादय णामे दीउ अत्थि, तहो दाहिणि कीडिय अमरसत्थि ।
[4]इसुणारिहिं सेलहुं पुव्वभग्गहि, चउवग्ग लच्छिणच्चणहं भरहि ।
अलका णामे तहिं अत्थि देसु, णं सुक्ख सग्ग[5] लहु तणउ वेसु ।
जो थलकमलिणि मयरंद पिंगु, वहुपक्क कमल सोरहिय अंगु ।
कामुय जणुव्व जो सइं विहाइं, उच्छव रसु आसव[6] मत्तुणाइँ ।
मंदाणिलहल्लिर तरुरमालु, णँ छक्किकउ[7] घुम्मइं मय विसालु ।
आवत्तणाहिं रमणिय विसेस, विहगावलि मेहल सिरि विसेस ।
सुपयोहर[8] हारिणि कमल णित्त, वहुणइउ धरइ णं पियकलत्त ।
तहिं कोसल णामें अत्थि णयरि, वहुसुक्ख लच्छि गुणगणहिं पवरि ।
जहिं रयणंगणि उडुपडिविंविय, मुत्तिय मंदिए हंसिहि[9] चुंविय ।
जहिं सइ रिणि तिमिरि वि संचरति, णियमुह चंदिणि दीसइ तुरंति ।
जहिं गेहसि हर जालय पहुत्तु, कालागरु धूमहि चंदुछित्तु ।
तक्खणि हू अउ[10] एयहु कलंकु, णहयलि[11] किल कहिं ससुहरिणु अंकु ।।

घत्ता—तहिं पुरवरि[12] राणउं, तिजय पहाणउं, अजितंजउ[13] णामेण हुउ ।
इंदु व सामच्छिहिं, मुवण[14] कयच्छिहिं, जो महि पालइ पीणमुअ ।।10।।

---

1. क. हरणहि,
2. ख. देवंगहि
3. ख. णउ,
4. =पर्वता:
5. ख. मग्गालहो,
6. =मद्य,
7. ख. णच्छक्किकउ,
8. ख. सुपउइर,
9. ख. हसहें,
10. ख. हूयउ,
11. अ. कहि ससु कहिं हरिण अंकु,
12. ख. पुरवरे,,
13. ख. घ. अजियंजउ,
14. ख. मुवणि०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(11)

जसु सिय गुणेहिं वं मंडु मंडु, पूरिउ सयवत्तिहिं णं करंडु[1] ।
पायाव अग्गि जसु ता वियाइं, उब्भंति[2] व भुवणहो जसपयःइं[3] ।
जसु गंभीरत्तु णु गुण लज्जिउ[4], लवणोवहि कसिणत्तु समुज्जिउ ।
पडिदिणु जसु पायाव पलित्तउ[5] सूरें अप्पउ जलणिहिं घित्तउ ।
जसु मइ सायराउ उच्छलियइं[6] णहयलि गुरुकइ[7] विंदु व कलियइं[8] ।
भीसण[9] सूअर सप्पहु[10] तट्ठी[11], जसु गिहु भुइ भूदेवि वइट्ठी ।
जसु अजियसेण णामेण कंत, कुलसील सुगुण सोहग्गवंत ।
जिइ अग्गइ[12] दासि व लच्छि भाइ, अंगहु महु[13] पुत्तलि रंभणाइ[14] ।
चक्खुड्डावणि णं कामकंतु, इंदाणी रंकिव रूव वंतु ।
रोहिणि दोहग्गहु[15] णाइं खाणि, गवरिय दुच्छिय थेरी[16] व जाणि ।
ताहं परुप्परु रइकीलंतहं, पंचेदिय सुहरसु माणंतहं ।

घत्ता—सुरु सिरिहरु णामें, गुणगण धामें, जो सुरलोउ पवण्णउं ।
आवेविवि[17] सोहम्महु, मुंजिय सम्मुहु, सो तहं सुउ उप्पण्णउं ॥11॥

(12)

तहु णामु परिट्ठिउ अजियसेणु, जो अरि णिव चिडिया चंडसेणु ।
वालु वि गुण गउ रवि संपवण्णु' वालु वि सुय सायर पारु तिण्णु ।
वालु वि जं वुड्ढहं धुरि वइट्ठु, वालु वि णयविल्लिहिं कंदु दिट्ठु ।
वालु वि कुलभर धुर धरण धीरु, वालु वि अरिवर णिद्दलण धीरु[19] ॥

---

1. क. ग. करंड,
2. ख. उप्भंति,
3. =यश:पदानि
4. ख लज्जिइ, घ. लज्जियउ,
5. घ. पलित्तूउ
6. ख. उच्छलियइ,
7. = वृहस्पति शुक्रं च,
8. ख. कलियइं,
9. = रौद्रसूकरात् शेषनागाच्च,
10. ख. सप्पहो,
11. = भूकुलदेवी या राज्ञः भुजायाँ प्रविष्टा,
12. = अजितसेनायाः अंगे
13. ग. घ. मल,
14. = शरीरमल पुत्तल्नि कारंता,
15. ख. दोहग्गहो,
16. दुश्चिता वृद्धा इव यस्या अंगे गौरी भाति,
17. क. अविवि,
18. = शत्रु राजा इव चिडास्तेषां प्रचंड .. ... ,
19. ख, अरिभडणिद्दल णिवीरु.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वालु वि धम्मिक्क गिवद्ध[1] गाहु, वालु वि जग सिक्खादाण णाहु ।
तं पिच्छिवि णरवइ तरुणु हुंतु, चिंतइ णंदणु गुणगण महंतु ।
हउं धण्णु पुण्णु जसु एहु पुत्तु, एएं[2] महु कुलु चिर किंत्ति जुत्तु ।
गुणवंते पुत्तें जं जि सुक्खु, पीऊस हाणु तं हुइ विलक्खु ।
गुणवंतउ भत्तउ रूववंतु, पुण्णें हि विणु दुल्लहु[3] होइ पुत्तु ।
ता दिज्जइ इह जुवराय लच्छि, कुलवुड्ड मंति सयले वि पुच्छि ।

घत्ता—हक्कारि वि वुहयणु[4], अणुसहु परियणु, आलोइ[5] वि मंतिहिं सहु[6] ।
वंदियणि पढंतिहिं, मंगलि हुंतिहि, जुवरायहु[7] पउ[8] दिण्णुतहु ।।12।।

(13)

जा[9] मंगलु मंगलि आहासइ, जा पुरुपरियणु हरसें लसइ ।
जा राउ[10] रयणाभूसणाए, उवविट्ठउ सहु[11] सिंहासणाए ।
जा पुत्तु ण विज्जइ णरवरेहिं, मउ डग्ग कीडिचुंविय धरेहि[12] ।
ता[13] चंदरोइ णामें असुरु, चिरजम्म वेरि संभरण परु ।
दंसण णिमित्ति संजाय कोउ, संमोहिं वि तहिं अच्छाण लोउ ।
अवहरिउ तेण[14] जुअराउ झत्ति, विच्छारियि[15] माया विज्जु सत्ति ।
खण मित्तु एक्कु संमूढु[16] राउ, पच्छा जायउ चेयणट्ठ भाउ ।
वा दिट्ठी सहु णियपुत्त सुण्ण, वीवाहि[18] जि रंडी णाइं[17] कण्ण ।
संभमि अवलोय[19] वि चउदिसासु, चिंतइं णरवइ मिल्लिवि निसासु ।

---

1. क. विवद्ध,
2. =यावत्,
3. ख. दुल्लउ,
4. ख. वुहअणु, घ. पुहअणु,
5. ख. आलोए,
6. ख. सहुं,
7. ख. जुवरायहो,
8. घ. पदु,
9. =यावत्
10. = राजा,
11. ख. सेहु,
12. ख. °धरेहिं
13. = तावत्,
14. = पुत्रेण इत्यर्थः,
15. ख. विच्छारिवि,
16. ख. घ. संमुच्छु,
17. = सभा दृष्टा,
18. = विवाहकाले रंडा इव सता,
19. ख. अवलोएवि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किं मोहु एहु किं इंदजालु, किं सिविणउं किं वा मइ[1] भ्रभालु ।
जं पासि व इट्ठउ णच्छिपुत्तु, अहवा को जाणइं दइव सुत्तु ।
इम चिंते वि सो सोयणहं लग्गु, हा दइव मणोरहु मज्झु भग्गु ।
हा पुत्तपुत्तकहिं संपवण्णु[2], कहिं पुणु तुहं मुहुं पिच्छमि अपुण्णु ।
देहेहिं पुत्त पडि वयणु[3] ताम, णं फुट्टइ हियडउ मज्झु जाम ।।

घत्ता—इय वहुविलवंतउ, करुणु रुवंतउ, मरवइं मुच्छा विहलुगउं ।
अंतेउरु धाइयउ, सोयपरायउ, परियणि हाहा कारु किउं ।।13।।

(14)

जियसेणा पिच्छिवि राय मुच्छ, मुच्छिय हिमहय पोमिणि सरिच्छ ।
दुण्णि वि सिंचिय हरिचन्दणेण[5], दुण्णि वि बिज्जिय चमराऽणिलेण ।
ता डुण्णि वि चेयण कह वि पत्त, णीसास झुलक्किय सुयणगत्त ।
महए वि भणइं हा पुत्त पुत्त, पइं[6] विणु जीवेवइ कवणवत्त ।
दइवें दक्खालिवि मणि निहाणु, रंकहु अप्पिउ भिक्ख ठाणु ।
णं अमिय घुंटुहुट्ठवडि लग्गु, तक्खणि दइवें तहु पत्तु भग्गु ।
णं अंधहु देविणु अक्खि जुवलु, दइवें उप्पाडिय खणिण विमलु ।
दीणहु देविणु सइ[8] इंदरज्जु, तक्खणि दइवें किउ भिक्ख भुज्ज[9] ।
णं रयणत्तउ पावे वि वंतु[10], णं गुणसेणिहिं खडहडिउ जंतु ।
सुहकित्ति वि हउं गुणतेउ थामु. विणु पुत्ते एयहु[11] णत्थि णामु ।
हा पइं विणु कुलि अंधारु जाउ, हा हा कह हो ही एहु राउ ।।

घत्ता—णरवइ णिरु धीरउ, उवहिं गहीरउ, बार बार मोहिज्जइ ।
दइवें णिरु सूरि[12], अहवा भीरु वि, कह विणु भेउ करिज्जइ ।।14।

1. =मतिभ्रान्ति,
2. ख. पवण्णुउं
3. ख. पडिवयण
4. क. कारुकउं
5. घ. हरियंदणेण
6. ख. पइ
7. ख. घुट्ट०
8. ख. ग. सइं
9. भोज्ज
10. =वमितः
11. घ. यहु महु वा पाठः ।
12. ग. सूरुवि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(15)

जा पुरु[1] परियणु सुय सोयमुत्तु, अत्थइ गारवइ दुहपंकि खुत्तु ।
ता तवभूसणु णामें मुणिंदु, चारणु णहयलि णं अमलचंदु ।
उग्गीबेंत्ते[2] आवंतु दिट्ठु, णियदेह तेय मंडलि पइट्ठु ।
पीऊसें खित्तउ[3] णत्इ[4] अक्कु, संगहिय महव्वय णाइं सक्कु ।
करुणा सीयलु णं मेघवाहु, रयणत्तय भूसणु गुण सणाहु ।
जा सो आविवि महिपउ[5] णांतुदेइ, ता उट्ठि वि णिउ पायहिं पडेइ ।
णिव करि ढोइय आसणि बइट्ठु, बीसरिउ सोउ णिउ हियइ तुट्ठु ।
हरिसंसुमिस्स जलि पाय धोय, जे सयलहु होअहि[6] तरण योय ।
पुणु सट्ठु पयारिय पूयकरि वि, वज्जरइ राउ सिरि हत्थ वरिवि ।
महु घरि आयउ तुहु अज्जु णाहु, णं दाव पलित्तहं वारि बाहु ।
णं जलहि किलंतहं जाण पत्तु, णं अइइहिं भुल्लहं मग्गु पत्तु ।
णं गरुथलि तिसियहं जलणिहाणु, रयणिहिं चक्कहं उइउभाणु ।

घत्ता—चिरदूहवतीयहं, विरहें दुहियहं, जहपिम्में[8] पइ सुरय सुहु ।
तह तुह पहु दंसणु, सिव सुह फंसणु, अम्हहं दुहियहं हरइ दुहु ।।15।।

(16)

इय सुणेवि राय वयणइं जयंदु, कय आसिवाउ भासइं अणिंदु ।
हउं पिच्छिवि[9] पइं सुय सोयतत्तु, आयउ पडि बोहण धम्म जुत्तु ।
अम्हाण वि गुणगणि पक्खवाउ, को तुह सरिसउ णिव सुद्ध भाउ ।
ता जाणंतु वि किह[10] करहिं सोउ, संजोयवि ऊय सहाऊ लोउ ।
तच्चइ बुज्झंत हो कासु मोहु, अक्कमइं ण रवि करभरु तमोहु ।
सुह मंगलि सव्वु विघीरु होइ, दुहि पडियइं णरवइ वियलु कोइ ।[11]

---

1. ख. पुत्तु
2. क. ०वेंतें
3. ख. पित्तउ
4. ख. णइं ग. माइं
5. घ. एय
6. ख. होवहि
7. =दुर्भगस्त्रीणाँ
8. पिम्मं
9. ख. पेच्छिवि
10. ख. कह
11. ग. विरलु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ताम करहिं तुहुं णंदणहु दुक्खु, सो असुरें हरियउ विमलचक्खु[1] ।
केहिवि दिणेहिं आवेइ इच्छु[2], वहु चक्कवट्टि लच्छी कयच्छु ।
तं णिसुणिवि हरिसिउ णरवरिंदु, पुलयंकरिय णं धम्मकंदु ।
मुणि वंदिउ पुणु उट्ठे वि जाम, जइ[3] गयण मग्गि संचलिउ ताव ।

घत्ता—मुणिणायहो वयणिहिं, पीणिय सवणिहिं, सोवीसासु पवण्णउ ।
णिय मंदिरि अच्छइ, सुह सइं वंछइ, मंगल लच्छि रवण्णउ ।।16।।

इय सिरिचंदप्पहचरिए महाकइ जसकित्ति विरइए

महाभव्व सिद्धपाल सवणभूसणे अजियसेणावहारो

नाम तइऊ संधी समत्ता ।।169:। ग्रन्थ संख्या 164 ।।

———

1. ख. कमलचक्खुं
2. ख. आविसइ पच्छु,
3. क. जय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चउत्थो संधि

(1)

अह असुरेण[1] गयणि उप्फाडिवि[2], गंपिणु दूरें अइ भम्माडिवि[3] ।
मारण कारणि कोवें मुक्कउ, कहवि कहवि पाणिहिं[4] णउ चुक्कउ ।
णाम मणोरमु गहण[5] सरोवरु, तहु[6] जलिणि वडिउ रायहु सुयवरु ।
पडणुप्फालिउ जलु पालिहिं[7] गउ, णियवाहंहिं सो[8] तरणंह लग्गउ ।
ता मयराइय जलयरधाइय, कुप्परकरपायहिं ते धाइय ।
तरिवि तरिवि[9] सो तडिहिं पवुत्तउ[10], बहुसेवाल वि तूरिहिं[11] गुत्तउ ।
जा अग्गइ ता णामें परुसा, पिच्छइ अडई[12] कुससुइ[13] परुसा ।
जहिं हरिण हरहिं करिमुत्तियभरु[14] पइ-पइ[18] णिवइड दिसि पसरिउ करु ।
णंदीहर तरुसाहहिं खुडियउ[16], गयणहो[17] तारामंडलु पडियउ ।
जहिं[18] तरु जाल[19] णिविड अंधारइं, फणिभइं सूर ण पाइयसारइं ।
जहिं घुरुहरिय घोरवग्घालिहिं, हरिणु ण णासिवि सक्कइ फालिहिं ।

घत्ता—कंटयतरु[20] छंडइ, उप्पहि हिंडई, जा णिव णंदणु तिच्छुवणे ।
ता दिसि जोयंते, णिब्भयवंते, दिट्ठउ गिरिवरु तिच्छु खणे ।।1।।

---

1. क. सुरेण,
2. क. ख. ग. उप्पाडिवि,
3. घ. भमाडेवि,
4. क. कहविश पाणिहि
5. घ. गहणे
6. ख. तहो, घ. तहुँ
7. क. जलुप्पालि
8. राजकुमारो
9. घ. तरेवि
10. पहुत्तउ
11. ख. विल्लूरिहिं, ग. विसूरिहिं,
12. ग. अडपी
13. दर्भसूची ति
14. ग. ०तरु
15. घ. पइं-पइं
16. क. ग. खुडिअउ
17. घ. गयणहुं
18. ख. जेहिः
19. वृक्षसमूहेनेति
20. क.ख. कंडयतरु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(2)

जासो गिरिवर सम्मुहँ चल्लिउ, मंथरसीयलपवणिहिं[1] पिल्लिउ ।
ता अंजणगिरि सिहरसमाणउं, दिट्ठउ एक्कु पुरिसुकोवाणउं ।
आमिसपिंडसरिसबललोयणु, पिंगल भंपडकय भीसावणु ।
दीहरदाढ विलाइय[2] णरसिरु, अग्गइ-थक्कउ गुरुमुग्गक्खरु[3] ।
अह सो भासाइ सिवघग्घरसरु[4], रे रे कोत्तहुं रक्खसु सुरणरु ।
भूमिमहारिय पायहिं मलयहिं[5], खमवंतहो[6] मुहु सहुं सइं खउलहिं ।
इह उववणि वहुलइं वित्थारइ, आयच्चु वि णहु अत्थु[7] पसारइ ।
सक्कु वि इह आवंतु वि थक्कइ, अण्णु को वि कह आवण सक्कइ[8] ।
तुहुँ पुणु णियभुयगव्वुत्ताणउं, मइं आसंघि[9] वि आउ अयाणउ[10] ।
ता अमरासुर सिरिसंचूरणु, सिक्खादेसइ मुग्गर पहरणु ।

घत्ता—इय कडुयइ सवणिहिं, तहो बहु वयणिहिं राय सूणु मणितत्तउ ।
भवभिउंडि करेप्पिणु[11], पुरउ सरेप्पिणु[12], जंपइं रोसपलित्तउ ॥2॥

---

1. क. मंघर०
2. घ. विलुय
3. क. ग. गुर०
4. घ. ०सिरु
5. ख. ग. घ. मयलहिं
6. घ. खमवंतहु
7. ग. हत्थु
8. =आगमनं शक्यते, अपि तु नेति
9. घ. आसंघे
10. ख. अयाणउं
11. क. करिग्घणु
12. ख. सरिप्पणु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(3)

को रे तुहुं कहिं पोरिसु बहेसि, वयणिहिं भीसावणु किं करेसि ।
हउ[1] परभउथट्टह[2] हियइ[3] सल्लु, दप्पिय सुर असुरहं दलणमल्लु ।
जइ अच्छि सत्ति ता पुरउ ढुक्कि, अह कुवि अप्पहं[4] साहाउ कुक्कि ।
महु[5] वज्जमुट्ठिपहरेण हणिउं[6], णाउ वि तुह पच्छा केण सुणिउं ।
ता रोसि घुरुक्कि वि संकचुक्कु असुरें मुग्गर पाहारु मुक्कु ।
ता कुमरु भालि उड्डिय पउट्ठु[7], मुग्गरु वंचिवि अंगहु पइट्ठु ।
पाणिहिं पाणिबद्धु पउ पायहिं, सीसिहिं सीसु पहारु पहायहिं ।
जा अवरोप्परु[8] दप्प मरट्टहं, पहुयदण्ड[9] पहार पलुट्टहं ।
दण्ड जुद्धु[10] गिरि गहणि पयट्टइ, दुहुजणमज्झि ण कुइउं[11] हट्टइं ।
ता कुमरें भुयदप्प करालिउ, पाइ[12] धरिवि रक्खसु अप्फालिउ ।

घत्ता—ता सुरसुह[13] दंसणु, मिल्हिउ[14] भीसणु, पच्चक्खउ संजायउ ।
णिरु जोडिय हच्छउ, पणमिय मच्छउ, विहिसि वि भणइं सरायउ ।। 3 ।।

(4)

हउं सुरु हिरण्णु भवणाहिवासि, पारिक्ख करणि तुहुं[15] आउ पासि ।
जा मंदरि जिणु बंदवि[16] णियंतु, ता तुहुं दिट्ठउ सोमालगत्तु ।

---

1. ख. ग. घ. हउं
2. ख. ग. घ. थट्टहं
3. ग. हियय, घ. हियइं
4. घ. अप्पहो
5. क. ख. ग. महो
6. क. हणिउ
7. कुमारस्य ललाटे लग्ननोच्छलितेन पतितः । + क. ख. पाहार
8. क. अवरुप्परु
9. ख. पट्टुव, क. पटुय
10. क. जुम, ख. जुद्ध
11. घ. गहणे
11. घ. कुविउं
12. ख. पाय, घ. पाइं
13. ख. सुरु
14. घ. मिल्लिय, ग. मिल्हिय
15. ख. घ. तुह
16. घ. वंदिवि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हउं तुट्ठउ तुहं साहसि ए वीरु, अवसरि सुमरिव्वउ[1] कहमि धीरु ।
जें हरियउ सो तुहं[2] सत्तु होइ, मइं पुणु चिरजम्महो मित्तु जोइ ।
जइ यहं[3] तुहुं सिरिपुरिधम्मराउ, सुग्गंधिदेसि पसरियपयाउ ।
तहिं दो गहवइ ससिसूरु णाम, करसणि संपायणि जणियकाम .
ता ससिणा रविघरि दिण्णु खत्तु, चोरिउ तहं[4] गेहहु[5] सयलु वित्तु ।
पइं जाणिवि ससि णिग्गहिउ तित्थु, सुरहं[6] धणु अप्पिवि किउ कयत्थु ।
सो ससि जाइउ[7] इहं चंदरोइ,[8] हउं रवि हिरण्णु सुरु णायलोइ[10] ।
इमु[11] भणिवि कुमरु हत्थिहिं[12] गहेवि, खणि अडइं वाहिरि मुक्कु लेवि ।
सइं[31] णिव भवणहो संपत्तु सत्ति, कुमरु वि देसहो पिक्खइ घरत्ति ।
जा गामणयर तडि संचरेइ, को देसु एहि[14] इय मणि करेइ ।

घत्ता—ता पाडिय वुंवउ[15], गहिप करंवउ[16], जाइ लोउ सवु[17] णट्ठउ ।
थिर[18] वियसियणित्तें[19], विम्यिह[20]चित्तें, कुमरें रहि वि सुदिट्ठउ ।।4।।

---

1. ख. घ. अवसरे सुमरेव्वउ
2. ख. त्तुह
3. क. अह
4. घ. तहो
5. क. ख. ग. गेहहो
6. ग. सूरह, घ. सूरहो
7. ग. जायउ, घ. जयउ
8. ख. इट्ठु
9. ख. चंडरोइ
9. ख. हिरणु
10. ख. घ. णागलोइ
11. क. इम्व
12. घ. हत्थेहिं
13. क. सइ
14. ख. यहु, ख. एहु (प्रतिभातिहेतुतवदित्यर्थः ।)
15. ख. पुंवउ
16. क. ख. ग. मुक्क विलंवउ
17. क. सव णठउं, ख. घ. सउणट्ठउ
18. क. ख. थिय
19. घ. ०णेत्तें
20. दिभिय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(5)

बुड्ढत्तणभावें मग्गि थक्कु, ता कुमरें पुच्छिउ पुरिसु एक्कु ।
भो कक्क कक्क[1] पायडिय सोउ, किं देसहो[2] गासइ सव्वु लोउ ।
तं णिसुणिवि थेरउ कोवि चडिउ, बोल्लइ[3] भाउग्र[4] तुहुं गहहु पडिउ ।
जं एहु वि वेयरु[5] णवि[6] मुणेसि, ग्रसगाहें पुणु पुणु पुच्छवेसि ।
इच्छेव[7] ग्ररिंजय गाम देसु, पुरु विउलु ग्रच्छि वहु सिरिविसेसु ।
तहिं **जयवम्मा** णामेण राउ, **जयसिरिकंता** सुह बद्धराउ ।
ससिपह णामेण तहं[8] जाय पुत्ति, णं सयलरूव सोहग्गसत्ति ।
ग्रवरें **महिंद** णामें णिवेण, स विवाहहु[9] मग्गिय गएण ।
णेमित्तिहिं[10] वारिउ दिंतु राउ, जाणेवि महिंदहो तुड्ढ[11] ग्राउ ।
ता भग्गमणोरहु णिउ महिंदु, मेलिवि[12] संवल्लिउ राय विंदु ।
जयवम्मसेणु[13] संगरि णिहत्तु, एव्वहिं पुरवइ[14] विट्टण[15] पहुत्तु ।
उज्जाडिय पुरवर वहु पएसु, तहो भय कंपिउ णासेइ देसु ।

घत्ता—तं कुमरु सुणेप्पिणु, हियइ[16] हसेप्पिणु, विउलणयरि दिसि ढुक्कउ[17] ।
दिट्ठउ माहिंदहु[18] ग्रविणय कंदहु[19], सिविरु णयर वहि मुक्कुउ ।।5।।

---

1. घ. एउ
2. घ. देसहु
3. घ. बुल्लइ
4. ख. भाउव
5. ख. घ. वइयरु, वृत्तान्त इत्यर्थः
6. ख. णरु
7. क. इच्छुज्ज, ख. घ. इच्छुव
8. ग. तह
9. ग. सांवे बाहहुं
10. क. णंमित्तिहिं
11. ख. तुच्छ, घ. तुच्छु
12. ख. घ. मेलवि
13. क. सिण्णु
14. क. पुरवइं
15. ख. विड्ढण, घ. वेट्टण
16. ख. घ. हियइं
17. क. दुक्कउ, ख. ढुक्कइ
18. घ. माहिंदहो
91. ख. घ. कंदहो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(6)

ता दिट्ठउ पुरवरु वलिहि[1] रुद्धु[2], णं चक्कवूहिं अहिवण्णु छुद्धु ।
किंवि[3] सालभित्ति जोवंति[4] वीर, किवि करि कुंभहुं[5] उच्छलहिं[6] धीर ।
किवि चडणि दंति असिवरु गहंति, णं चलियपाण अग्गल धरंति ।
किवि ससिरु पडंतउ संगहंति, वेरिणिहिं[7] धरि अरियणि घाडदिंति ।
किवि णिय उवरज्जु[8] अंतइं किलंति, धाइवि अरि सिरि पासय घिवंति[9] ।
किवि जंतिगोलिकय[10] खंड खंड, तह विहु पायारहु[11] भिडहिं[12] चंड ।
ता कुमरु पोलि[13] सम्मुहं चलेइ, चउरंगु[14] सेण्णु तिणसमु कलेइ ।
जंतहु जंतहु[15] तहो दिण्ण आण. णवि मण्णइ[16] जा ता कर किवाण ।
पभणहिं भो तुव सिरि[17] णच्छि कज्जु जं राय आण भंजहिं अणिज्जु[18] ।
आणालंघणु पुत्तु वि महिंदु, ण सहइ णिरु णायहो[19] तणउ[23] कंदु ।

घत्ता—तं णिसुणिवि कुमरें, वंछिय समरें, ससरु धणुहं उद्दालियउ ।
इह भंजमि आणउ, अणु[21] णिव माणउ[22], णियभुयदप्पकरालियउ ।।6।।

---

1. सेनाभि इत्यर्थः
2. ग. रुद्ध
3. =केचिदित्यर्थः
4. क. जुवंति
5. क. कुंभहो
6. क. उल्लहि
7. क. ख. वेरिंणिदि
8. ग. घ. उयरह
9. ख. पासिव
10. ग. घ. जंतगोलकय (यंत्रगोलकैः)
11. =कोटसमीपे
12. क. भिउडहि
13. घ. पउलि
14. क. ख. सिण्णु
15. ग. घ. जंतहो तहो, जोहहिं
16. ग. घ. मण्णइं
17. =मस्तके
18. ग. अणज्जु
19. ख. घ. णायहु
20. ग. तणउं
21. ख. ग. अरु
22. ख. ग. घ. माणउं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(7)

इम भणिवि जाम संधेइ[1] वाण ता धाइय भड कट्टिय[2] किवाण ।
किवि हक्कमित्ति[3] महियलि लुढंति[4], किवि वेयपवणपेल्लिय[6] पडंति ।
किवि मुट्ठि केवि[6] धणु कोडि पिल्ल, किवि चूरि वि वाणिहिं किय ससल्ल ।
ता धाइउ वलु चंउरंगु तित्थु, सीहु व गुंजारइ कुमरु जित्थु[7] ।
ता वेढिउ[8] णिव सुउ बहुबलेहिं, णं गरुडराउ णवफणिकुलेहिं ।
णं बालसूरु तममंडलेहिं, णं जलण फुलिंगउ तण चएहिं[9] ।
णं हरिकिसोरु कुंजरगणेहिं, णं चरमदेहु[10] कम्महं हरेहिं ।
ता कुमरुधीरुहंकार मेरु, जहिं हक्कइ तहिं दिसि पडइ सेरु[11] ।
वल सायरि मंदरु जिम चरेइ, करिकुंभिकुंभिकरणहिं[12] सरेइ ।
सेणु व चिडिया[13] चंचुहिं हणेइ, वलु सयलु वि विवरं मुहुं कुणेइ ।
ता गलगज्जिवि धायउ[14] महिंदु, पलयब्भहुं[15] रुट्ठउ णाइं चंदु ।
कुमरें संधाणिक्खुरुप्पुदिण्णु, पढमु जि आवंतहु सीसु छिण्णु ।
ता सालसिहरि[16] ठिय णायरेहिं, जेइ कारिउ[17] कुमरु कयायरेहिं ।

घत्ता—जयवम्मणरेसरु, कयदुंदुहिसरु, पुरुवाहिरि णीसरियउ ।
रण रेणु[18] पसंगहु, तहिं कुमरंम हु, आलिंगिवि वज्जरियउ ।।7।।

---

1. घ. संघइ
2. ख. घ. कट्ठिय
3. =हकालमात्रेण
4. क. ढलंति
5. घ ० पिल्लिय
6. ग. मुडकेवि
7. ख. जेत्थु
8. क. ख. विट्टिउ
9. =तृणसमूहैः
10. ख. चमरदेहु
11. =आस्फालनैः
12. घ. ० किरणहिं
13. घ. सिचानइव
14. घ. धाइउ
15. घ. पलयरहीं
16. क. ग. ० सिहर
16. ग. घ. जय
18. धूलि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(8)

णिक्कारणु तुहुं संजाउ बंधु, जं[1] महु वसणहुँ[2] धुरि दिण्णु खंधु[3] ।
अह णिम्मलवंसहं इहु सहाउ, जं परदुक्खहं ट्टु ंति काउ ।
किं मेहह गिरिगण उवयरंति, जं दावाणलु आविवि समंति ।
आइब्बु पयासइ वाउवाइ, कुम्मु वि पुहवीहरु[5] धरणधाइ[6] ।
मेइणि[7] लोयहो[8] सम्मट्टु सहइ, तरुगणि णिय सिरिफलभारु बहइ ।
परकारणि एउज्जमु करंति, किं लोय पासि किं पि वि लहंति ।
ता भणइं कुमरु इहु तुह पयाउ, कय पुण्णहं कहं होही विपाउ[9] ।
ता दुण्णि वि चडिया कुसुम रहे[10], संचल्लिय पुरवरि[11] रायपहे ।
पोरंगण[12] लोयण कमलपंति, णिवडइ[13] तहो उप्परि हरिसवंति[14] ।
किय मंगले णिव मंदिरि पइट्ठु आणंदिय णरवर लोयदिट्ठु ।

घत्ता—तहि मणिमयमंदिरि, मण आणंदिरि, णिव कयभत्ति पइट्ठउ[15] ।
जा केलि करंतउ, सुहु भुंजंतउ, अच्छइ सयल मणिट्ठउ ।।8।।

(9)

अह इक्कहि[16] दिणि ससिपह सहीहिं, महदेविहिं मंदिरि संगईहिं ।
विण्णत्तउ णरवइ सयणरुड्ढु, सामिय किं अच्छहि कज्जमुड्ढु ।
बालत्त जुवत्तणु अंतरच्छ, पुत्तिहिं वड्ढइ[17] भारिय अवच्छ ।

---

1. ख. जें; घ. जिं
2. क. ख. विसणहो; ग, महो वसणहो
3. क. ख. ० कंधु
4. घ. आवेवि
5. ग. घ. पुढवीभर
6. ख. णइ
7. ग. मेयणि
8. ख. घ. लोयहु = लोकस्य संमर्दनम् ।
9. = पापरहित
10. रथे
11. ख. पुरवरे
12. ख. घ. पउरंगण
13. घ. वडइं
14. ग. छत्ति
15. घ. पहिट्ठउ
16. ग. एक्कहि; घ. एक्कहिं
17. घ. वट्टइ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जइयहु लग्गु दिट्टु महिंद-कालु, सो कुमरु मयणगुण[2] लक्खणालु ।
तइयह[3] लग्गु चिंता वच्छरूढ, किं पि वि णिहु पउ साएइ[4] गूढ ।
तहं तत्तु अंगु विरहाण लेण, जहं मुत्तियकण[5] फुट्टहिं खणेण ।
जइ सहियणु णायणं सुभ्र[6] फुसेइ, ता हत्थि दद्धु खणि जलु मसेइ ।
तहो जलयरकुलसंताउ जाणि, वाविहिं जलकेलिहिं कीयहाणि ।
हिम पिंडवि तत्तायसि मिलंति, जे सीयल ते तहिं[7] डाहु दिंति ।
तहं चँदहो सा वीहेइ मुद्ध, जहं दप्पणि मुह दंसणि विरुद्ध ।
तह कोइल वीणा[8] सद्द तट्टु, जह तियहं वि वयणइं दिंति कट्टु ।
तह णीलुप्पल[9] खंडहं तसेइ, जह सहिणह[10] णहु अहिलसेइ ।

घत्ता—पुणु कुमरहु[11] णामें, अमयहु धामें, जीवइ सा सुकुमाल तण ।
तहो रूवहिं लिहियहिं, अहगुणकहियहिं, णिव्वाहइ सारइणि[12] दिण ॥ 9 ॥

(10)

तं णिसुणिवि णरवइ पुलइ अंगु, जयसेणु हक्कारि वि णं अणंगु[13] ।
ससिपह घल्लाविय[14] रयणमाल[15], णं णेहसरल पायवहं डाल ।
वीवाहहो[16] जा उवयरण हुंति[17] , जा णिम्मित्तिय[18] सुह दिणु कहंति ।

---

1. ख. ग., जइयहं
2. सयण०
3. ख. ग., तइय हं
4. क. ख. णाउ इवयेइ गूढ;
5. घ. मोत्तियकण
6. ख. घ. सुय
7. घ. तहों
8. ख. ०वेणा
9. ग. णीलुप्रल,
10. घ. सहिणयणहं
11. ग. कुमरहो
12. ग. सारयणि
13. ख. घ. हक्कारिउ कुमरु विणं अणंगु ।
14. ख. क. घल्लिवि वय.
15. ख. घ.० वरणमाल
16. ख. घ. वीवाहहु
17. ख. घ. होंति ।
18. ख. जा णिम्मितियंसुहुं, घ. जाणे मित्तिय ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ता अजियसेण[1] पयाव पहाणउं, इच्छंतरि[2] अणिणक्कु[3] कहाणउं ।
वेयट्टसेल दक्खिणहं सेणि, रविपुर णामें पुरवरहो[5] खोणि ।
धरणीधउ णामें तित्थु राउ, खेयर सयचूडाचुंवि पाउ ।
सो अच्छइ जाणिय मंदिरत्थु, खेयर सामंतिहिं पालियत्थु ।
पियधम्मु णामु तो[6] बंभयारि, गयणहु[7] मग्गे संपत्तु दारि ।
कोडी[8] कोवीण विहूसि अंगु, सव्वच्छवि मुंडिय[9] उत्तमंगु ।
ता णिवि उट्ठि वि[10] किउ इच्छकारु,[11] ढोइउ[12] सिंहासणु रयणसारु ।
सो पभणइं थिरु वइ सेवि तित्थु, हउं आयउ कारणि तुम्ह इत्थु ।
जइं मुक्कउ घरु परिवारु बंधु, तो णिव गरु अऊ मोहहो[13] पवंधु ।
मइ सुणिउ सुधम्महो मुणिवराहु, तं णिणुणहि णरवइ मुक्कगाहु ।
विउलक्खि णयरि जयवम्मु राउ, भूवलयमज्झि पसरिय पयाउ ।
ससिपह णामें तसु तणिय कण्ण, सोहग्गरासि लायण्ण पुण्ण ।
जो होही तहिं कण्णहिं[15] कंतु, सो चक्कवट्टि तुहु पुणु कयंतु ।

घत्ता—इय खुल्लय वयणिहिं, पयडिय मयणिहि, धरणीधउ मणितत्तउ ।
मेलिवि सामंतइं, वेय चलंतइं, विउल णयरि संपत्तउ ।। 10 ।।

(11)

ताम विमाणिहिं णहयलु छायउ, पंचवण्ण मेहिंहिं णं रायउ ।
ता धरणीधइखेयरणाहें,[16] विज्जामय किय तणु सण्णाहें ।

---

1. क. अजयसेण
2. ख. पच्छंरि, घ. एच्छंतरे
3. ख. अण्णेक्कु
4. ख. वेयट्ठ
5. ख. पुरवरहु
6. ख., ग.—ता
7. ख. ग. गयणहो
8. ख. ग. घ. कुंडी,
9. घ. मुंडिउ
10. क उठिवि
11. ख. इंछपारु, घ. इच्छयारु
12. ख. ढोयउ
13. ख. मोहहं
14. ग. विउल
15. ग. कन्नाहि ।
16. ग. ०धय०,घ. ०धर०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वयणकला विण्णास समज्जिउ, उद्धउ णामें दूउ विसज्जिउ ।
गउ सो जयवम्महो णिव मंदिरि, पारंभिय बहुमंगल सुंदरि ।
जयवम्मह्रो[1] अग्गइं[2] सो जंपइ, दंसण किरणु जुण्हइ धरु लिंपइ ।
हउं दूअउ[3] धरणीधररायहो,[4] अग्गमइं मुक्कल्लिउ[5] बहि आय हो[6] ।
तुहुं अमुणियकुलजाइ सहावहु, परदेसियहो[7] विवाहु करावहु ।
पुणु ससिपह तुहं पुत्तिपहाणी, धरणीधर खगवइणा जाणी ।
ता खगरायहु[8] सइं धुअ दिज्जइ, पइसिवि हठ कारें[9] मालिज्जउ ।
दूय[10] वयणि जयवम्मु पलित्तउ, णं घूमद्धउ सप्पिहिं सित्तउ ।
ता अजियसेणहो वयणु णियच्छिउ, बोल्लिउ[11] तेण दूउ णिब्भच्छिउ ।

घत्ता—रे रे तुहुं[12] दूवउ[13], आउ[14] सिहूवउ, मादिव्वइ षहुं जुग्गउ[15] ।
णियसामिउं आणहिं, काइ वियाणहिं, जो भडवाएं भग्गउं ।। 11 ।।

(12)

तं णिसुणिवि दूअउ पत्तु ठाणि, जहवम्मु भणइ भो कुमर जाणि ।
तुहुं मुअवलु ए विज्जावलिट्ठ, ता संगरि जयसिरि होइ कट्ठ ।
तं सुणिवि कुमरु चिंतइ हिरण्णु, सो संपत्तउ सुरसिरिय खण्णु ।
ता कहइ[16] कुमरु चिंतंन्तु तासु, तं सुणिवि सो वि भासइ सहासु ।
जे असुइ कीड माणुस हंवति, ते सामिय पइं किं पर हवंति ।
जो सगरी महं पइं धरि हणेइ, मो मणु यहँ कहँ संका कुणेइ ।
अह हुंति[17] विज्ज विज्जाहराहं, पइं दिट्ठें सविणासं ति ताहं ।

---

1. ख. जयवम्महु,
2. ग. अगह
3. घ, दूवउ
4. घ. धरणी धय०
5. ख. मोकल्लिउ
6. ख. ०आयहु
7. ख. परदेसियहं
8. घ. खगरायहो;
9. कारिं
10. ग, दूइय०
11. ख. बुल्लिउ
12. क. तुहु, ग. तुहं
13. घ. दूअउ
14. ख. आइ सिद्धा अउ, घ. सिद्धू अंउ
15. ग. जोग्गऊ
16. ताहे केइ; ख. ता कहिउ,
17. ख. होंति,

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इय जा अवरुप्परु वज्जरंति, ता एहि रणतूरारउ[1] सुणंति ।
ता दिव्वत्थहिं पूरिउ महंतु, सुरि रहुणिम्मउ बिउ[2] वाहवंतु ।
आरुहिउ कुमरु मंगलु पवण्णु, सइं संजायउ सारहि हिरण्णु ।
ता णहयलि णं पावसहो[3] कालु, वेमाणमेह पिहि यंतरालु ।[4]
इवलहलिय खग्गविज्जुलरमालु; रणतूरसद्दगज्जिरविसालु ।
सरधोरणिधारा जलु मुअंतु,[5] संपत्तउ खगबलु पुरि तुरतु ।

घत्ता—तं पिक्खिवि खगबलु, छाइय णहयलु, असुरिं[6] रहु संचालियउ ।[7]
सरहस धावंतहं, वाणमुयंतहं, खयरहं गणु पच्चारियउ ।।12।।

(13)

रे खयरहु जसु कण्णाहि ल.सु,[8] सो आइवि ढुक्कउ अम्हपासु ।
गिद्धउ लहं तुम्हहं को विसेसु, जं णहि ठिय जो बहु महि पएसु ।
तं णिसुणि विधायउ[9] खयरसेण्णु,[10] णं जलहि भुवण रिल्लण पवण्णु ।
तातें रहु गयणंगणि चालिउ, कुमरें धणु गुणु करि अप्फालिउ ।
बेढिउ रहिवरु सइं[11] परिवाडिहिं, हक्किउ सुहडु खयर बक्खोडिहिं ।[12]
एक्कु[13] गुयंदह[14] सरगुणि संधइ, सउ ताणइं दहसइ अरिविंधइ ।
इय[15] दिव्वत्थ पहावें सल्लिउ, कुमरें खग बलु सयलु वि पिल्लिउ ।
किवि सविमाणा महियलि पडंति, किवि रहिसूवंता खड हडंति ।
किवि सरपंतिहि सल्लविय सूर, ऊहट्टि जंति संगाम दूर ।
किवि सरसूडिय पाडिय विमाण, णासंति केवि णियलेवि पाण ।

घत्ता—इय वियलिय पहरणु, बहुछंडियरणु, णियबलु पिक्खिवि भग्गउ ।[16]
धरणीधरु[17] धाइउ[18], कोव परायउ, आइवि जुज्झण लग्गउ ।।13।।

---

1. ख. घ. तूरंह
2. ग. णिम्मिउं
3. ख. पाउसहु ग. पाउसहो
4. ग. अंतरालु
5. ख. मुयंतु
6. ख. असुरें रहुं णिम्मिउ
7. ख. संचारिउ
8. घ. यासु,
9. घ, विधाइउ
10. ग. घ.० सिण्णु,
11. 4, ख. घ. सय'
12. ख. ग. बलकोडिहिं
13. घ. इक्कु
14. ग. गइंदह,
15. घ. इह,
16. घ. पेक्खिवि,
17. ग. धरणीधउ
18. ग. धायउ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(14)

पहरंते घरणीघइं चिंतिउ, भूगोयरहो विज्जवलवंतिउ ।
तं चिंतिवि दिव्वत्थ सम्मिज्जय, घणतम णामें विज्ज वि सज्जिय ।
रवि बाणिंहि[1] सा कुमरें खंडिय, ता घण विज्ज खगिंदें मंडिय ।
कुमरें सा बिहु अणिलिं दंडिय, पुणु खयरि फणि वाण पयंडिय ।[2]
तें कुमरें गरु डेण विहंडिय, ता खयरि[3] सविज्ज सवि छंडिय ।
अइ बहुकोव तिमिर-पाराइउ,[4] कट्टि[5] वि खग्गु विमाणहुं[6] धाइउ ।
जा आइवि सो संदणि ढुक्कइ, ता कुमरें कर सव्वलु मुक्कइ ।
उरि णिब्भिन्नउं तिण[7] खडि हडियउ, ण धाइवि कालहु मुंहि पडियउ ।
ता अप्फालिवि तूर तुरंतउ, णयरहो णरवइं मंगलवंतउ ।
णिक्कलियउ जय जयहि भणंतउ, णियहत्थिहिं चाम ढालंतउ ।
ता सुरु सुह वयणेंहि समज्जिउ, कुमरें णिय आवासि वि सज्जिउ ।
हरिसियणायर मंगल पुट्ठउ, सइं पुणु तहिं णयरम्मि पइट्ठउ ।

घत्ता--सुह जो यहं मेलइ,[8] णिरु सुहवेलइ, ता विवाहु संपाइउ ।
कय दिण अच्छेविणु, ससिपह-लेविणु, णिय णयरहो ता आइउ[9] ।।14।।

(15)

पुण्ण मणोरह हरिसिय पियरइं, रोमंचिय वहु सज्जण णियरइं ।
पुरु परियणु आणंद गहिल्लउ, आयउ[10] भेट्टण सव्वु वहिल्लउ ।
ता ताएं णियरज्जिपरिट्ठिउ, मंगलकोडिहिं चारु पहिट्ठिउ ।
ता चिरभवकयपुण्ण पहावें, चक्काउह णामस्स[11] सहावें ।[12]

---

1. घ. वाणेंहि ।
2. क. पयंपइ, घ, पयंपिय
3. ख. खयरेंस
4. क. पराइउ
5. ख. कच्छिवि
6. ख. घ. विमाणहो
7. ख. तेणि
8. ख. मेलए
9. घ. आयउ
10. घ. आइउ
11. ग. णामेण,
12. ख. आवह सालहि मह सब्भावें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चक्करयणु सइं आइवि सिद्धउ सह सिक्कें[1] आरेहिं समिद्धउ ।
सोलह सहसिहिं[2] जक्खिहिं रक्खिउ[3], जिट्ठमास[4] आइव्वु व लक्खिउ ।
सुर असुरह[5] दिढदप्पु मूलणु, मुक्क अमोहु सकुल अणुकूलणु ।
असिवरु अरिसिरि बेणु[6] समाणउं, तेयजलण धूमहु उमवाणउं ।
तहिं जसु लुट्टइ तिणि गुणि कालउ, सिय जस णिज्झरु तिणि सिउ भालउ ।
अरिपाणाणिलु वायलु[7] भक्खइ, कपहुंतु अप्पहु किह[8] रक्खइ ।

घत्ता––कामिणि मणिसिद्धउ, तेय समिद्धउ, सोमसूरजें लिहियउ ।
खणि तिमिरु विणासहिं, वत्थुपयासहिं, वलहं[9] किरण ।
भरसहियउ ।।15।।

(16)

विज्जुलरयणु जल घम्महं वारणु, वारह जोयण आयव वारणु ।
गहिरमहाजल तरणिहिं महियउ, बारह जोयण चम्मु वि कहियउ ।
चूड़ारयणु सुतेय समिद्धउ, णासिय णिसितमु आविवि सिद्धउ ।
हत्थि रयणु णं जंगम मंदरु, गंधयणासिय गयघडसुंदरु ।
दंतमुसल जुउ तसु पडिहासइ, फुट्टियसिर मणिकंतिव दीसइ ।
मणवेयालउ चवलु तुरंगमु, वेयहं तेयहं णावइ संगमु ।
दंडरयणु कुलिसु वत सुसिद्धउ, वज्जसिलाभेयणपडिबद्धउ ।
उवरो हिउ बहुविज्जा महियउ, बहुविह विग्घविणासण[10] महियउ ।
इंदु व सेणावइ अवयरियउ, पवर परक्कम गुणपरियरियउ ।
तिय रयणु[11] विथी गुण संपण्णउ, अय भोयासत्तउ जण मण्णिउ ।[12]
थावरजंगमगेह घडावणु, सुत्तधरणु सिप्पागम जाणणु ।
आयव्वय कर णिज्झइ णिउणउं, गिहवइ जायउ भूसिय भवणउं ।

---

1. घ. सक्कि
2. ख. सहिं
3. क. रक्खियउ
4. ग. जेट्ठ.
5. ख. असुरह
6. क. ख. वेणि
7. सर्प इत्यर्थः
8. गह.,
9. ख. घ. बहल
10. क. बग्घ
11. घ. पणु
12. पंक्तिरियं कपुस्तके नास्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता--इय चउदह रयणिहिं, चिंतादमणिहिं, सो कयत्थु संजायउ ।
ठिय णवहिं णिहाणहिं, बहुधण खाणिहिं, इह सोहइ[1] सत्थायउ[2] ॥16॥

(17)

पंडुव णिहि[3] सवि धण्णइं पूरइ, पिंगलु दिव्वाहरणइं पूरइ ।
छहसमयहं फल कुसुमइं आणिवि कालु समप्पइ वंछा जाणिवि ।
चउभेयइं बहुतूरइं देयइ,[4] संखणिहाणु एम्ब[5] तसु सेवइ ।
सव्व समय सुहउ सरीरइं पोम णिहाणु देइ बहुचीरइं ।
मणिकण याइय घर उवयरणइं, देइ महाकालु वि मणहरणइं ।
माणउ छत्तीस वि दंडाउह, मग्गिउ देह पयासिय अरिवह ।
णेसप्पु वि सयणासण आणइं, सामिउं जारिस णिय मणि माणइं ।
सब्व णिहाणु सत्थु तसु पूरइ, चक्कउ हु चिंताभरु चूरइ ।
छण्णवइ सहस अंतेउरराणी,[6] तसु हूवइं णिज्जिय अच्छराणी ।[7]
वत्तीस सहस सामंतयाहं,[8] सक्कु वि आसंकइ झत्ति जाहं ।[9]
सय तिण्णि सट्ठ सूयार तासु, किंकर तिकोडिणउ[10] मुअइ[11] पासु ।
चउरासिय लक्खइं गयवराहं, तित्तियज्जि गणिज्जहिं रहवराहं ।
कोडिउ अट्ठारह हयवराहं, तिण्णि जि कोडिउ वरधेणुआह ।[12]
बत्तीस सहसवर मंडलाहं, करसणि जुप्पइ कोडी हलाहं ।

घत्ता--इय सिरि परियरियउ, बहुगुणभरियउ, गव्वहं दोसहं[13] मुक्कउ ।
महियलु पालंतउ, पिसुणहणंतउ, जा अच्छइ सुहि थक्कउ ॥17॥

(18)

---

1. ख, सोहेइ
2. क. ख. सच्छायऊ
3. ख. घ. णिहिं
4. क. ढोअइ
5. ख. एम.
6. क. रेण, ख. राणि.
7. ग. राणी
8. क. याह
9. क. जाह
10. ख. घ. णहु
11. ख. मुयइ, घ. मुयइं
12. क. बाहं
13. ख. सव्वभरु, घ. दोसें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ता गज्जिउ एहु दुंदुहिरवेण, वाइउहि सुगंधाणिलुभरेण ।
गंधावउ बरिसहिं घणकुमार, मू वोहारहिं मारुय कुमार ।
सव्वत्तु कुसुम पूरिय वणंतु, वावहिं सुर णहिं जय जय भणंतु ।
संपत्तु सयं पहु तित्थयरु, पडिबोहिय तिहुअण भव्वभरु ।[1]
अजियंजउ सहुं चक्काउहेण, हरिसें वदण चल्लिउ जवेण ।
गउ समवसरणि दिट्ठउ जिणिंदु, बहु भत्ति करण बाउलु महिंदु ।
हरिवीढिणि सण्णउ झाण लीणु, णिम्मलकेवल सुहरसपवीणु ।
करमउलिवि तिपयाहिण करेवि, पंचंग पणामें सो णवेवि ।[2]
अपुव्वहरिसभारे[3] गरिट्ठु,[4] ऊहट्टि वि णर कुट्ठइ वइट्ठु ।[5]

घत्ता—अइ भत्ति थुणे विणु,[6] पूयकरेविणु, तच्चइं जाण ण वंछइ ।
कर जुउ मडलेप्पिणु, विणउ करेप्पिणु,[7] अजियंजउ णिउ पुच्छइ ।।18।।

(19)

इह[8] सामिय भीसणु भवपबंधु, सुद्धप्पहो कहं संभवइ बंधु ।
अव्वेयणु कम्महुं फुडु सहाउ, जीवहो[9] सव्वेयणु णिच्चु भाउ ।
ता भिण्णगुणहं कहं[10] होइ संगु, णहु सुद्धणयणि चित्तहो[11] पसंगु ।
अह जइ बद्धउ कहं जणिय सुक्खु, जीवहो[12] संपज्जइ सुद्ध मुक्कु ।
ता परमेट्ठिहिं सव्वंगवाणि, उल्लसइ सव्व संदेहहाणि ।
हुट्ठउ[13] डपफंदण सासमुक्क, जांयणु पसरणि फुडु वण्णचुक्क ।
दिढपंचभेय[14] मिच्छत्त लीणु, अप्पा बंधिज्जइ दिट्ठि खीणु ।
अप्पा फलिहु व णिरु णिम्मलंगु, आसव सरिच्छु सो धरइं रंगु ।

---

1. ख. सव्वभरु
2. ख. सं णमेवि
3. ख. अणुवम हरिसें०
4. ख. रिट्ठु
5. ख. कोट्ठइं वइट्ठु
6. क. ख. पिणु
7. घ. विणइं णवेप्पिणु
8. ख. इय
9. ख. जीवहु
10. ख. घ. कहि
11. ख. घ. चित्तहु
12. ख. घ. जीवहु
13. क. हुट्ठवउं, ख. हुट्ठउ
14. ग. दिट्ठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जह जह[1] बिवरीयउ हवइ भाउ, तह तह[2] खिज्जइ सुद्धउ सहाउ ।
जहं सच्छ जलए विस पमुह दव्व, पुरुसें उरि घित्तइ हरणहिं सव्व ।
तहं अव्वेयए कम्मइं मलाइं, जीवें लइयइं पीडहिं खलाइं ।
जहं णिम्मलु एहु संभरइ[4] रत्तु, तहं पंचहि देहहिं जीउ सत्तु ।

घत्ता—संसारहु कारणु, दुक्ख-णिवारणु, तहं अविरइ जाणिज्जहिं ।
सा पुणु वारहविह, वहुदोसावह,[5] महजयणेण विवज्जहिं ॥19॥

(20)

अणुवि पणवीस कसायरत्तु, वंधिज्जइ कम्मिहिं दुहु विगुत्तु ।
जहं चारि कसाय पमाण रंगु, तहं जीविवि कम्महं हुइ पसंगु ।
जह पण्णारस जोगेहिं वंधु, पूरिज्जइ सरि तहिं लवणसिंधु ।
इम बद्धउ कम्मिहिं सुद्ध जीउ. सिल भंडि पिहिउ णावइ पईउ ।[6]
ता पच पयारइं भमि चरेवि,[7] चउगइ[8] बहु जोणिहिं ससरेवि ।[9]
ता खिल्ल विल्ल संजोउ वहइ, दुल्लहु मणुयत्तणु कहवि लहइ ।
तत्थवि पुणु जुअ[10] समिलाणएण, हुइ अज्जखंडि पुण्णें कएण ।
पुणु अंधि चिडिय जोएण तित्थु, सुहकुल जाई सुव हुइ कयत्थु ।
ता परसेवा दालिद्ददद्धु,[11] हिंडइ घरवासहो पासि बद्धु ।
तहिं हुं तहो जइ हुइ काललद्धि, जइ भव्वत्तणु संलहइ सुद्धि ।
जइ कम्म गंठि सभेउ सिद्धु, तो कहवि कहवि सम्मत्तु लद्धु ।
तं लद्धु[12] पुणवि जेइ वमइं कोइ, तहु अह महु को उवमाणु होइ ।

घत्ता—जइं पुणु दिढु[13] सद्दंसणु, दोस णिहंसणु, गुण जुत्तउ पडिवज्जइ ।
ता कमि किसियंतउ, गाढमुअंतउ, कम्म पडलु णिरु झिज्जइ ॥20॥

(21)

इहं जहं[14] जहं तुट्टइ कम्पासु, तहं तहं अप्पा पयडइ पयासु ।

1. क. जहं जहं
2. क. तहं तहं
3. ख. जहिं
4. ग. संझाइं, घ. संझाए
5. ग.० बहु
6. ख. पइउ घ. पडीउ
7. ख. चरेइ
8. क.० गहि
9. क. संभरेवि
10. ग. जुय
11. क. दघ्र
12. क. लहि, वि ख लहे
13. ग. दिढ्
14. घ. इय

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ता दव्वाइय सामग्गि लहइ, ता दुद्धर चरणहु भारु बहइ ।
ता हणिवि घाइ कम्महं विपाणु, उप्पाइवि केवलु सुद्ध णाणु ।
इय हणिवि सयलु संसार दुक्खु, जीवहो संपज्जइ राय मुक्कु ।
तं णिसुणिवि अजियंजय रायहो, संसारिय सुह जाणिय विरायहो ।
पुत्त कलत्त मोहु ऊहट्टिउ, मणु णिव्वेयहो झत्तियपयट्टिउ ।
णिम्महिय सयल संसार दुक्खु, जिणपाय मूलि संगहिय दिक्खु ।
तेरहविहु चरणहु धरिउ भारु, पालइं बारह संजमहं सारु ।
बारह विहु दुद्धरू तउ चरेइ, इय कम्मपास छिंदणु करेइ ।
जियसेणि गहिय सावय वयाइं, खाइय सम्मत्त समं कयाइं ।
ता वंदिवि जिणु अणु पियरपाय, जियसेणु भणाइं भो ताय ताय ।
पइं साहु-साहु आयरिउ चरणु, जं जिण वयणहं आएसु करणु ।
जे सुणि वि धम्मु ण वि संगहंति[1], ते चंपा पुरि सुव णर हवंति ।
इय णिरु भणेवि णिय णयरु पत्तु, मणिहरिस सोय संवेयपत्तु ।

घत्ता—ता जिणपय णमणिहिं, बहु सुह करणिहिं, सो दिणाइं[2] अइवाहइ ।
चउविहि वहुदाणइं, कय गुणि माणइं, सावयत्तु णिव्वाहइं ॥21॥

इय सिरि चंदप्पहचरिय महाकइ जसकित्ति विरइए
सिरि सिद्धपाल सवणभूसणे, जियसेण सायारधम्मलाहो णाम
चउत्थो संधी समत्ता ॥ 4 ॥

1. घ. आयंरति
2. घ. दिणाणि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचमो संधि

(1)

ता चक्काइय रयणइं पुज्जिवि, सयलवलहं[1] सामग्गिसमज्जिवि ।
पुव्व दिसिहि[2] पयाणु[3] वियण्णउं[4], वज्जिय दुंदुहि सद्द[5] रवण्णउं ।
चक्करयणु अग्गइ थिउ वल्लइ, खंधा वारु पुट्ठि तसु हल्लइ[6] ।
जंतउ जंतउ पुव्व समुद्दहो, तीरि पराइय[7] सलिलरउद्दहो ।
तडहु तइं जोयण चउवीसहिं, मागहं देवहं भवणइं दीसहिं ।
वारह जोयण चम्मु पसारिउ, तहो उप्परि रहवरु संचारिउ ।
वारह जोयण वाणु पमुक्कउ, मागह भवणहो जाइ वि ठुक्कउ ।
जा णामंकिउ तहिं[8] सरु दिट्ठउ, ता गलगज्जइ[9] मागहु रुट्ठउ ।
मंतिहिं सिक्खिवि सेवकराविउ, मणि पाहुड तेसणि वियराविउ[10] ।

घत्ता—मागह[11] करु लेविणु, विणइ ठवेविणु, दक्खिण दिसि सो वल्लिउं ।
जलणिहि तडि आवे विणु, वाणुरए विणु,व त्तणु दंडिवि मिल्लिउ।।1।।

(2)

तह[12] पच्छिम परिहासु वि साहिवि, वायव मिच्छहं करु उग्गाहिवि ।

---

1. ख. बलह, घ. ०वलहिं
2. ग. ०दिसेहिं,
3. क. ख. पायाणु,
4. ख. विइण्णउ, क. वियण्णउ,
5. ख. सद्दु,
6. ख. हल्लइं,
7. क. परायउ
8. क. तहि,
9. क. गज्जइं,
10. व. वियरायउ,
11. घ. मगह,
12. ग. तह ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोणावइ हरि रयणि चडाविवि, ढंडें तिमिसह दारु फडा विवि ।
अद्धवरिसु गुहदारियव सेविणु, ता उल्हाणिय मुहिपइ सेविणु ।
खडियरयणि ससिसूर लिहेविणु, एयारह दिणविट्ठि सहे विणु ।
छत्त अजिण[1] संपुडि वलु णेविणु[2], वायकुमारिहिं मेहजिणे विणु ।
मिच्छखंड सामिय दंडे विणु, वसुह[3] गिरिहि णियणामु ठवे विणु ।
णियपुरि सत्तण गव्वु मुए विणु, गंगादेविहिं अग्घु गहेविणु ।[4]
ईसाणहं मिच्छहं करु लेविणु, ---------------------------------- ।
अण्णवि अणमिय रिउ उप्पाडिवि, वेयट्टहो खयरहं पइ पाडिवि ।

घत्ता—गुहदारु उघाडिवि[5], दंडे फ'डिवि, गंगसुत्तु जहिं पत्तउ ।
तहि मग्गिसरे विणु, पुहवि जिणे विणु, णियणायरहो संपत्तउ ।।2।।

(3)

साहिवि छक्खंडइ चक्कणाहु, जा अच्छइ जयसिरि सुहसणाहु ।
ता सोसिय विरहिणि रुहिरमासु, संपत्तउ तित्थु वसंत मासु ।
हिमदड्ढ सयल उववणहिं कालु, ऊसरिउ झत्ति[6] हेमंतु कालु ।
वालाणंदिति णिय अहरि मयणु, सव्वत्थ वि संधइ बाण मयणु ।
उल्लसहिं सरोवरि चारुकमल, णिच्चल णिवसइ सइं जेसु कमल ।
मंजरि पिंजर पिच्छि वि रसाल, हा पहिय मरहिं विरहिं रसाल ।
कोइल[7] हक्किय तियमुयहिं माणु, जाणिवि दुस्सह कामहु[8] पमाणु ।
मलयाणिलि सुरहिउ सव्वुलोउ, मल्लोरय पिंजरु णहविलोउ ।

---

1. ग. घ. अयण,
2. क. ख. देविणु,
3. क. ख. वसुहं,
4. क. ०महेविणु,
5. ग. उघाडेवि,
6. क. ०मत्ति
7. ग. कोयल०,
8. क. कामहो ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिय पय ताडिउ विसयइ असोउ, कामिणि कुट्टिउ सव्वु वि असोउ।
दावाणल सिरिदरिसहिं पलास, णं कामणिहय पहियहं पलास।
महु[1] गंडसहिं फुल्लंति वउल, तियमुत्तुवि वंछहिं विसय चवल।
दिसि णारि गहहिं वहु कुसुमवासु, महुमासु सयल विसयहं णिवासु।

घत्ता—पाडल विल्लहिं[2], वियसिय फुल्लहिं[3], मज्झु गहिवि अलि गायहिं।
णावइ रइकंतहो सिविरि चलंतहो, काहल संखइं वायहिं ॥3॥

(4)

ता अंतेउरु[4] वहुपरियरियउ, णरवइ केलीवणि संचरियउ।
कुसुमेक्कंतु[5] तित्थु वणि[6] दिक्खइं[7], सरवरि सणु[8] विसमेसु व सिक्खइ[9]।
के पइ रय रासिहिं वणु धवलिउ, मयण णिवहु कित्तिहिं णं सवलिउ।
अलिउलि अंधारिउ तहिं वणंतु, णं मयण मोहु पच्चक्खु हुंतु।
कामिणि कुल तहिं कुसुमइं गहंति, णं कामवाण कोविं[10] खुडंति।
कुवि वणमाला णियउरि करेइ, णं कामगेहि तोरणु भरेइ।
कंतें णव वहु चुंबिय णिकुंजि, कंकण चुंबावहि माणु[11] भंजि।
कुवि सिर उप्परि पोमुभ माडइ, णं वयण होऊ[12] यारणि पाडइ।
कासुविमुहं तडि अलिउलु भमेइ, णं राहु विंवु चंदहु कमेइ।
कासु वि कंते[13] किउ गुत्तभेउ, णं वज्ज पहारें[14] गुत्तभेउ।

---

1. क. ख. ˉमुह०,
2. क. विल्लवि, ख. वेयल्लहं,
3. क. ०हि
4. क. तातेउर०,
5. ग. ०मक्कंतु,
6. क. वणु,
7. घ. देक्खइ,
8. ख. होउ
9. ख. सिखइ,
10. क. ख. घ. कोवें,
11. क. मोणु,
12. ख. होउ
13. ख. कंति
14. ग. पहाव।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहं माणजलणु संजलिउ झत्ति, जहं मयण बाण तत्तिय धरत्ति ।
किवि चंपयमाला सिरि करेइ, णं कामजलण जालिहिं जलेइ ।

घत्ता—इय वणि वियरंतहं, केलि करंतहं, णारिहिं समु संजायउ ।
धणरमणि लुलंतउ, से उजणंतउ, सइं पडिकंतु व श्रायउ ।। 4 ।।

(5)

ता णरवइ[1] सर सम्मुहुं चल्लिउ, महु महु मलयाणिलि पिल्लिउ[2] ।
घणसेलहं भारेण कणंतउ, श्रवला जणु खिज्जइ पहिजंतउ ।
काहिवि पहि रसणा बुंवावइ, मज्झु तलिणु तुट्टंतु व भावइ ।
घण घुव्वहं[3] कि[4] हं भारु सहेसइ, पच्छा दूसणु महो जणु देसइ ।
णं पढमु जि सलिलें तलि णंगी, धाइवि सेयमिसिण श्रालिंगी ।
जो दहु पुरिस पमाणउं दिट्ठउ, सां तिय णाहिंहिं सयलु पइट्ठउ ।
चक्कजुश्रलु[6] जलु छंडिवि णट्ठउ, जउ थण कुंभहं विच्छरु दिट्ठउ ।
दिक्खिवि ताहं ललिय गइ संचरु, हंसा णट्ठा मिल्लिवि[7] सरवरु ।
बहु घण सेलहिं सो सरु महिउ, श्रण्णु वि पाय पहारिंहिं णिहियउ ।
तहं हासु व सो[9] फेणु जि दरिसइ, णिम्मलु श्रवरुवि कहवि ण विरसइ ।
जलि णय णहि श्रंजणु पक्खालिवि, कमलिहिं सहुं णिह साविय मेलिवि ।
जइ जावइ[10] रसु पायहं फिट्ठउ, तो रत्तुप्पल सोरहु[11] उट्ठउ ।[12]
जलि श्रलि सहुं केयइ पत्तु तरइ, णं धीवरि चोईय णाव तरइ[13] ।

---

1. क. णरवरु
2. ग. घ. पेल्लिउ,
3. ख. ०घुंव्वहं, ०घ. धुवहं
4. घ. कह
5. क. ०सेय०,
6. ख. ०यलु०,
7. ख. मेल्लिवि,
8. ख. तह
9. क. जो ।
10. ख. जावय,
11. ख. सोहगु
12. ख. उहट्ठउ,
13. क. ख. ०चरइ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—इय जा जलि कीलइ, परिसमु मीलइ, णरवइ तियगणजुत्तउ ।
ता पविरल[1] किरणउं, जग अाह रणउं, पच्छिम दिसि रवि रत्तउ ।। 5 ।।

(6)

ता जलकेलि मुअवि[2] पुहईसरु[3], गउ गेहहो बहु कामिणि परियरु ।
सूरु वि दिणंति अत्थवणिपत्तु, सो मूढउ जो इह गव्वजुत्तु ।
रविरहहो तुरंग मवेय पुण्ण, णिसि मुह[4] सेरिह सिंगब्भभिण्ण[5] ।
ता रुहिर पवाहिं[6] सिंधु जणिय,[7] लोए[8] सा संझा णाम भणिय ।
छुडु सूरें[9] जलणिहिं झंादिण्ण, तावहिं तारा सीयर पवण्ण ।
बहु उवयारहो सुमरयणि[10] थक्कहिं, रवि संताव[11] लइय फुडु चक्कहिं ।
तं[12] रवि संझइ[13] सीयलु जायउ, चक्क मिहुणु पुणु ताव परायउ[14] ।
धवलु विकालु विइक्क[15] वियारऊ, मुक्खहो रज्जु व ठिउ अंधारउ ।
तम भरु दीवय णिरु[16] उरि पिवंति[17], अम्मं[18] मुव कज्जल मिसि वमंति ।
पोमिणि मीलइ पिरु पोमणयण, मुच्छिज्जइ पियविरहिं ण कवण ।
उरि जलिय काम उज्जालएण, सयरिणि पिय धरु वव्वहिं सुहेण ।

घत्ता—ता तम भरु णट्ठउ[19], राय गरिट्ठउ, पुव्वसेल सिरि दीसइ ।
कई[20] खवणुं व हासइ, मुवगु पयासइ, माणिणि सिक्खा सीसइ ।। 6 ।।

---

1. ग. ०रल,
2. ख. घ. मुएवि,
3. क. ०वीसरु,
4. ग. घ. मह,
5. ख. घ. सिंगग्गभिण्ण,
6. ख. बाहें,
7. क. मिलिय,
8. ग. लोएं
9. ख. सूरिं,
10. सुरमणि,
11. ख. ०संताव,
12. खां तिं,
13. ख. संझा, क. सं झइ,
14. ख. पराइउ,
15. विऐक्क,
16. ग. णिरु
17. क. घिवंतु,
घ. पियंति ।
18. म. हम्मं
19. क. कय,
20. पायं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(7)

पुव्वंगणु पढमु जि आलिंगी, पिच्छि वि णिसिता कोवि पसंगी ।
जावय लित्तें पाएं[1] हणियउं, तें कारणि ससि रत्तउ जणियउं ।
काम किरा डहं ससि जाणपत्तु, गयणयल जलहिं संचरणिपत्तु ।
तम भरु जं ससि णिम्मलु भक्खइ, उरिठिउ[2] तं जणु लंछणु पिक्खइ ।
महु अरि ससि जिप्पइ तियमुहेंण, इय चिंतिवि तमु कवरी छलेण ।
तहो[3] पिट्ठणि सण्णउं चंदुलेवि, कुसुमच्छलेण ससि किरण केवि ।
कइरव वणि भमरा रुणु[4] झुणंति, ण ससि हयतमबंधव रुवंति ।
चंदिणि सयल भुवण तलु धवलिउ, हरि सियमयण हासि णं सवलिउ ।
सयरणि कडक्ख तत्तहिं, सरेंहिं ससि अमिय कुंभु भिण्णउं[5] खरेंहिं ।
ता किरण दंभि पीयूस विद्धि, पझरइ धवल तें हूअ सिद्धि ।
तिय माण सेल दारट्ठ[6] पुण्णु, ससि वज्जाणलि तें करि वि चुण्णु ।
ता धवलिउ गयण[7] कुविंदि लोउ, अण्णहं कहं एहु पयासु होइ[8] ।

घत्ता—इय पिक्खि वि चंदिणु, मण आणंदिणु, कामिणु जणु सण्णज्झइ[9] ।
पारंभिउ मंडणु, जगमणु दंडणु, कंत चित्तु जिं[10] विज्झइ[11] ॥ 7 ॥

(8)

हरियंदिणि[12] किवि लिंपंति[13] अंगु, णं विसि पाइय णियसर अणंगु ।
मुहिं एण णाहिं वल्लीरयंति, णं काम भुवण जुयलि वि लिहंति ।
किवि हारावलि णिय गलि कुणंति, णं मुह ससि सेवइ उडुहं पंति ।
किवि रमणि धरहिं मेहलहं माल, णं कामहो मंदिरि तुंगसाल ।

---

1. पायं
2. ख. उरिविउं,
3. ख. घ. तहु, ग. तहि,
4. घ. ०जणु,
5. ग. भिन्नउं,
6. ख. ०रट्ट
7. क. ख. मयण,
8. क. ख. घ. ख. होइ
9. ख. ०मण इज्जइ,
10. ख. जि, घ. ग. जें;
11. ग. वज्झइ
12. ख. ०दणु, ग. दणि ।
13. क. लंपंति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहु अंग कंति सारिच्छ चीर, तहिं पहिरहिं णिरु सुरहिय सरीर ।
ता कालायरु[3] धूमच्छलेण, णं विरहु दुक्खु तियणु मुएण ।
सो सिंगारहुं भरु तहं[2] जायउ, जें कामु वि कामें सुपराउ ।
ता पुहवीसरु[3] तिय णु विलसइ, भमरु व पोमि पोमि आवासइ ।
सेविवि सेविवि काम पलित्तउ, ता तिय रयणहो धरि संपत्तउ ।
जा सयल काल कामें पलित्त, जा बहु कालेण वि जरइ वत्त ।
जा संखणाहि सारिच्छ जोणि, जा णिरु पंचिंदिय सुक्खखोणि[4] ।

घत्ता—तहिं[5] सुरइ[6] पसंगिउ, वहु सुहि अंगिउ, णिद्दा सुहु किरणाणइं ।
ता दीव धुणंतउ, सेउ हणंतउ, सिसिराणिलु रइ आणइं ॥ 8 ॥

(9)

णिय बसु परिवार कलाइ मुक्कु, जं राया किर अत्थव गिरि ढुक्कु ।
तं कइरवदुह मीलंत तुंड, अलिकुल गिलंति णं रिसहं खंड ।
तम भिव्व व जे णिसि कमल कोस, पइ सिवि अलि लुक्कहिं[7] जणिय तोस ।
ते कुक्कुड रव काहल सुणेवि, पीसरहिं सूरु आवउ भुणेवि ।
छुडु तम तक्कर णासण पइट्ठु, पुव्वंगण उट्ठइ[8] रत्तघट्ठु[9] ।
संझा[10] विद्दुम षणु विच्छइ, रविविंबु पक्वफलु णं धरइ ।
मूईहु अल्हिक्कहिं घूअ गण, णं धम्म विवज्जइ णरवर पिसुण ।
रइ घर जालिहिं रविकर विसंति, णं तत्त मयण णाराय इंति ।
जिण भवणि[12] रसहिं पाहाय तूर, णं भउ हक्कहिं सम्मत्त सूर ।

---

1. क. ख. कालायरु,
2. ख. सो सिंगारहु, ग. सो सिंगारभारु तहो
3. ख. पहवी,
4. ख० ०खेणि,
5. घ. तहे,
6. घ. सुरय
7. ख. अलिल्हुसहूं,
8. छ. घ. उट्ठह,
9. ख. घ. ०धट्ठ
10. ख. संभा०
11. ख. अल्लिक्कहिं,
12. ग. भवण ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—चूरिवि पय भारें, दरिसिय सारें, मंसहं पिंडु व मुक्कउ ।
मल रुहिर गलंतउ, हड्डुललंतउ, मणु आवय[1] वहिं चुक्कउ ॥10॥

(11)

तं पच्छिवि[2] णरवइ[3] चिंताविउ, दुक्ख जलण जालहिं संताविउ ।
हा संसार जलहि भीसावणु, मणुयहं[4] णडउव[5] णिरु णच्चावणु ।
तं हउं जगि णहु किं पि ण[6] देक्खमि[7], मणुय मरणु जं किरणहु लक्खमि ।
जेण वि जीवइ तेण वि मरेइ, ता अण्णहु किह णहु भउ धरेइ ।
दुहि वुट्टुवि णहु वेरग्गि जाइ, जाणिवि जाणिवि णहु तच्चि ठाइ ।
बहु गेह कज्जि[8] गहिलिय मणेण, जमु पत्तु वि णवि दिट्ठउ जणेण ।
पावहु णहु वीहइ विसय सत्तु, बुज्जविउ ण वुज्जइ मोहरत्तु ।
जइ[9] कोई[10] दयावरु कहई तव्वु, तं णिसु णिवि णउ मणोइ सव्वु ।
जीवहु[11] णिय देहु वि वेरि ठाणि, मूढउ भवि णिवडइ अप्पु जाणि,
जहिं देहहु किरपरि सुसरुउ[12], को किर संपिक्खइ तासु रूउ ।
णारी करंकि[13] णरु काउ गिद्धु, जमि पारद्धिए[14] वाणेण विद्धु ।
सइं जं तउ सिरि वउ देइ दुक्खु' पढमु जि मुक्कउ पुणु जणइं सुक्खु ।
ता हउं णिच्छउ पवहं करेमि, भव कारणु सयलु विपरि हरेमि[15] ।

---

1. क. आवइ
2. क. ख. ग. पिच्छवि,
3. घ. णरवरु
4. क. ख. मणु वहुं,
5. क. ख. णडयउ
6. क. वि
7. क. दिक्खमि
8. क. कज्जि०
9. क. जय
10. क. को वि
11. क. ग. जीवहो
12. क. सत्तुउ, ख. सरउ
13. क. कण्णकिं, ख. करेंकि
14. घ. पारद्धी
15. क. हरेत्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रवितेय पयासिय घरपएस, सव्वनछवि गासिय तम असेस ।
ता मंगल तूरहिं हरिणम णिदु, उट्ठिउ पुहईसरु विगय तंदु ।
किय सयल पहायहु णिव्वकज्जु, ताहं वि पहिली किय देवपुज्जु ।
ता कणयरयणि आसणि वि इट्ठु, सहमंडवि इंदु व णरहिं दिट्ठु ।

घत्ता—तावहु सामंतहिं, अण्णु विमंतिहिं, सिरुधरलाइ वि वंदियउ ।
किय अवसर धवणिहिं, सुमहुरवयणिहिं, कय वंदिय णिहिं णंदियउ ।।9।।

(10)

ता जयकुंजरु सेवय आयउ, णं अंजण गिरि चलण परायउ ।
दीहरघोर सुवद्दुलहत्थउ[3], अइ गुरु कुंभि समुण्णइ[1] मत्थउ ।
पविसद[2] सणु महु पिंगल लोयणु, आयंविर णहु वंक पलोयणु[3] ।
सत्तिहिं[4] ठाणिहिं मउ वरिसंतउ, णिय छाया बिंबि विरु संतउ ।
दिग्गय वलु णिव मणि चिंतंतउ, उह दिसि फुट्ट सहसणिह[5] दंतउ ।
कर सीयर भरिधर[6] सिंचंतउ, कुंभिय मंतरयण णं दिंतउ ।
पयभरि कुम्मपुट्ठि चूरंतउ, रणकेली विणु णिरु झूरंतउ ।
विक्खिवि णिव पडिकाक्खड विक्खिय, धाइय करि दमणइं जिहिं[7] सिक्खिय ।
कर पिंछइ कुवि णिह णंइ पुरवरि, तहं कुडि धावइ जा कोवहं भरि ।
ता[8] अण्णिक्कु वि आरी घायहिं, पुत्तिहिं धाइवि खुंचइ पायहिं ।
तातहो पुट्ठि चलइ जा करिवरु, पासिहिं धाइवि सहुं णिहणइं कुवि णरु ।
इय तिहिं जा सो करि खिल्लाविउ, णिब्भच्छण वयणिहिं वुल्लाविउ ।
तातिं कहत्रि इक्कु णरु गहियउ, पायधरिवि[10] भूमी सहुं णिहियउ ।

---

1. क. समुन्नइ,
2. क. कविसद,
3. क. लोयणु
4. ख. अट्ठिहिं,
5. ए. सहसणि
6. घ. लरिधर,
7. क. घ. जहं, जिहिं
8. क. तो
9. क. आरीय, घ. यारी
10. ग. पाइ० धरिवि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—इय जाणिवि[1] चिंतइ, उवसमवंतइ, पुहवीयसरु सह संठियउ ।
ता वि णमंतउ, इय पभणंतउ, वणवइ[2] दारिपरिट्ठिउ ।।11।।

(12)

देव देव मुणिवरु वणि[3] आयउ, गुणपहु णामें जग विक्खायउ ।
पंचमहव्वय भरणिव्वाहणु, पंचाणुव्वय भवियहं साहणु ।
पंचेंदियदारहं[4] कयसंवरु, पंचयणाण पयासिहिं[5] दिणयरु ।
पंचहं णिग्गंथहं जो उत्तमु, पंचहं परमिट्ठिहिं जे किउ णमु ।
पंच सरीरहं जो मिल्लहण[6] मणु, भावहं पंचहं जाणइ लक्खणु ।
पंचहं मिच्छत्तणहं[7] जो णासणु[8], सज्झायहं पंचहं परिपोसणु ।
समिदिय पंच वि णिम्मल पालइ, पंच वि अत्थि काय णवि चालइ ।
पंचहं जीवसमासहं रक्खणु, पंचासव जाणणि सुवियक्खणु ।
पंचाचारु जु णिरु संचारइ, पंचवाण जम्मु वि संहारइ ।
पंचहं मेरुहिं जो जिणवंदइ, पंचम गइ सुहरसु अहिणंदइ ।
पंचाणुत्तर सुरहिं[9] जु पुज्जिउ, पंचहं मिच्छहं जणु जें वज्जिउ ।
थावर पंचहं जो दयवंतउ, णिद्दा पंचउ जें णिरु जित्तउ ।

घत्ता—तं णिसुणिवि णरवरु, कंपा वि विसरु, अप्पु सप्पुण्णउं जाणिउ ।
अंगहु आहरणहिं, पसरिय किरणहिं वणमालिउ सम्माणियउ ।।12।।

---

1. ख. घ. जामणि
2. घ. वणयरु
3. ख. घ. वणि मुणिवरु,
4. क. दारह,
5. ग. पयासिइ
6. घ. मिल्लण
7. ग. घ. मिच्छत्तहं
8. ग. घ. तासणु
9. क. ०सुरहें

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(13)

ता णिउ गउ वणि दिट्ठउ मुणिंदु, तहो परियरि दिट्ठउ मुणिहिं विंदु ।
दो दोसिहिं[1] मुक्कउ गुण महंतु, दो मुक्खहिं णिरु णिम्मलउ हुंतु[2] ।
दो[+] तवि संताविय किसिय गत्तु, दो बंध गाढ[3] बंधणहिं[4] चत्तु ।
दो णिज्जराइं णिज्जरइ[5] कम्मु, दो मंजमि[6] पालइ परम धम्मु ।
दो संगइ जेण पढमेण मुक्क, दो गुत्तकम्म[7] बंधणहिं चुक्कु ।
दो भेयउ पुग्गलु[8] जो मुणेइ, दो सिद्धहं[9] जो वंदण करेइ ।
दो वेयणीउ जो फुडु खवेइ, दो भेउ धम्मु जो वज्जरेइ ।
दो सीलहं जो संगहइ भाउ, दो जीवसमासहं अवइ काउ ।
तिहुं अप्पहं जो जाणइं सहाउ, तिहुं सम्मत्तहं बुज्झेइ भाउ ।
तिण्णिवि संवर[10] जसु फुडु हवंति, तिण्णि वि वेयइ[11] जसु खयहो जंति ।
तिण्णि वि गुत्तिउ जसु गाढयंति, तिण्णि वि मूढइं जसु अवसरंति ।
तिण्णि वि गुणत्रय जो जणि कहेइ, तिहुं जोयहं जो णिब्भरु सहेइ ।
कालत्तउ जसु पच्चक्खु भाइं, लोयत्तउ कर आमलउ णाइं ।
जो तियगारव[12] छाया विमुक्कु, जो तिय सल्लइं उक्खणणि ढुक्कु ।
तिहुं दंडहिं जो उद्दंडकाउ, तिहुं सुद्धिहिं जो सुद्धउ सहाउ ।

घत्ता—इय पिक्खिवि मुणिवरु, बहु गुण गण हरु, णरवइ पायहिं पडियउ ।
सुद्धय णिय भावें, वियलिय पावें, णं गुण सेठिहिं चडियउ ।।13।।

---

1. ख. =रागद्वेष इत्यर्थः, 2. ख. होंतु,
3. =पुण्यपाप संसारीक बंध इत्यर्थः,
4. ख. बंधणहे, 5. =सविपाक अविपाक निर्जरा,
6. =इंद्रिय प्राण संयम, 7. =उच्च नीच गोत्र,
8. =स्कंध-परमाणु, 9. =सकल-सिद्ध निकल-सिद्ध,
+. =बाह्य-आभ्यंतर,
10. =मनवचन कायसंवर,
11. =स्त्री, पुं नपुंसक,
12. क. गावर०, = रस—ऋद्धि—तप इति त्रिगौरव—छाया ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(14)

ता णरवइ घुइ वइणिहिं भासइ, अप्पहो पावतिमिरु णिण्णासइ ।
अज्जु मज्झु लोयण कय पुण्णइं, अज्जु मणोरह मुहु[1] पडिपुण्णइं ।
अज्जु जि सहलउ महो मणुय जम्मु, अज्जु जि महु णट्ठउ घोरकम्मु ।
अज्जु जि महु[2] चिंतामणि करत्थु, अज्जु जि मुहो पुरिसहु तुरिउ अत्थु ।
अज्जु जि भवसायरु जाणु मेत्तु[3], अज्जु जि मइं सव्वहं सारु पत्तु ।
ता सामिय फेडहिं भव विसाउ, महु दिक्खदाणि किज्जउ पसाउ ।
तुहूं[+] करुणा सायरु गुण महंतु, मइं रक्खहिं रक्खहिं दुहसहंतु ।
तं णिसुणिवि मण[4] पारिक्ख हेउ, मुणिवरु जंपइ पयडिय विवेउ ।
भो णरसामिय सोमालयत्त, खर भारु सहंति न कमलपत्त ।
जद्दरु[5] णु सहइ कक्करहं मुट्ट, कच्चहं[6] कुंपउ ण[7] सहेइ चुट्ट ।
तुहुं[8] सिरसकुसुम सोमाल देहु, जिण दिक्खा पुणु बहु दुहहं गेहु ।
जं हरियंदण[9] रसपंकि खुत्तु, तं चियरय भरि कहं[10] लुठइं[11] गत्तु ।
जो हंसतूलि पल्लंकि सुत्तु, तहो थंडिलि कहं लग्गिहइ चित्तु ।

घत्ता—इय[12] बहु सिरिभोयहिं, णिह णियसोयहिं[13], जो णिरु सुक्खइं माणइं ।
सो दुक्खहं मंदिरु, णयण असुंदरु, अप्पउ तउ किहं[14] आणइं ॥14॥

(15)

तं णिसुणिवि पभणइं धरणि णाहु, तवयरण[+] गहणि णिब्बद्ध[15] गाहु ।
सामिय सच्चउ महु भाइ सुक्खु, पुणु गुरु अउ णरयहो तणउं दुक्खु ।

---

1. ख. ग. मह्रु
2. क. मुहु,
3. क. मित्तु
4. क. मण०
+. क. तुहुं
5. =जीर्णवस्त्र इत्यर्थः ।
6. क. कच्चहु
7. क. काचसु,
8. क. तुह
9. क. ०अंदण
10. क. किहं
11. ग, लुढइं
12. ग. अय
13. क. सोहहि
14. ख. किह, घ. कहं
+. तवचरणि
15. ख. णिब्वहइ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कत्थवि वंदरिण लोलेइ पिंडु, कत्थवि अवगाहइ[2] पूय भंडु ।
कत्थवि जीवहो चामर ढलंति, कत्थवि ताता[4] मुग्गर पडंति ।
कत्थवि रयणासणि सुहणि बिट्ठु, कत्थवि णव हत्थिय सूलि दिट्ठु ।
कत्थवि आलिंगहिं हरिणणेंत्त[5] कत्थवि डायणि घुट्टंति[6] रत्त ।
कत्थवि जयवारण सिक्खियत्थु[7], कत्थवि खर[8] चडियउ बिल्लमत्थु ।
कत्थवि सुकविहिं पयडिय गुणेहु, कत्थवि हाहाकारेण सोहु ।
कत्थवि रूवें जित्तउ अणंगु, कत्थवि कुट्ठें सडि पडिउ अंगु ।
इय बहु भेएं संसारि णडिउ, हउ[9] भमिउ[10] कम्मबंधेहि जडिउ ।
इय भणिवि कंठ कंदलहु हारु, उत्तारिवि णं णिय रज्जुभारु[11] ।
जिय सत्तणाम णियणंदणासु, आइच्छिवि गलि घल्लियउ तासु ।
जा विंभिय किंपिवि भणहिं मंति, ता केसभारु उप्पाडि झत्ति [12] ।
आहरण कत्थ परि हरिवि सव्वु, तवयरणु गहिउ परिपालिय गव्वु ।

घत्ता—ता मुणिवर इंदें, सिव सुहकंदें' चरणहो सिक्खा दक्खिय ।
विणएण गहिंप्पिणु, करमउ लेप्पिणु[13], तेण वि सा सवि सिक्खिय ।।15।।

(16)

ता सो वारह विहि तउ पालइ, वारह अविरइ दूरें टालइ[12] ।
बारह अणु विक्खउ मणि चिंतइं, बारह पायच्छित्तइं मंतइं ।
बारह अंगइं सुत्तहो पढेइ, सिद्धाणु योय[12] वारह दिढेइ ।
वारह उवयोगइं मणि धरेइ, सावय वारह वय बज्जरेइ ।

---

1. क. अवगावइ
2. ख. तत्ता
3. ग. ०णित्त
4. क. वुट्टंति
5. ग. सिरिकयच्छु,
6. ग. खरि
7. क. हउ
8. क. भामिउ, ख. भमिउ,
9. क. रज्ज०
10. क. सत्ति
11. ख. ले विणु
+. क. चरणि०
12. क. ठालइं,
13. ग. जोग

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेरहविहि चारित्तु[1] सु णिम्मलु, तेरह कसाय दूरुज्झिउ मलु ।
चउदह पुव्वइं जाणइं विसेस । तह चउदह पक्किण्णहं असेस ।
चउयह गंथइं जो[2] परिहरेइ, तहं पिंड पयडि णियमणि धरेइ ।
चउदह मल वज्जवि पिंडु लेइ, चउदह गुणसेढिहिं कमि चडेइ ।
इय बहु कालें सो तउ करेवि, अरुहक्खरु णियमणि संभरेवि !
गउ अच्चुव सग्गहो थिरु मरेवि, हुउ अच्चुइं[3] दुक्खणि अवयरेवि ।
वावीस जि सायर आउबंधु, किं वण्णिज्जइ तहं सुह पवंधु ।

घत्ता—सुर तिय मण णंदणु, सिव अहि णंदणु, ते आणु[4] अहं महं गउ ।
जिणवर पय भत्तउ, सुरसुह सत्तउ, जायउ पुण्ण पसंगउ ।।16।।

इय सिरि चंदप्पहचरिए, महाकइ जसकित्ति विरए
महाभव्व सिउपाल सवणभूसणे जयसेण अच्चुय
सग्ग गमणो णाम पंचमो संधी सम्मत्तो । (ग्रन्थ 176, अक्षर 14)

---

1. ख. चारित्तु
2. ग. जा
3. ग. °अच्चइ
4. ग. याणु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छट्ठो संधि

(1)

सो वहु काले सग्गहो चवेवि[1], कणयप्पहं णिव घरि अवयरेवि ।
तुहुं[2] पोमणाहु हूअउ णरेसु, मणि संचय पुरवरि सिरि असेसु ।
इय पुव्वभवंतर मुणि कहेवि, जा मउण[3] भाउ थक्कउ घरेवि ।
तं णिसुणिवि णरवइ पुलइ अंगु[4] पुण रवि भासइ हरसें सरंगु ।
परमेसर चिरजम्मंतराइ, महो कहियइं पइ[5] सयलाइं ताइं ।
पुणु पच्चउ किं णिवि फुडु कहेहि, महोमणि संसउ जिह[6] अवहरेहिं :
तं णिसुणिवि पुणु भासइ जईसु, कय वय दिवसिहिं णं गिरिवरीसु ।
कच्छवि करि तुह पुरि आवेसइ, तिं फुडु[7] पच्चउ तुह फुडु होसइ ।
तं आइणि वि वंदिवि मुणिंदु, णिय णयरि परायउ णरवरिंदु[8] ।

घत्ता—तहिं पुरि सुहसत्तउ, जिण पयभत्तउ, जा णरवइ घरि अच्छइ ।
ता मुणि अंकिय, दिणि, ता सिय पुरजणि, करि आवंतउ पिच्छइ ।।1।।

(2)

गज्जइ गहीरु णं पलयमेहु, णं चल्लइ गिरिवरु विज्भु एहु ।
मयगंध सयल णासिय गयंदु, कर सीकर सिंचिय सूरचंदु ।
पयभर डुल्लिय[9] महि पडिय गेहु, पच्चक्खु णाइं खयकाल देहु ।
उट्ठिवि णरवइ[10] सम्मुहउ ठाइ[11], गेहहो उत्तरि कय पयइ जाइ ।

---

1. ख. चएवि,
2. क. तुहु,
3. ख. घ. मोण,
4. ख. घ. यंगु,
5. क. पय,
6. ग. जिव,
7. क. तं विरु,
8. ख. घ. णरवरु, घ. णरवहिंदु
9. घ. पयभड डोल्लिय°
10. ख. घ. णरवरु,
11. ख. घ. थाइ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ता करि करु[1] उप्पाडे[2] वि चंडु, सम्मुहं धायउ णं पलय दंडु ।
जा आइवि किर घल्लेइ हत्थु, ता णिउ दिट्ठिहि उवरिल्ल वत्थु ।
घल्लिवि अप्पु णु णिक्कलि वि जाइ, पुणु आइ वि पच्छइं हणइं पाइ ।
पुणु पुंछि[3] लग्गु करि सिंहु भिरेइ[4], दव्वट्ठिवि पुणु उप्परि चडेइ ।
इय चउपासिहि पुणु पुणु फिरेइ, करि सिक्खावलु पायडु करेइ ।
अइ दंतउ करि सम्मुहं पइट्ठु[6], ता णरवइ कुंभच्छलि वइट्ठु ।
दिढधं[7] भिलेवि वद्धउ गइंदु, णिय गेहि परिट्ठिउ णरवरिंदु ।

घत्ता—ता तहिं इक्कहिं[8] दिणि, सह अवसर खणि, दूउ एक्कु संपत्तउ ।
बुल्लणह[9] वियक्खणु, णाउ[10] सुलक्खणु, पुहइपाल णिव भत्तउ ॥2॥

(3)

सो भणइ[11] एम जोडेवि हत्थ, पइ[12] बुज्झिय सयल विणीय सत्थ ।
महिपालु राउ पभणेइ एम, पइ[13] अजिणउ एरिसु कियउ केम ।
महो[13] करि सइं वणिकेली पइट्ठु, तुम्हिहिं हिंडंतउ कहि विदिट्ठु ।
संगहिवि सो वि अप्पणउं कीउ, को किर सहि सइ एरिसु विलीउ ।
पुहवीपालहो विट्ठुरइ सव्वु, भूखें वें इंदुवि मुअइ गव्वु ।
कालु वि हक्किउ घर हरइ झत्ति, दइउ[14] वि उहट्ठिवि करइ भत्ति ।
असद वि[15] दासत्तणु करइ तासु, गहचक्कु वि संकइ दीहसासु ।
अपुण्णु वि तसु पुण्णत्तणेण, परिणमइं चित्ति चित्तिउ खणेण ।
ते दुण्णिमित्त ते तासु मित्त, जे विग्घते वि पाइक्क भत्त ।

---

1. ख. वरु
2. क. उप्पडिवि
3. क. पुंछिय
4. घ. फिडेइ
5. घ. सामुहुं
6. ख. सामहु पयहुं
7. ख. दिढपं
8. ख. इक्कहे
9. ग. घ. ०हं
10. ग. णाउं
11. ग. भणइं
12. ग. पइं
13. ख. महु
14. ख. देउ
15. ख. ग. अदसवि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जे अवसरा[1] लोयहो किर हवंति, तें तहो[2] इच्छिउ फलु सयलु दिंति ।
अण्णे वि केवि जे लोयदुट्ठ, ते तहो दासत्तरिण सवि पइट्ठ ।
इय जाणिवि तुहु एहु राय हत्थि, अण्णुवि णियघरि जं सारु अत्थि ।
तं ढोइवि[3] सयहो[4] पडहि पाइ, जिह[5] जीविउ रज्जु वि सुथिरु थाइ ।

घत्ता—तं णिसुणिवि राए[6], तरलियछाएं, जुवरायहो[7] मुहुं दिट्ठउ ।
णं उग्गय सूरें, हयतमपूरें, रत्तुप्पलु परमट्ठउ ॥3॥

(4)

जुयराउ भणइ रे दूय दूय[8], तुह जीह किण्ण[9] सयखंड हूअ ।
जो पोमणाह णरवारह देउ, तं पडि कह[10] किज्जइ विणयभेउ ।
जइ पुण्णें पेरिउ घरि करिंदु, आयउ तहं अप्पइ कह णरिंदु ।
अहवा जं किरपा इक्क[11] वत्थु, जइ गहइ सामि ता सो कयत्थु ।
अह जइ सेवइ ता लहइ हत्थि, अविणइ पुणु जीउवि तासु णत्थि ।
जं णिक्कंटउ तहो रज्जु भोउ, तं पोमणाह पापहं पसाउ ।
जं पइ सामिहिं किय[12] सुहउ गच्छि, तं सव्विय करि संगरहं कज्जि ।
हुंतिहु सयलवि गल गज्जि सूर, विरला पुणु वायहिं विजय तूर[13]
तं सुणिवि दुउ कोवें पलित्तु, णं घूमद्धउ बहु घयहिं सित्तु ।
जा[14] हउं दूह ता वुल्लह तुरंत, पच्छा दिक्खे समि भय घुलंत[15] ।
हउं बुल्लमि सारउ इक्कु वयणि, बहु कहिही वाया कलहु कवणु ।
कइ तुम्हहं सिरु पयवीढि[16] तासु, अह लुढिही[17] संगरधर दियासु ।

---

1. ग. असवण
2. ग. तहु
3. घ. ढोएवि
4. घ. रायहो
5. ख. जह
6. =कजकप्रभ इत्यर्थः
7. =पोमणाहस्य
8. क. दूअ दूअ
9. ख. ग. किण
10. क. किह
11. क. यक्क
12. घ. सिय
13. =संग्रामतूरेति
14. =दूत
15. क. पुलंत
16. ग. ०परि०
17. क. लुटिही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—इय दूग्रहु[1] वयणहिं, भडमणदमणहिं, सयल सुहड मणि तत्ता ।
कोवें कंपंता, समिउवंता, फुरिया हर कयदंता ।।4।।

(5)

ता भणइ णरेसरु पोमणाहु, चिररायणीइ सुणि वद्धणाहु ।
सो मूढउ जो दूयहु रूसइ, दूग्रउ[2] पडिसद्दु व गिरि भासइ ।
जो जसु कवल मित्तु भुंजेसइ, सो समिहिं ग्राएसु करे सइ ।
दुग्र कहिहु तुहुं इय जाणे विणु, मासिक्कें करि ढोयमि ग्रा विणु ।
ग्रह तुह संगर केली पूरमि, विहु वयणहो णहु एक्कु ग्रदूरमि ।
ता दूयउ णिय णयरहु पहुत्तु, राउ वि मंतण मंदिरि[3] पहुत्तु[4] ।
जे वूढमंति[5] णयपारुयत्त, जे णयफल ग्रणुहव रसियचित्त ।
जे बुद्धि सत्थ संगामधीर, जे परउवाय णिद्दलण[6] वीर ।
जे वज्जगंठिणिह पर ग्रभेइ, जे कुल कमि पयडिय सुह विवेय ।
घत्ता—ते तहिं उववेसिवि, कुमरु णिवेसिवि, णरवइ भणइ सरायउ ।
सो णिग्गहु जोग्गउ, ग्रविणय भग्गउ, महु यहु मंतणु ग्रायउ ।।5।।

(6)

ता जिट्ठमंति[7] पुरुहूई[8] णामु, पभणइं सामिय तुहु[9] णयहु धामु ।
जं तुहं ग्रग्गइ वोलेमि[10] किं पि, हउं णेहिं साहसु करमि तं पि ।
जे णिच्च सूरभावेण[11] तत्त, ते सावय दो पाइय णिरुत्त[12] ।
ग्रइड्ढिवि[13] विग्गहु जे गहंति, ते जीविय रज्जहो सलिलु दिंति ।
णिक्कारणु दीवें सहुं पयंगु, रूसिवि[14] णासइ लहु पक्खु ग्रंगु ।
भूय[15] वि दंडि हउ[16] सिरहो धाइ, सामेण वि सलिलें[17] सोम थाइ ।
जं मसिण कट्ठु जण भरु सहेइ, तं पिहि महियउ जलणुम्महेइ ।

---

1. दूयहु
2. घ. दूवउ
3. घ. मंदिरहु
4. ख. पत्तु,
5. ख. बुड्ढमंति,
6. ख. णिट्ठवण,
7. ख. जेट्ठ,
8. =पुरोहित
9. ग. तुहुं
10. ख. घ. बोल्लेमिः
11. ख. सुरु०
12. =पादद्वययुक्ताः
13. घ. ग्राइच्छिवि
14. ख. रूसेवि,
15. =भस्म
16. क. दंडिहय, ख. दंडें हउ
17. क. वसललें, ख वसलिलें
18. =कठिन काष्ठ इत्यर्थः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इय जाणिवि सामहो करहो भाउ, सामु जि सव्वत्थ वि सुक्खठाउ ।
सामे तिरियवि[1] अणुकूल होंति, दंडे पुणु रूसिवि पाण लेंति ।
अमिउ व जे सामु रसंति राय, देव वि परिसेवहिं तासु पाय ।।

घत्ता—ता तहिं जुवराएं, समरउवाएं, सो वुल्लंतउ वारिवि ।
णिय पयपण वेप्पिणु, पुरउ सरिप्पणु, उत्तउ समुउ सारिवि ।।6।।

(7)

तहो दुट्ठहु किह[2] सामु पउंजहिं, पसरिय णिय जस पायउ भंजहिं ।
सो दुट्ठउ को वग्गि पलित्तउ, लोहु व दिठु सामं वु पसित्तउ ।
तत्तउ तिल्लु व सीयल सलिलें, सो उद्दीपइ सामिं सहलें ।
उच्छुहु दुट्ठहो एक्कु जि सहाउ, पीलिज्जंतउ[3] फुडु सरसभाउ ।
सीहे उववणि कहो कियउ सामु। जं कंपइ सयलु वि महहं गामु ।
सायरु पयडइ चिरु जलिण सामु, पुणु तह विहु वाडउ गसण कामु ।
गुरुदेवहं पियरहं विणउ जुत्तु, दुट्ठहं पुणु कुवि[4] विवरीउ सुत्तु ।
अणमं तहो जइ किर करइ[5] लल्लि, तो सुहउत्तणु सइं कूवि[4] घल्लि ।
इय णिसुणिवि पुणु पुरु हूइ मंति, पभणइं जिह कुमरहो होइ खंति ।
जइ तुम्हहं विग्गहिं हुवउ गाहु[6], ता पहिलउ चर संचरणु साहु ।
जाणे विणु चारहिं वलहु मज्झु, ता पयडिज्जइ संगरहो गुज्झु ।
ता पभणइं णरवरु पोमणाहु, पुरु हूइ भणिउं हो साहु साहु ।
जाणिवि चरेंहि तहो वल पमाणु, पच्छा दिज्जउ समहुं पयाणु ।।

घत्ता—इय मंतुकरे विणु, चरपोसे विणु, परवलवलुउ लक्खिवि ।6
मेलिवि सामंतइं, परहु कयंतइं, पुट्ठिपाय छलु रक्खिवि ।।7।।

---

1. —अग्निं ददातीत्यर्थः ।
2. ख. ग. घ. कह
3. ख. पीलिज्जंतहो
4. घ. कूडं
5. ख. करहि
6. घ. हुअवग्गाहु
7. घ. लखिवि
८. घ. तहो
9. सुलीलु ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(8)

ता बज्जाविय पुरि विजयढक्क, तहं[1] सद्दें निवडहिं गिरि गुरुक्क ।
सुह दिवसें गुरु मंगल रमालु, संचल्लिउ एगउ अरिपलयकालु ।
आरूढउ जय वारणि सलीलु. बहुवंदि विंदि पयडिय सुसीलु[2] ।
बल भरि भज्जइ फरिण उत्तमंगु, ता कुम्मि धाइवि दिण्णु अंगु ।
जा कुम्म पिट्ठि[3] भज्जेइ गाढ, ता घाइ वि कोलें ठविय दाढ[4] ।
तासु विदाठा किर जामु डेइ, जा भूमिचक्कु किर खडह डेइ ।
तातहो तुरयहिं साहिज्जु दिण्णु, खुरि खणिवि खणिवि रउ णहि पइण्णु ।
णिट्ठियधर उट्ठिउ रेणु भारु, ता कहवि कहवि ते धरहिं भारु ।
ता पुण रवि करिमय वाहिणीउ, तहिं पवहहिं फणि दुह वाहिणीउ ।

घत्ता—रय पडलहिं पिहियउ, णं भय सहियउ, णहु कर सूरु पसारइ ।
झल किय बल पहरण, दरसिय बहुरण, पिक्खिवि दुक्खु[6] वियारइ॥ 8 ॥

(9)

जा पहि चल्लइ वहु कडय लोउ, ता कत्थवि वेसरु करिवि कोउ ।
उप्फडिवि[7] फडिवि ता सुथिरु[7] जाउ, जा[8] घर लुट्ठइ[9] कुट्टणहिं काउ, ।
अण्णित्तहिं मउ उल्लवइ[10] ताम, आवंतउ कुंजरु तसइ जाम ।
कासु वि कल्होडु पाडेवि गोणि, ता णासइ जाणिय घरहो खोणि ।
कासु वि पडि भग्गउ तिल्ल भंडु, चुप्पडइउ पाणहं हसिवि भंडु ।
कासु वि इक्कल्लहो[11] सप्पि सयडु, उच्छल्लिउ[12] रिल्लहं[13] दिट्ठु पयडु ।
कुवि सयडि[14] रूढु कुट्टणहिं उत्त, चडि ही[15] जाणिवि वहिराय धुत्त[16] ।

---

1. ख. ०पट्ठि
2. क. डाढ,
3. घ. तातुहुँ,
4. क. पिछि विछेउ,
5. ग. करेवि,
6. ग. उफडिवि
7. क. सुच्छि,
8. ग. ता,
9. ग. ल्लुट्ठइ,
10. ख. उल्लइ
11. ख. ०लहु,
12. ख. घ. उछलियउ,
13. ख. घ. रिल्लउ,
14. क. सयड,
15. चडही ।
16. =बाह्यरागधूर्तः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केणवि णरवइ अग्गेसरेण, संगहिय दीहकं वा करेण ।
पहु खंडिहु छंडहु[1] इय भणेवि, कुट्टणि हय वेरइ[2] संभरेवि ।

घत्ता—इय बल वित्तं तहिं, पडि पडि[3] हुंतहिं, तहि अरि देसु परायउ[4] ।
पिच्छिवि जल ठाणइं, सिविर पमाणइं, उपयाणइं सिरि रायउ ।। 9 ।।

(10)

मणिकूडु सेलु पुट्ठिहिं ठवेवि, तहिं सिण्णु[5] अवासिउ भूमि लेवि ।
उब्भिय गुहुर णं कुल गिरिंद, जहिं सिरि[6] खलंति णहिं सूरचंद ।
सल्लइ पल्लय वारण चरंति, वण विहरण सुररुइ[7] संभरंति ।
सिविरहो दूरें वारण णिवद्ध, जण संचरुण[8] सहहिं मयणिरुद्ध ।
हरि मंदुर थंभहिं हरि वइट्ठु, णं सयल लोयमण मित्त इट्ठु ।
तहं उद्द इक्कु आडइर तित्थु, जह सेरिहु तासइ तुरिय सत्थु ।
तहं तोडि वि तठ्ठउ इक्कु[9] बाहु, जहं[10] मुट्ठें पिट्ठें पडिउ साहु ।
पिच्छिवि महियलि लोट्ठंतु साहु, सिट्ठिणि पभणइं हा धाहु धाहु ।
जा गोलि[11] भूमि किर जणहिं दिट्ठ, ता घरु ताडिवि वेसावइट्ठु[12] ।
पिच्छिवि रायहो सहि णाणु केउ, णिय णिय दिसि ठिउ सामंत लोउ ।

घत्ता—इय जातहिं चंचलु[13], अइदुस्सहबलु, आवासिवि सुहि संठिउ ।
ता वारुणि[14] रत्तउ, पुव्व विरुत्तउ, रवि अत्थवणि परिट्ठउ ।। 10 ।।

(11)

ता रयणिहि भडसिज्जा हरत्थ, सिय रमणिहिं णिरु जोडेवि हत्थ ।
अब्भत्थिय रयरसु वित्थरेवि, सूरुग्गमि संगर भरु मुणेवि ।

---

1. ख. घ. छट्टहु छट्टहु,
2. ग. वेरइं
3. ग. घ. पहि पहि
4. ग. पराइऊ,
5. ग. घ. सेण्णु,
6. ख. सिरि,
7. ग. सुरकइं, घ. सेक्खइ,
8. ग. संचरु,
9. हक्कु,
10. ग तह,
11. ख. ०गुलि,
घ. ०गोणि
12. क. वेसवेइट्ठ, =. बाह्य रागधूर्तं
13. ख. चलु,
14. ख. वरणि;

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुवि भणइं णाह तुहु पाणणाहु, महिं णेहिं बद्धउ इक्कु[1] गाहु ।
दारिवि[2] अरिकरि सिरु सीघलाइं,[3] ढोवहि आणिवि मुत्ताहलाइं ।
कुवि भणइं दंति दसणाइं मूडि[4], सामिय महु करु घल्लावि चूडि[5] ।
कुवि पभणइं तोडिवि सत्तुकण्ण, महो कुंडल अप्पहि मणिरवण्ण ।
कुवि पभणइं अरिकरि मयजलेण, महो[6] मंडणु किज्जहि सीयलेण ।
कुवि पभणइं महो इहु गाहु जाणि, महिपालहो सिरु दक्खवहि आणि ।

घत्ता—इय जा पियणारिहिं, रयसुहसांरिहिं[7], सुहडु लोउ[8] अब्भत्थिउ ।
ताणं रणदिक्खणि, सुहड समिक्खणि, गिरि सिरि सूरु कयित्थिउ[9] ॥ 11 ॥

(12)

उग्गउ दिणयरु पयडिउ पयासु, सण्णज्झइ बलु णिरि[10] साहिलासु ।
तहं सुहडहं णिरु उद्धसिउ अंगु, जह बाहुदंडि उरु कवय संगु ।
कासु वि रोमंचिउ कवउ फुट्टु, णं सत्तु[11] पाण दिढ सुत्तु तुट्टु[12] ।
कासु वि सिरि बद्धउ वीर पट्ठु[13], णं अरि खंडिउ रत्तघट्टु ।
कासु वि राएं दिण्णउं पसाउ, णं अरि जीविय कय मुल्लभाउ ।
काहवि अप्पिय[14] राएण खग्ग, णं अरि सिरि वेणिउ हत्थि[15] लग्ग ।
काहवि पेसिय राएं सणाहु, अरिजीविय कोसव रुइ सणाहु ।
कुवि पभणइं सामिय तुज्झ आण, पुहवी पालहो संगहमि पाण ।
कुवि भणइं पुणहें[16] महो होइ लज्ज, तं[17] करजुएण संघडहि कज्ज ।
इक्कहु दाहिण बांहहो पयाहुउ, को सहि सइ णिट्ठिय अरिणि काउ ।
कुवि भणइं मज्झ इहु तिक्खु चक्कु, पहंरतहो णासइ कालचक्कु ।

---

1. घ. जोरें, 2. ख. घ. एक्कु;
3. घ. फाडिवि
3. ख ग. घ. सीपलाइं 4. ग. घ. सूडि
5. घ. वूडि 6. ग. महु
7. ग. रइ 8. ग. आब्भ०
9. ग. कयत्थिउ 10. ख. रण
11. ख. संपत्तु 12. पट्ठु, क. छुद्धु ।
13. क. वट्ठु; 14. घ. अप्पिय
15. ग. हत्थ 16. क. घुणहें
17. क. जें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—इय जा भड गच्छहिं, पहरण सज्जहिं, णिव[1] पसाय परितुट्ठ मण।
ता पुहवीपालहो, रिउ खय कालहो, संचल्लिय रण दप्प घण ।। 12 ।।

(13)

ता[2] पोमणाहु रणतूर सद्दु, संचल्लिउ णं खुहियउ समुद्द ।
सिव सामा[3] वायस[4] खर उलूय, एए सुह सद्दें वाम हूय ।
सइं मत्त विजय गय पुणवि मत्त, सारंग णउल दाहिण पवत्त ।
अणुकूल समीरणु सुह[5] सणाहु, रायहो परियउ दाहिणउं बाहु ।
इय सवण पणुल्लिउ चलिउ जाम, पुहवीपालु वि संचलइ ताम ।
पहु खंडिवि विसहरु गयरु तासु, उट्ठ तउ खुंटइ लग्गु[6] वासु ।
हत्थहु वियलिउ असिवरु तुरंतु, वाहें पाडिउ अप्परि चडंतु ।
छिंकिउ सम्मुहुं उद्ध मु अग्गि, कुविय भणइं पहु संचलिउ सग्गि ।
इय असवण पिट्ठंतु वि सगव्वु, पुहवी[7] पालुवि अवगणिवि सव्वु ।
संपत्तउ सइं णिय बलिहिं तित्थु. ठिउ पोमणाहु मंडेवि जित्थु ।

घत्ता—ता वज्जिय तूरहिं, धाइय सूरिहिं, दुण्णिवि बल अभिट्टिय[8] ।
णं पलय पणुल्लिय, सइं उच्छल्लिय, दो जलरासि पलुट्टिय ।। 13 ।।

(14)

धूलि धारिउ गयणहो विमाणु, णं काल रत्ति भरु णट्ठ भाणु ।
धणु टंकारें जाणियउं जोहु, हक्कंतु मुणिउं पडिवक्खु गोहु ।
घंटा टंकारें मुणिउं हत्थि, चक्कहो चिक्कारें रहु वि अत्थि ।
करिमय हय[9] लाला सुहड रत्ति, अइ गाढु गाढु सिंचिय धरित्ति ।
तारेणु पडलु हड विरलु जाउ, दिट्ठउ अण्णुण्णहिं बलहं आउ ।
गयणयलु सरिहि छायउ महंतु, रवि तेउ णट्ठु भडु ताउ दिंतु ।
जइ वाणिहिं खंडिउ वाण पुच्छु, तो वेए भिंदहिं फलिहिं वच्छु ।
कासु वि अड्डु फरिया खग्गहत्थु, णच्चइ सिरु रक्खुइ णिरु[10] धरत्थु ।
कासु वि सिरु असिहउ गयणि पत्तु, महि आवंतउ णिरु खग्ग खुत्तु ।
तहि सो गच्चइ रणि बहु विसेसु, जह सिलपुत्तिहि खट्टंगु वेसु ।

---

1. क. णिव्व; घ. तं
2. घ. तं
3. क. साम
4. क. वोयस
5. क. सह
6. क. लग्घु
7. ख. पुढवी
8 ख. अज्झिय्या
9. ग. हरि
10. क. णिय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर पायण मणि संचिउ किलेसु, कुवि तुट्टइ सिरिउ वहइ तोसु ।
ता णच्चइ णियमणि चिंतवंतु, किं सीसें महु बाहू जयंतु ।

घत्ता—किवि मंडिय बहुरण, विलसिय पहरण, लुय णिय सीसहिं जुज्झहिं ।
रणरस आवेसहिं, बहुअ विसेसहिं, अप्पउ मुयउ ण वुज्झहिं ।।14।।

(15)

कुवि सामियकज्जि णिवद्ध गाहु, तुट्टउं पिक्खिवि दाहिणउं वाहु ।
वामेण पंडतउ सिरु धरेवि, पायहं दुक्करु वंधइ सरेवि ।
कुवि सारिवि सामिहिं तणउं कज्जु, करिदंततलिणि कित्तिए समज्जु ।
सोवइ दीहइं णिद्दइं[1] अचिंतु, कण्णहं चमरिहिं[2] णिरु वीइयंतु ।
कुवि खग्गें करि सिरु हणइं सूरु, विरधरइ जसु व मुत्तरहं पूरु ।
कासु वि हरि रुढहो पडिउ मुंडु, वहु भल्लिहिं खिल्लिउ णेय रुंडु ।
कुवि पहरइ दंतिहिं हुट्टु[3] पीडि, णं जीविउ रक्खइ दारु भीडि ।
सारिवि णिय सामिहिं कज्जवग्गु, हे जीविय तुज्झ पयाणयुग्गु[4] ।
कुवि धणुहिं सहुं बिद्धउ सरेण, णं धाइवि गिलियउ जम मुहेण ।
लुय कासु वि सयल वि पाणिपाय, तह विहु मुहुं जंपइ सुहडवाय ।
कासु वि जइ तोडिउ पडिउ वाहु, तहं विहु णहु मिल्हइ खग्ग गाहु ।

घत्ता—इय बलहं भिडंतहं, पुरउ सरंतहं, बहु सो णिउ जल सारिणिउं ।
महियंगणि फ.इय, पूर पराइय, भूअ जाइ मणहारि णिउ ।।15।।

(16)

दुद्धरसर सल्लिय सयल गत्त, जा सुहड णाह ऊसरणि पत्त ।
ता पुहविपालु मणिधरि वि दप्पु, संचल्लिउ आसीविसु व सप्पु ।
तहों सरधोरणि धाराहिं सित्त, पडिवक्खु सुहउ णासण पडत्त[9] ।

---

1. ग. निद्दइं
2. ख. घ. चमरेहिं
3. क. दंतोट्ठ छड्डु
4. ग. घ. जोग्गु
5. घ. ०वहइ,
6. घ. वियलिय,
7. घ. सर,
8. घ. पिच्छिवि
9. ख. पवत्त, घ. पवित्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अरि पिक्खिवि गुणरय सिरि सणाहुं, कुंजरि आरूढउ पोमणाहुं ।
जा दोहं वि हत्थिहिं दंतिदंत, अभिट्ठहि सिहि कण पायडंत ।
ता पुहविपालु कोवारुणासु, णीसास धूमु मिल्लिवि दिसासु ।
पभणइं रे तुह गयवरहु सप्पु, महुसर पूरेसहिं तुट्ठ दप्पु[1] ।
ता पोमणाहु जंपइ सरोसु, रे फेडमि तुह दुव्वयण दोसु ।
रे पहरु पहरु पढमेण भग्गु, सव्वहं दुव्वयणहं मग्गि लग्गु ।
तं णिसुणिवि णरवइ पुहविपालु, जुज्झइ रुद्धउ णं पलयकालु ।
जे जे सरसव्वल सो मुएइ, तें पोमणाहु णिप्फल करेइ ।
दुण्णिवि मंदर गिरिवर समाण, दुण्णिवि पलयब्भहु बलपमाण ।
दुण्णि वि सायर गंभीरधीर, दुण्णिवि बहु भडकोडीहिं वीर ।
जा दुण्णि विजयसिरि अंतरत्थ, जा णिहणहिं बहु सत्थिहिं कयत्थ ।

घत्ता:—ता कोव पलित्तें, जयसिरि सत्तें, पोमणाहु पुहवीसें ।
धणु गुणि आरोइउ, लक्खहो ढोइउ, अद्ध इंदु[2] सरु रोसं ।।16।।

(17)

मुक्कउ णाहु सर जालेहिं रुद्धु, ण टलइ कम्मु व चिरकाल वद्धु ।
आइवि गल कंदलि तासु लग्गु, णं जयसिरि लीला पोमुलग्गु ।
णिव डियउ सीसु सहुं कुलवलेण, तट्ठउ भडयणु सहु परियणेण[3] ।
ता पोमणाहु पुहवी सरेण, वज्जाविय जयदुंदहि सरेण ।
उत्तरि वि गयंदहो सीसु दिट्ठु, सो णिय धूली पडलेहिं पुट्ठु ।
कुंडल मउडेहि वि णट्ठसोहु, झंपडिय विरलठिय सिररु होहु ।
तं पिच्छि वि राया मणि विसण्णु, चिंतइ हा माणुसु मोह पुण्णु ।
सिय जस हेयं[4] मंडइ अणत्थ, णहु जाणइं अप्पहु इय अवत्थ ।

---

1. ख. दुट्ठदव्व
2. क. अद्धदुं
3. क. परियरेणि, ख. सिंय जसेण,
4. ख. घ. सिरिजसहं हेउ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मल मुत्तहं पुट्टलु असुइ मंडु[1], पुणु तहं वि गुरुउ[2] हंकार चंडु ।
आरवंत खलिय जें सरसमूहु, सो खेवइ णहु मत्थियहं वूहू ।
जो जुज्झइ गुरु गयकुंभि चडिउ, सो णिक्करडिवि णिरु दंत पडिउ ।

घत्ता—जो इय गल गज्जइ, समरु समज्जइ, बहु कोवग्गि पलित्तउ ।
हातहो सुंडीरहो, भडसयवीरहो[3], सिरुधूलिहिं सहुं[4] सित्तउ ॥17॥

(18)

इहुं मइं णिह णिउं कोवेण अज्जु, भवि भवि मइं णिह णेसइ अणज्जु ।
को बंधउ माणुसु चम्मचक्खु, भवि भवि अणु हुंजइ णरयदुक्खु ।
कोवेण जि संचइ पावकम्मु, कोवेण पणासइ सयलु धम्मु ।
कोवेण वि खिज्जइ णिय[5] गुणोहु, कोवें पियरवि मेल्लंति मोहु ।
कोवें चउवग्गु वि खयहो जाइ, कोवें खणेण चिर तउ पलाइ ।
कोवें सिय कित्तउ खयहुं जंति, कोवें[6] णारि व धिय दूरि थंति ।
कोवें विवेय गुण विलय जाहिं, कोवें वाहिउ आसण्ण थाहिं ।
कोवें आवइ[7] पायडहिं णेहु, कोवें संपय मेल्लंति गेहु ।
कोवें माणुसु सावय समाणु, कोवें सव्वहं णिदाण ठाणु ।
कोवें खणि सुगुणु वि होइ भूउ, कोवें सुअणाहं[8] विकाल दूअ ।
कोवें अप्पाणुवि हणइं झत्ति, कोवें णिगोय णिच्चहं घरित्ति[9] ।
कोवें समाणु णहु होइ[10] सत्तु. जं णरु भीसणु दुह पंकिखत्तु ।

घत्ता—कोवग्गि पलित्तउ, समदम चत्तउ, किण्हलेस रसरंगिउ ।
अप्पा दुह भावइ, सुक्खु ण पावइ, विसय कसाय पसंगिउ[11] ॥18॥

---

1. ख. घ. पिंडु, 2. ग. गुरुयं०,
3. ग. ०वीरहु, 4, क. ख. सणि
5. क. ख. घ. कोवेण खइणिय गुरु
6. क. कोवेण 7. ग. आबय
8. ग. सुय० 9. ग. धरत्ति
10. घ. कोवि, 11. क, पहंतउ,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(19)

अण्णु वि दिढ माण पिसाय रुद्ध, कासुवि ण णमइ[1] णं सूलि छुद्धु ।
सइं णिग्गुणु णिंदइ गुण महंत, सइं पाउ वि णिब्भच्छइ महंत ।
सइ णिव्वुंव[2] गुरुयणि करइ रोसु, अप्पहु मण्णइ बहुगुण विसेसु ।
माणें[3] णहु कासुवि लेइ सिक्ख, माणि मिल्लइ गहिया वि दिक्ख ।
माणि णहु सुयणहं होइ पासि, माणें संपज्जइ लोय हासि ।
माणें चिर तव गुण खयहु जंति, माणें मित्तवि पडिवक्ख होंति ।
माणें खर मंडल सुंड जोणि, माणें घरु पंगणु णरयखोणि ।
माणें दगडय डुंववि हवंति, माणें टुंटुल मंदुल हवंति[4] ।
माणु जि सव्वहं अविणयहं कंदु, माणु जि पावो वहि वेल चंदु ।
माणु जि कोहाहिय दोस मूलु, माणु जि सव्वहं उरि तिक्ख सूलु ।
माणु जि मिच्छत्तदु माह बीउ, माणु जि सम वल्लिहिं हत्थि खीउ ।

घत्ता—तहं माया सप्पिणि दंभ वियप्पिणि जाहं हियइ विलि णिवसइ ।
ताहं वि जण णासहिं, विरसु पयासहिं, धम्मु वि सुहफलु रूसइ ।।19।।

(20)

माया तव सीलहं सव्व णासु, माया दुक्किय कम्माहं पासु ।
माया सयलहं दुह फलहं, साउ, माया गुण सेलहं वज्जघाउ ।।
माया भवोहि पीयूसगासु[5], माया अकित्ति फुप्फुवइ फासु[6] ।
माया पडिदूतिय भवहो जाणि, माया खंडत्तण लोह खाणि[7] ।
माया तिरियहं जाणेइ मग्गु, माया जस वल्लीह णाणि खग्गु ।
माया सुहगइ गेहहो कवाडु, मामा सुपुट्ठ धम्मंग साडु ।
माइउ वंचइ पढमेण अप्पु, पच्छा बंधव पिय माय वप्पु ।
माइउ मंजारहो अणु हरेइ, मणिहिं सिरु कोमलु सरु करेइ ।
माइउ मल भंडु व[8] पडि विहाणु, सव सुज्जय ते उव असुइ ठाणु ।
माइउ खरमल गूढय[9] सहाउ, अब्भंतरि णिरु णीरसउ भाउ ।
मायायउ णरु फेडिवि सुधम्मु, पावइ थीय अहव विऊम[10] जम्मु ।

---

1. ध. णवइ
2. क. णिंदुवि
3. ग. माणि
4. ग. हवंति,
5. =संसार सर्पस्यामृतग्रास
6. क. पुफवइ फासुं, ग. फुफुवइ पासु,
7, क. जोणि
8. क. संडुव,
9. क. गुद्दय,
10. क. अहनिवस०, ख. अहवा निउं, निउस=नपुंसक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—अण्णए[1] वि तह लोहें, पसरिय मोहें, अम्हारिसु जणु बद्धउ ।
काउ व भवसायरि, बहु दुहदायरि, णिवडइ तिय सवि[2] गिद्धउ ॥20॥

(21)

लोहु जि कुकम्म सयलहं णिहाणु, लोहु जि पावहु उंप्पत्ति ठाणु ।
लोहु जि लोयहं चंडाल गेहु, लोहुं जि सव्वहं दोसाहं देहु ।
लोहु जि अविरइ गिरि नईय मेहु, लोहु जि दुंहु[3] लच्छिहिं दिढु सणेहु ।
लोहु जि गुण कक्खहं पवि किसाणु, लोहु जि जस कुमुयहं सहस भाणु ।
लोहु जि दोहग्गहु होइ खोणि, लोहुं जि अपाय संजणण[4] जोणि ।
लोहु जि लज्जा दक्खिण्ण णासु, लोहु जि मित्तत्तण दयहं तासु ।
लोहिउ सिरि मण्णइं माय ठाणि, भोगिच्छइ तें न छिवेइ[5] पाणि ।
खोणी खणि घल्ली सिरि सुहाइ, णिय णरय गमणु पच्छाणु णाइ ।
लोहिउ मग्गिउ उट्ठेवि जाइ, सिरि जण णिहिं, गालिसु णेवि[6] णाइ ॥

घत्ता -- इय मूलकसायहिं, जणिय पमायहिं, हउं चउगइ संतत्तउ ।
एवहिं कउ[7] मिल्लमि[3], भवसुह फिल्लमि, जिण तवचरणहिं
सत्तउ ॥21॥

(22)

हक्कारि वि पुत्तु सुवण्णणाहु, दिण्णउं स रज्जु महि सिरि सणाहु ।
पुहवीपालहु सुउ[9] सोयजुत्त, णिय जणणरज्जि थप्पि वि सुभत्तु ।
दिण्णिय तहो सिक्खा नउ संरिज्जं, थिरु कणयणाह सेवा करिज्ज ।
पयपडियमंति सामंत लोय, अवगण्णिवि बहु पायडिय सोय ।
सइं पत्तउ तुरिउ वणंति तित्थु, सिरिहरु णामेण मुणिंदु जित्थु ।

---

1. ग. बहु
2. ग. घ. सव
3. क. दुह
4. ख. संजण
5. ख. खिवेइ
6. क. गलि वि सुणिवि
7. ग. घुम्र
8. ग. मिलम्मि
9. क. सुतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तवतिव्वतेय ताविग्र[1] सरीरु, बहुकम्म सुहड णिद्दलण वीरु ।
संसार समुद्दहं कुंभ[3] पुत्तु, इंदियजण कम्महं देग्र[2] सुत्तु ।
गुण सेढि णिसेणिहिं हणु व देउ[4], णिम्मल सीलावासहो सुकेउ ।
बहु सुत्तसमुद्दहं तिरिय लोउ, जाणिवि अणिट्ठ जं चत्त भोउ[5] ।
बहुणरयुब्भासण धूमकेउ, सुह सुर मंदिरिणं मूलदेउ ।
णिरु खंति संति पिय वद्धराउ, मोहारि हणणि वट्टिय पयाउ ।
मिच्छामय गुरु काणण किसाणु, पच्चक्खु वि इह णं सुद्ध णाणु ।

घत्ता—तहो पयपण वेप्पिणु, करमउ लेप्पिणु, विणए[6] णरवरु भासइ ।
पइं सामिय दिट्ठें, जगमण इट्ठें, भवकलिमलु दुहणासइ ॥22॥

(23)

तुहुं सिवसुह णाणइं सत्त गेहुं, तुहुं दुह दावाणल समणमेहु ।
पुहुं भवभीरुहं अणमित्तु[7] वंधु, तुहुं पावपलित्तह अमल सिंधु ।
तुहुं चिंतामणि चिंतामणीणु, तुहुं कामधेणु कामय गत्रीणु ।
तुहुं कप्पं हिउ कप्पं हि वाण, अहियं[8] फलु देहि मणोरहाण ।
तुहुं भवजंगलछलि[9] अमयकुंडु, पासंमि सहल रंभारुकुंडु ।
तुहुं गुणरयणहं रयणाहरहु, तुहुं जणचिंतातिण पलयदाहु ।
तुहुं णाण लच्छि मणहरणु रूउ, पइं बुज्झिउ अप्पहु थिर सरूउ ।
पइं रइ वि[10] पलाविय विहव सीलु, णियमण होप्पाडिउ आसकीलु ।
पइं देवहु[11] फेडिउ घोरुमाण, मिल्लिवि सयलहं इच्छाहु ठाणु ।
अदस वि पइं पिल्लिय[12] पायमूलि, जं सइं णिवसइ[13] गिरि गहणकूलि ।
तुहुं सव्वहं जीवहं करुण भाउ, महो दिक्खदाणि किज्जउ पसाउ ।

---

1. ग. ०ताविय
2. ग. दैय
3. अगस्त्य इत्यर्थः
4. ग. ०अवेउ
5. क. जे वंत लोउ
6. ग. विणयं
7. ग. अणिमित्त०
8. क. अहिउ
9. ख. ०थलि
10. क. ख. रवि, घ. रयवि
11. ग. दैवहु, घ. घ. दइवहु
12. घ. घल्लिय
13. ख. णिवसहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—इयं वयणाइं भासिवि, गुज्झु[1] पयासिवि, केस भारु उप्पाडिउ ।
णं पावहो मूलहं, सुह पडिकूलहं, भरु दूरें णिद्धाडियउ ॥23॥

(24)

मिल्लिवि[2] वत्थालंकरणभारु, संगहिउ जिणिंदहो चरण सारु ।
तित्थयर णाम बंधणहं पासु, सोलह कारण तउ सिद्ध तासु ।
पढमें सम्मत्तहं करइ सुद्धि, मिल्लिवि संकाइय दोसबुद्धि ।
गुरु तव सय बुद्धहं विणयवंतु, बयसीलहं मल दूरें[3] चयंतु ।
अणवरउ णाणु उवऊय[4] जुत्तु, संवेयपरम भावम्मि सत्तु ।
जे अभयदाण पमुहाइं[5] दाण, ते वियरइ रक्खय जीव पाण ।
बारह विहु तउ सोतवइ तिव्वु[6], रयणत्तउ रक्खय सुद्ध दव्वु ।
सो जुग्गहं वइवाविच्चजुत्तु, जिणगणि वेहुसुय पवयणहं भत्तु ।
वच्छल्लवंतु सुयसायराहं, अपमाइउ छह आवासयाहं
दंसण पाहावण बहुगुणेहिं, सो कीरइ रंजिय बहुजणेहिं ।[7]

घत्ता—इय सोलहकारण, भवदुहतारण, भाविवि तहि तिय सुद्धऊ ।
सामिय जिणाहहो, सुक्ख सणाहहो, णामकम्मु तें वद्धउ ॥24॥

(25)

इय सो[8] दुद्धरु चिरु तउ[9] चरेवि, मणु मक्कडु अप्पहु बसि करेवि ।
इंदियवलु सयलु वि णिज्जणे वि, हियहु सल्लउ तउ उक्खणेवि ।
णिरु मोह महाभडु रणि जिणेवि, कोहाइ कसायहं कुल हणेवि ।
तह अट्टरुद्द झाणए चएवि, थिरधम्म सुक्कलइ मणु ठवेवि ।
तिविहेण विसल्लेहणं कुणेवि[10], बहु दुट्ठ परीसह अवगणेवि ।
णिय संघहो खम्मावण करेवि, परगमु[11] चरियक्कमु[12] अणुसरेवि ।
गुरु दिण्ण सिक्ख थिरमणि[13] धरेवि, संसारहु दुक्खइ संभरेवि ।

---

1. क, गुमुं
2. मेल्लेवि
3. ग. गल
4. क. उवऊअजुत्तं
5. पमुहाय, घ. पमुहाइ
6. ख. तत्थुं
7. घ. कीरइ रंजिय सो वुहजणेहिं
8. = मुनि पोमणाह
9. घ. तउ चिरु
10. क. विसल्लेहणहु णेवि
11. ग. परगम
12. ग. ०कम, घ. परगणचरियाकम्मु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मणि सिलि अरिहक्खरु उक्किरेवि, सुद्धप्प सरूवहु कल चरेवि ।
कुवि कप्प सुण्णु भावण थिरेवि, सुद्धप्प रसायणि पयसरे वि[1] ।
सिवसुह छायाफलु खणु धरेवि, णिच्चलु पंडिय मरणें भरेवि ।

घत्ता—सुहजोय पहावें, वियलिय पावें, बैंजयंति संपत्तउ ।
उववायहो संपडि, सुहर सिलंपडि, संपण्णउं सुहसत्तउ ।।25।।

(26)

णिरुवम तेयाणुहिं णिप्पण्णउ, णिरुवम आहरणेहिं खण्णउ ।
णिरुवम देवावहिं संपण्णउं, णिरुवम[2] संसारिय सुहपुण्णउं ।
णिरुवम सुक्कलेस पडिवण्णउं, णिरुवम संत भाव संकिण्णउं ।
णिरुवम वंभचेरु आयण्णउं तित्तीसोवहिं[3] जीविय धण्णउं ।
तित्तिय पक्खिहिं सासु समज्जइ, तित्तीय वरिस सहासिहि भुंजइ ।
वियरण केलि सहावय मुक्कउ, ईसागव्विहिं दोसिहिं मुक्कउ ।
अहमिंदत्तण लच्छि महंतउ, हत्थ पमाण देह सुपसंतउ ।
सुरहिय सुरतरु लंविय मालउ, सुद्ध गुणणि णिव्वाहिय कालउ ।
अहणि सुसुह भावण संलीणउं, संसारिय बहुभावहिं खीणउं
संतोसामयरसि मज्जंतहु, जाइ कालु ण मुत्ति वसंतहो ।

घत्ता—वज्जिउ भवभावहिं, तण्हा ताविहिं, सो सिद्धु व ससरीरउ ।
तहिं सुहफलु माणइं, सुह सवि जाणइं, थिर भावेण गहीरउं ।।26।।

इय सिरिचंदप्पह चरिए महाकइ जसकित्ति विरइए
महाभव्व सिद्धपाल सवणभूसणो पोमणोह
अणुत्तर गमणो छट्ठो संधी समत्तो ।।
(ग्रन्थ संख्या 248 ।।

— — — —

13. ग. चिरमणि
1. घ. पइसिरे वि
2. क. णिरुपम
3. ख. वत्तीसो०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्तमो संधि

(1)

भणिउ भवप्पवंचो, चंदप्पह सामिणो समासेण ।
गब्भाइय कल्लाणहं, णिरुवयं संपयं भणिमो ।

अह इच्छु पसिद्धइ भरहं खेत्ति, गंगा-सिंधू णइ जल पवित्ति ।
देसहं अइउत्तमु पुव्वदेसु, सिरुपुण्णगामपुर हय किलेसु ।
जहिं कलमि छित्त+सुरहिय समीरु, उच्छुय रसणई[1] सीयल सरीरु ।
दिसि दिसि मणिविंभिउ दूरिजाइ, केरिसु सुदुच्छ इय मुणण णाइ ।
❀जंहि गहवइ पुत्तिउ धणहरेण, भूमि वि गहु पिच्छमि गिरि समेण ।
तो[2] धुत्त कारणहु[3] दूरजाहिं तहिं पयमूलि वि केयारु❀ खाहिं ।
गायंतिहिं गोवलवालियाहि, खज्जिय णं अलिमुहिं डसहि ताहिं ।
तहिं कणरासिउ अइ उच्छवंति[4], जहिं सुरवासह चिंता मुयंति ।
जहिं दुक्ख पहिउ पुण्णेण लद्धु णिहु आणिहि अंभु व गेहि छुद्धु ।
जं मग्गइ तंतहु देइ जुट्‌ठ गामिय कप्पं हि व सरिससिद्ध ।

घत्ता—इय सिरिविरिहिं, पयडियसारिहिं, गामहिं पुरहिं पसंगउ ।
आलंवण मुक्कउ, ठाणहं चुक्कउ, सग्गु व पडिउ सरंगउ ॥1॥

(2)

जो आयरुव्वरयणायराहं[5] जो सावरुव्व बहुकणजलाहं
जो[7] सुक्ख सुगालहु[6] मूलगेहु, जो दुक्खजलण उवसमण मेहु ।

---

1. क. रमई
2. ग. ता,
3. ग. कारनहु
4. ग. घ. उच्चवंति
5. ख. ग. घ. आकरु०

❀ ख. घ. जहिं गोगण उब्भिवि पुच्छ केउ, सुरधेणुं हि तज्जहि दुद्धहेउ ।

6. ग. जो सयल सुमंगहं,
7. = देशः + = क्षेत्र, ❀ = क्षेत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो बहुसिरि णच्चणि भरहं गंथु, जो णइ वणि[1] पहियहिं[2] रायपंथु ।
जो सुक्ख भव्वगण समवसरणु, जो दुहकम्महं जिण णाहवरणु ।
जो उववण मेहहं गवण ठाणु, जो भववल्ली[3] कट्टण किवाणु ।
जो धम्मकुसुम सोरह वसन्तु, जो रोयसोय[4] नासण करंतु ।
जो पवरसत्त संताण कामु, जो महणइ[5] मायरि जणिय थामु ।
जो उण्णयजल णहं णेहबंधु, जो जण पोसण भरि दिण्णुखंधु ।
जो चउ वयकरिउल विज्झदासु, सो सव्वहं विहविहं सुक्खवासु ।

घत्ता—तहि देसि मणोहरि, वहुविहपुरवरि, चंदउरी णामेण पुरि ।
जा सव्वहं सग्गहं, विहवसमग्गहं संपण्णीणं[6] सिरिउ वरं ।।2।।

(3)

गयणत्थफलिह सालिहि[7] महंतु अवलंवण मुक्कउ खडहडंतु ।
जें धरिउ सग्गु सइ णिरवसेसु, अवगण्णिवु अप्पहु भर किलेसु ।
जं सेवइ पडिहा मिसि समुद्द, रयणासउ सइं णिरु रयणलुद्ध ।
जहिं पोमराय माणिक्क गेहि, वाला लायंति ण घुसिणु देहि ।
जहि तुंगनीलघर किरण थंति, आइच्चु वि मग्गहु करइ भंति ।
जहि रयणगेह सिहरेहिं विद्ध, णह मंडल असि छाया सणिद्ध ।
तहो[8] पिच्छहु तारा विवरलक्ख, पच्चय उप्पाइणि निरुव लक्ख ।
जहिं चंदकेतिघरसिहर णीरु, णह णइं यहि आणइ रत्ति पूरु ।
जहि णील सिहर किरणेहि छण्ण, गंग वि कालिंदी सलिलवण्ण ।
जहि रयणगेहि दीहरसिरेहिं, सग्गु वि उज्जालिउ भासुरेहिं ।

घत्ता—जहिं सिहरि वइट्ठी, णियमणि तुट्ठी, दप्पण भंत्तिए चंदहु ।
वाला मणु घल्लइ, णिय करु पिल्लइ, णियवयणहो पडिछन्दहु ।।3।।

(4)

जा सव्वहं सग्गहं लच्छिकोसु, जा सिद्धेण वि संजणइं तोसु ।

---

1. ग. घ. धणि
2. ग. घ. पहिवहँ
3. ख. भयवल्ली
4. घ. संमु
5. =नय
6. क. ख. संपन्नीण
7. ग. लहिं
8. तह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जा भूय[1] भूमि सारेण सिद्ध, जा तिजयप्वण संचयणि वद्ध ।
जा धम्म अत्थ कामहु णिहाणु, जा णिरुवम भवसुक्खाहं ठाणु ।
जा हेमगिरिहि णं लज्जभारु, णं रोहण सेलहु अजास सारु ।
णं मलय विडंवण पडह राउ, ण णंदण कवहु वि गोअ[2] भ उ ।
णं अमय कुण्ड गण-गब्भणासु, णं कप्परुक्खहुं कासु तासु ।
णं रवि-ससि रुइमाणहो पणासु, णं फणि णयरहं सिरिमय विणासु ।
णं धणय सुणिहि अवभेयघासु[3] णं सव्वहं सारहं इक्कु वासु ।

घत्ता—तहिं रयण मणोहरि, मणिमव बहुहरि, महसेउ[4] णामेण णिऊ ।
जो धरपालंतउ, पिसुण हणंतउ, अणहुं जइ णिरु परमसिउ ॥4॥

(5)

जसु रिउ तिय उरकामेण मुक्कु, पहु ताडण इरिए ण सोहचुक्कु ।
जसु असिवर धाराजल समुद्दु,[5] भूमीहर कुलु वोलइ रउद्दु ।
अरि अजसम णिहिं[6] मयलिउ तिलोउ[7] जसु कित्ति अभय सावरि वपोउ ।
आकप्पु[8] तरंतउ मज्जिलाइ, सेवल वल्लरिहिं गुत्तुणाइ ।
जसु जयसिरि णिवसइ वाहुदण्ड, असि पडिमा णीलोप्पहं खंडि ।
जसु चामरगाहिणी पडिम अंगि, णं महिमलच्छि विय पयडरंगि[9] ।
जसु पयतलि णिव सिर पोममाल, णं लुय अरि सिरि वहुघर रसाल ।
जसु खंधि णील ताडंक तेउ, णं धरणि भार किण कसणभेउ ।
जसु वेरिय पुरिसायार मुक्क, सव्वउ अबला होए वि थक्क ।

घत्ता—तहुं बहु गुणरासिहिं, सिसु ससिहासिहिं, तहं बंभंडु विब्भरियउ[10] ।
जहिं बंधिहिं तुट्टइ, तडयडि फुट्टइ, दिसिवालेहिं विसूरियउ ॥5॥

(6)

तहं कायकंति लायण्णु तासु, जहं मयलइ सिरिहिमि करहु फासु ।

---

1. ग. भोय०
2. घ. वि गोव
3. ख. अवभेय० घ. अवलेव०
4. ग महसेणु, घ. महसेणु
5. घ. अकंपु ख. ०धाला०
6. क. जसु सम०
7. ख. तिलोगु
8. ब. अकंपु
9. घ. पयडरमि
10. क. विप्परियउ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहं गुरुमाहप्पहो परुपयासु, जहं दइउ वि दूरिट्ठियउ तासु।
मंगल किर सेवहिं तासु पाय, महिमवि वहु मण्णइं तासु छाय।
कल्लाण वि इंच्छहिं तासु संगु, सुक्ख वि कंखहिं तसु मणहुं रंगु।
आसीवाय वि अहिलसहिं सेव, वरदाण वि पभणहिं देव देव।
सुदस वि दासत्तणि पइ पउत्त, गुणंगउरुव[1] सारवि चेड भत्त।
लच्छीए वि लच्छी तेण होइ, विज्जाण वि विज्जा करइ सोइ।
सूरत्तणु सूरउ होइ तित्थु, सुयदेवि वि सिक्खइ अवरु गंथु।
सु विवेउ तित्थु जायइ विवेउ, देवत्तणु सिज्झइ परमु देउ।
सच्चहु संपज्जइ अवरु सच्चु, उद्दारत्तणि गुणु अवरु णिच्चु।
सिद्धी णं वि तू सिवि देइ सिद्धि, बुद्धी ण वि दरिसइ परम बुद्धि।
णाणा ए वि पयडइ परम णाणु, झाणाए[2] वि परउव दिसइ झाणु।
सत्तीए वि सो संघडइ सत्ति, णाया ए वि देइ सुणाय[3] जुत्ति।

घत्ता—रूवहु रूवत्तणु, वलहु वलत्तणु, सीलहु तें सीलत्तणउं।
मण्णउ फुडु दिण्णउं, मणहरु वण्णउं वग्गहु पुणु वग्गत्त णउं ॥6॥

(7)

तसु **लक्खण देवी** णाम कंत, गुण सीलरूवसोहग्गवंत।
जा सुद्ध वंस धणु लय कराइ, पुणु गुणि वंकत्तणि णेव थाइ।
जा मुणि वाणि व णिरु चारु वण्णु[4], एयंत सत्त पुणु तहु सयण्णु।
जा लच्छिव अजडासयहु पुत्ति, जा गोरि व णाहु उप्पण्णा[5] गुत्ति।
जा लीलामंदिर वहुगुणाहं, कीलावणु सयलहं तियकलाहं।
कंदप्पहो जा दिढ दप्पगंठि, सुक्खहो किर अहिणव जम्मसिट्ठि।
सिंगारहो अहिणव जीवकोसुं, विब्भम सुविलासहो परमतोसु।
लावण्ण समुद्दहो णायहु[6] वेल, सोहग्ग गयंदहो णाइं लील।
तारुण्णहो णावइ परम सिद्धि, रूवहो णं सिद्धी परम रिद्धि।
अणुरायहो णं किउ पट्टबंधु, जणयणयहं[7] ण संपुण्ण[8] बंधु।

---

1. ग. घ. गुणंगउरवं
2. क. रज्झीणा
3. घ. सुणाह
4. ग. घ. चारुवण्णं
5. ग. उप्पण
6. ख. घ. णाइं
7. क. घ. जणणयहं
8. घ. संपण्ण०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—जा पिक्खिंवि कामहो, ससि ठिय णामहो, णियवाण विवेरीह वहिं ।
दिठ उरिपयसंता[1], मम्मुच्छिवंता, अणुदिणु सल्लिउ वउ दमहिं ॥6॥

(8)

मालय[2] सोंरहु अणु अमयसारु, उज्जालिय हेमहो किरण भारु ।
चन्दहु[3] लायण्णु वि कमल कंति, णव सिरस कुसुम केसरहं पंति ।
कंदप्पहु दप्पहु सिरि पहाउ, सरसइ देविहिं बहुकल कलाउ ।
कोइल वीणा भमरालिराव, विद्दुम[4] बिंबीहल सोण भाव ।
वासा घण रत्तिहिं बहुलु घंतु,[5] गंभीरत्तणु सायरहु[6] कंतु ।
मयमत्तहं हंसहं गइविलासु, मुणिणाहहं णिम्मलसीलभासु ।
करि कुंभ पिहुत्थणु सीहमज्झु, कंदप्प सरासण चारुगुज्झु ।
एडत्तिय ले विणु चारुदव्व, अण्णुवि मेलिवि रससारसव्व ।
विहिणा णिम्माविउ एहु रूवं, उवमाण वि वज्जिउ सुह सरूउ ।

घत्ता—मुत्तिव सहुं देहें, सुहरस णेहें, तहुं हुइ[7] मणहारिणिय ।
अप्पहु सिव सत्तिव, विणयहु[8] भत्तिव, चित्तहु वंछा कारणिय[9] ॥8॥

(9)

इय जा दुण्णिवि सुह णेह सत्तं, वग्गत्तय फल संभारभुत्त[10] ।
ता सुरवइ आएस पउत्तउ, धणउ मेह वरिसणहं पहुत्तउ ।
वरिसइ णिम्मल मणि बहुधारिहिं, रुइ णिज्जिय रवि ससि गुरु सारिहिं ।
आणिवि आणिवि सुरवइ कोसहु[11], पुण्ण पहाव जणिय मणि पोसहु ।
दिणि दिणि वारह कोडिउ रयणहं[12], पंचासवि लक्खहं बहुकिरणहं ।
पंच वण्ण अमुल्लइं वरिसइ, दालिद्दहो णाउ वि कहं हवि सइ ।
बहु पुण्णहो महग्घु किं सीसइ, रयणायरु जल हीणु व दीसइ ।

---

1. ग. ०पइ०
2. घ. मालए
3. ग. चंदहों,
4. विदुम०
5. क. थंतु
6. क. सायहो, ग. सायरहो
7. क. एत हुइ, ख. सातहो हुय
8. क. वियणहो, ग. विणग्रहो
9. ख. घ. करणिया
10. घ. साभार०
11. ग. घ. कोसहो
12. क. गयणहं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मणि विट्ठहिं जा णरवइ हिट्ठिउ, विम्हिउं जा मणि गेहि वइट्ठउ ।

घत्ता—ता दूरि वि गयणहु[1], संरहिय पवणहु, तेउ पडंतउ दिक्खइ ।
सहि सहुं उक्कंधरु, पुहवि धुरंधरु, संदेहिउ ऊलक्खिइ ।।9।।

(10)

किं पुप्फयंत तें तिरिउ जाहिं, कि जलणजालतें उट्ठुभांहि ।
किं तारा तें दिणि णहु फुरंति, कि विज्जुल घण विणु णहु हवंति ।
इय जा संसउ णियमणि करेइ, ता अच्छर गणु फुडु अवयरेइ ।
थिर थोर पीणथण भारभग्गु, मुहिं परिमल धाविय भमरवग्गु ।
मंदारदारमयरंदलित्तु, हारावलिकंचिय दामजुत्तु[2] ।
हरियंदण सुरहिय दहदिसासु, सुरकुसुम गंधकिय णयर वासु ।
आवेप्पिणु पंगणि दिण्णपाय, णेउर झुणि[3] धावियहं सराय ।
सिरिकंति कित्ति धिदि वुद्धि णाम, अण्णु वि ही लच्छी वहुलधाम ।
णिय णिय वाहण परिवारेयुत्त[4], वहुदेव भोय संसार भुत्त ।
आविप्पिणु[5] जय कारियउ राउ, मयणहो सक्कहो णं सिरि सहाउ ।
पभणिउं परमेसर ति जयणाह, तिण्णि वि भुवणइं पइं किय सणाह ।

घत्ता—ता भणइं णरेसरु, णं ति दिवेसरु[6], अच्छर गणु धरि आयउ ।
किं कारणु पुच्छमि, कज्जु णियच्छमि, सग्गहो पुण्णु परायउ ।।10।।

(11)

ता जंपइ सिरि[7] णामेण तित्थु, तुहुं धण्णु धण्णु णरवइ कयत्थु ।
तुह मंदिरि अट्ठम तित्थ णाहु, छहि मासिहिं होसइ तिजय णाहु ।
ता सक्कें पेसिउ तुम्ह पासु, सोहणु इह देविहिं गब्भवासु ।
ता रायं लक्खण देवि गेहि, पेसिय धय पोइय धवलमेहि ।
ता तहिं जाइवि तिहिं दिट्ठ देवि, वहुराय महिसि किय पायसेवि ।
पिक्खिवि मुक्कउ णिय रूवमाणु, चिरकालु वि जं पिणि बद्ध ठाणु ।

---

1. ग. ०णहो
2. ०गुत्तु
3. ग. सुणि
4. ग. घ. जुत्त
5. घ. आवेप्पिणु
6. दिणेसरु
7. श्रीदेवी इत्यर्थः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवरुप्प[1] रुजं पहि एहु रूउ, कत्थवि णहु दिट्ठउ फुडु सरूउ ।
इंदाणि वि पयहो होइ दासि, महलच्छवि लज्जइ हूअ पासि ।
को चंद बिंबु को अमयकुंडु, को मयणदप्पु को कमलखंडु ।
को परमणेहु को रइविलासु, को कुसुमवासु को सुक्खफासु ।
को चंदणु[2] को किर सग्गु सुक्खु, को गेयसारु को परमसुक्खु ।

घत्ता—इहु रूउ उवंतहं, हरिसु वहंतहं, एण विकासु विभासहिं ।
अह एहा दिट्ठी हियय वइट्ठी, ता एह वि पडिहासहिं ॥11॥

(12)

पण विप्पिणु णिय आगएण कज्जु, विण्णवियउ सयलु विवि यिणयसज्जु ।
पारंभिउ सेवा कम्मु सव्वु, मिल्लिवि देवत्तण णाम गव्वु ।
कुवि आणिवि[4] खीरोवहि जलाइ, सुहण्हाणु करावइ सीयलाइं ।
कुवि आणिवि सुरचंदणु महंतु, हिमु मसिणु सुगंधिहिं मह महंतु ।
आणिवि देविहि लिपेइ अंगु, एं णिहणइ भुअण णहो ताव संगु
कुवि पारिजाय मंदारमाल, सिरि वंधइ महुअर झुणि रमाल ।
कुवि एण णाहिं बहु पत्त भंग, गंडच्छलि विलिहइ[5] जणिय रंग ।
कुवि हार कडय कंकण किरीड, केयूर रसण कुंडल सुचूड ।
णेउर मुद्दिय पालंबभेय, आहरणपवर पयडिय विवेय ।
ढोवइ आहरणइं मणि णिरुद्ध, हरि तियहं वि जे किर देहिं सद्ध ।
कुवि रयण कंति सण्णिह सुचीर, पहिरावइ णिरु सुहई सरीर ।
कुवि वासइ अगरहु धूमिदेहु, कुवि सुरहि वासु अप्पइ णिरेहु ।

घत्ता—कुवि[6] थई यहिं गाहिणि, मण अवगाहिणि, कुवि भोयण रस आणइं ।
कुवि फल दल भारइं, णंदण सारइं, ढोवइ जे मणि माणइं ॥12॥

(13)

कुवि लेइ[7] दंडु[8] पडिहारि धाइ, कुवि धवलछत्त संधरण धाइ ।

---

1. घ. अवरोप्प
2. घ. कंचणु
3. घ. वेप्पिणु
4. घ. आणेवि
5. क. शब्दोऽयं नास्ति
6. ग. किवि
7. घ. लेवि
8. घ. देंदु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुवि उज्जल चामर गाहि णीउ, कुवि रयण उवाणहं वाहिणीउ ।
कुवि असिवर;हत्थिय अंगरक्ख, किवि सिज्जा पालहिं सुह मसिक्ख ।
किवि[1] भक्खणीर[2] मंदिरि णिउत्त. किवि गेह कम्म भारें पउत्त ।
किवि णच्चहिं जाणिवि भरह भाउ, किवि गायहिं बुज्झिय परम साउ ।
किवि वंसवीण सुणि[3] अमयधार, सवणे सुरिवरहि णिरु सुक्ख सार ।
किवि मद्दल तिवलहिं पडहराव, देविहिं उप्पायहिं[4] सुक्ख भाव ।
किवि चाडु चवहिं चारणहं भास, किवि मंडलु मंडिवि देहिं रास ।
छहिं भासिहिं किवि णिरु कवहिं कब्बु, किवि इंदजालु दक्खहिं सव्वु ।
किवि सरस कहहिं सा गाहवत्त, किवि संवाहिहिं देवीहिं गत्त ।
किवि वक्खाणहिं जिण समय भेय, किवि दरसहिं तहिं फलपत्त छेय ।

घत्ता--इय वहु सुररमणिउं, सुर मण दयणिउं, तहिं जिण मायरि सेवहिं ।
पित्ताइय दोसहं, वहु मलपोसहं, सोहण विहिणा देविहिं ॥13॥

(14)

इय जातहिं सोहिउ गब्भवासु, समधाउ करणि णिम्मल पयासु ।
ता लक्खण देवी सयणि सुत्त, चिंताइय दोसहिं दूरि चित्त[5] ।
जा किर अरुणोदयहो फुरइ कालु[6] ता दिट्ठु सिविण संचउ रमालु ।
दिट्ठउ अइरावणु पढम इत्थु, मेहुव गज्जंतउ उद्धहत्थु[7]
जंगम केलासुव वसह णाहु, सीहहो किसोरु विप्फुरिय वाहु ।
लच्छी दिट्ठी कमलासणच्छ, मंदारमाल जुअलु वि पसच्छ ।
णिल्लंछणु दिट्ठउ धण मियंकु, दिट्ठउ ऊवंतउ वालु[8] अक्कु ।
मणिकुंभ जुअलु रयणेहिं पुण्णु, णिम्मलु सरु दिट्ठउ सिरि रवण्णु ।
मीणहं मिहु णुल्लउ तरलु तिच्छु, दिट्ठउ सरवरि केली कयच्छु ।
दिट्ठउ गज्जंतउ जलणिहाणु, सिंहासणु सीहिहिं बुज्झमाणु ।
णहमंडवि दिट्ठउ सुरविमाणु, अण्णु वि णायालउ लच्छि ठाणु ।

---

1. घ. कवि
2. क. रक्खणीर
3. ग. घ. भुणण
4. घ. उप्पयहिं
5. ग. घ. चत्त
6. सूर्यकालात् प्राक् स्वप्न दृष्टा ।
7. ख. उड्ढहत्थु, ग. उद्धहेत्थ
8. ग. वाल, ण
9. घ. लक्कु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिट्ठउ मणि संचउ विप्फुरंतु, णिद्धूमउं जलणु वि घगधगंतु ।

घत्ता—इय सोलह सिविणइं, सुहफल णिउणइं, पिच्छिवि सा पडिबुद्धी ।
वहु मंगलतूरिहिं, णं[1] सुहपूरिहिं, सालिंगण पारिद्धी ॥14॥

(15)

ता करिवि पहायहु णिच्चकम्मु, अण्णु वि संपाइवि साहुधम्मु ।
णाहहु पासम्मि पहुत्त झत्ति, अरिकय सिविणावलि दिट्ठि जुत्ति ।
तं णिसुणिवि णरवइ दिट्ठि सत्थु, सिविणय फलु अक्खइ ताहं तित्थु ।
तुहं तिहु अणि[2] धण्णी देवि इत्थु, तुह तिय जम्मु वि जायउ कयत्थु ।
तुहं होसइ णंदणु तित्थ णाहु, ऐरावइ कर पालं व वाहु ।
ऐरावें दिट्ठें[3] दाणवंतु, जगभारु धरइ[4] धवलें महंतु ।
सीहें[5] मह विक्कमु तेय जुत्तु, सिरि दंसणि तिहुयणि लच्छिमुत्तु ।
मालइं सुरेहि सिरि धरिय पाउ, चंदें[6] सोहग्गहो सीम ठाउ ।
सूरिंति लोय पसरिय पयाउ, कलसें सवलहो मंगल पहाउ ।
मीणें सीयल सिव णयर ठाणु, सरवरि उप्पाइय विमल णाणु ।
जलणिहिं[7] दंसणि[8] भवजलहिं सोसु, सिंहासणि पयडइ भविय तोसु ।
सुरजाणें सुरवर णाह विंदु, णायालें णायहें देइ णंदु ।
मणि पूरें रयणत्तयहो हम्मु[9], जलणेण दहइ संसार कम्मु ।

घत्ता—सु विहाणइं दिट्ठउ, मइं फुडु घुट्ठउ[10] सिविणउं तुरिउ फलेसइ ।
तुहं पुण्णपमाणें, वहु सुह ठाणें[11], सक्कु वि दासु हवेसइ ॥15॥

(16)

अह भुंजिवि बद्धउ आउ कम्मु, अवगाहिवि सयलु वि सार सम्मु ।
छंडिवि विमाणु सो वेजयंतु[12], अहमिंदु चवे विणु दिट्ठि वंतु ।

---

1. क. णे
2. यणि
3. क. दिट्ठि
4. घ. धरह
5. घ. सिंहि
6. क. चंदि
7. कलणेहिं
8. ग. दंसणें
9. क. रम्मु
10. ख. ग. सिट्ठउ
11. घ. णाणें
12. ख. वैजयंतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पचमि दिणि चित्तहु[1] किण्ह पक्खि, ससि वेसुधरे विणु चारु रिक्खि ।
लक्खण देविहिं अवइण्णु गब्भि, णं चंदु पइट्ठउ सरय अब्भि ।
णं सुत्ति मज्झि सायं वु विंदु, पडिविंविउ सरवरि णाइ चंदु ।
णं पोमिणि दलतलि ठिउ[2] तुसारु, णं दंत कुंपि पारयहो सारु ।
णं सो जिणि लीणउं वेजयंति, ण सिद्धु बुद्धु[3] मोक्खहो[4] सिलंति ।
णं परमप्पउ णिय अंतरप्पि, सिद्धत्तणु णं भवियाण अप्पि ।
णं दव्वतव्वु जिण समय मज्जि, णं परम धम्मुदय चरणमज्झि ।
णं सच्च[5] वयणु मुणिगणमुहम्मि, णं पडिवण्णउं सज्जण जणम्मि ।
णं सुक्खु परिट्ठिउ धम्मवंति, णं कित्ति पसरु गुण दाणवंति ।
णं वग्गत्तउ णिरु पुरिसयारि, णं णिच्चु णेहुं वहु दाणसारि ।
जहं सुक्खें[6] एअच्छंति इत्थु[7], तह देउ परिट्ठिउ गब्भितित्थु ।

घत्ता—सुर दुंदुहि वज्जइ, तिहुअण गज्जइ, ता सुरहरिसें[8] पिल्लिय ।
णिय णिय परिवारें, दरिसियसारें, तहिं पुरवरि संचल्लिय ॥16॥

(17)

चउवीसइंद कप्पामराहं, वत्तीस जि सामिय विंतराहं ।
चालीस सक्क भवणामराहं, रवि चंदु जुवलु जोइसवराहं ।
ए आइवि णिय णिय वाहणेंहिं, दरसिय आहरण पसाहणेंहिं ।
अच्छर कोडाकोडीहि जुत्तु णियलच्छि रिद्धि णं भारभुत्त[9] ।
वेउव्वण दरिसिय वहु पयार, णिय वाहण पयडिव वेयसार ।
हय वारह कोडिउ सद्ध तूर, वरिसिय गंधोवय कुसुम पूर ।
आहवि पुरु तिपयाहणु करेवि, महसे णहुं मंदिरु अणुसरेवि ।

---

1. ख. ग. चत्तहु
2. क. थिउ
3. क. घ. सुद्धु
4. घ. मुक्खहु
5. घ. सव्व०
6. घ. सुक्खि
7. घ. एच्छु
8. घ. हरिसिं
9. क. घ. संभार भुत्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्खरण देविहि पार्यहि पडेवि, रयणाहर रिर्णहि पूया करेवि ।
महसेण पुरउ जोडे[1] वि हत्थ, पुणु भरणइं तुम्हि दुण्णि वि कयत्थ ।
दोहिवि जीवाविउ जीवलोउ, दोहिमि तय लोयहु हणिउं सोउ ।
दोहिमि[1] ढंकिय णरयांह[2] दार, दोहिमि संघडियउ भवियसार ।

घत्ता—इय वहु सुपसंसिवि, असुह णिहंसिवि, गन्भट्ठिउ जिणु संथुणिवि ।
हरिसें[3] णच्चंता पुलउ वहंता, गय सुरठाणहुं सुहु कुणिवि ॥17॥

इय चंदप्पहचरिए महाकइ जसकित्ति विरइए
महाभव्व सिद्धपाल सवण भूसणे ।
गब्भावयरणो णाम सत्तमो संधी समत्तो ।,7॥
(ग्रन्थ संख्या 160)

---

1. घ. जोरे
2. ख. दोहविं
3. क. रयण:हं
3. ख. घ. हरिसिं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अट्ठमो संधि

(1)

जंह जंह तहिं जिणु परिपुण्णदेहु, तहं तहं तहिं ववसिय किरण गेहु ।
देवी सा णं फलहिं[1] घडिया, णं अमयपिंडले विणु[2] मढिया ।
णं णिम्मल[3] पुण्णिहिं परियरिया, णं णिग्गय जिणु जस विच्छुरिया ।
णं गब्भ धवल किरणहें कलिया, णं सोक्खर सायण रसलुलिया ।
उअरिण[4] वलि तिउ भारेण भग्गु, णं जीवय जम्मु जरंत वग्गु ।
कम्में सहुं यण जुउ कसणवत्तु, मोहें सहुं उज्जमु मंद सत्तु ।
कोहें सहुं कंपइ पयहं चारु, माणें[5] सहुं भीणउं सरपयारु ।
संसारें सहुं भोयणु वि मंदु, कम्में[6] सहुं णट्ठउ वसण विंदु
णिद्दइं सहुं वट्टइ तिजय पुण्णु, आलसि सहुं धावइ समहं सिण्णु ।
धम्में सहु थणहरु होइ तुंगु, लोइं सहुं णिम्मलु होइ अंगु ।
जं भाइय सहुं दय वहु फुरेइ,[7] तेएं सहुं तउ[8] पसरणु करेइ ।
उवरें सहुं वट्टिउ मुवणणेहु, अंगे सहुं धवलिउ तिजय गेहु ।

घत्ता—इय सा गब्भालस, सुह भरलालस,[9] णाह णेह रस सत्तिय ।
दोहलय समज्जइ, जिणपय पुज्जइ, धम्म भाव वहु सत्तिय ।। 1 ।।

(2)

उप्पण्ण ताहिं दोहलय भाव घरि केलि पक्खि गोयण सहाव ।
वंदिहिं मिल्लिय अरियण कुलाइं, चिर मोयण परिसें संकुलाइं ।

---

1. ख. फलिहेहिं
2. ख. ग. वेंणु
3. ग. णिम्मले
4. घ. उयरिण०
5. ग. माणें
6. क. कामें, ख. कंम्मि
7. क. उरेइ
8. ख. ग. वउ
9. ग. ०लालल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
5273

अण्णु वि बंधइ णरयाहं दार संभीडण रक्खिय जणपयार ।
पिहुला वणि इच्छा सग्गवारि विहडावणि वंछा मुक्खदारि[1] ।
खीरोवहि सलिलें[2] भाविण्हाणु[3], रुच्चइ सुवण्ण कमलेसु जाणु ।
जाणइं सुरमउडइं[4] देमि पाय, मग्गइ तिहुं छत्तहं तणिय छाय ।
भावइ मित्तत्तणु हरि गयाहं, इच्छइ पडिवोहणु मइ हयाहं ।
तिहुयणि उज्जालउ अहिलसेउं, परमप्पहु लग्गउ मलु फुंसेउं ।
जाणइं जणु बोलमि अमियकुंडि, जाणइ सामु वरवमि अज्जखंडि[5] ।
जाणमि[6] पीयमि संतोस सारु, जाणमि[7] णिद्धाडमि कम्मं भारु ।
जाणमि जइ मोडमि कामवाण, जाणइं अवगाहमि पंचणाण ।

घत्ता—जे करइ मणोरह, मणवंछावह, ते सुरवइ संविपूरइ ।
जिणभत्ति गहिल्लउं, मणह पहिल्लउं, धाइवि दुक्खइं चूरइ ॥2॥

(3)

त णवमासिहिं परिपुण्ण देहु, णाणत्तय जुत्तउ पुण्ण सोहु ।
पोसहु एयारसि किण्ह पक्खि उच्चट्ठिय सयलहिं रायरिक्खि ।
देविए जणियउं जिणु धवलु वण्णु, सह सुट्ठुत्तर लक्खण पवण्णु ।
समचउरसु संठाणेण जुत्तु, पढमे संहणणें घडिय गत्तु ।
अंगुब्भव सोरह महमहंतु, सिय दुद्धधवल सोणिउं धरंतु ।
मलसेए वज्जिउ[8] विप्फुरंतु, लोअाहिउं वीरिय भरु[9] वहंतु ।
सयला हिय रूवें सिरि महंतु, पियहियवाणी संसारवंतु ।
तेइं सूई हरु भासयंतु, भुवणु वि तक्खणि उल्लासयंतु ।
अब्भयणिग्गउ णं वालसूरु, णं वारिणिहिं णिग्गउं अच्छपूरु ।
णं अरणिहिं जलण फुलिंगु दिट्ठु, णं धम्महो सुहफलु जणिउं इट्ठु ।
णं चरणहुं हूवउ परमु णाणु, णं सत्तहुं जायउ परमु दाणु ।
णं णाणहुं उवसमु हणिय कामु, णं समहु हुवउ सिव सुहु सुधामु ।
णं सिवहु हूउ णियरस[10] सहाउ, णं अप्प सहावहु परम भाउ ।

---

1. क. सुक्खदारिं
2. ग. सललिं
3. घ. भाइण्हाणु
4. घ. सुरमउडहिं
5. ध. भरहखंडिं
6. ध. जाणइ
7. ध. जाणइ
8. ख. मलसेइ विवज्जिउ
9. ख., घ. णिरु ०घ. लोयाहिउं
10. क. इवउं तिरियण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—ता हरि सिय तिहुअणु, णच्चिय सुरयणु, वाहिय लोयहं[1] णट्ठु गय ।
अण्णु वि सोयंतहं, करणुरु अंतहं,[2] जीवहं णट्ठा सयल भय ॥3॥

(4)

खोणिहिं उट्ठाइय मणिणिहाण,
णं दुच्छहु उप्परि करिय याण ।
फुल्लिय छह समयहं दुमह जाइ,
अट्ठारह धण्णिहिं पुहइ[3] भाइ ।
राएं वद्धावउ[4] अप्पतुल्लु,
अप्पिवि किउ णिय पुहवीहिं मुल्लु ।
णच्चहिं सिरि हरि मणि तुट्ठियाउ,
णिय पुण्ण मणोरह[5] पुट्ठियाउ ।
वायउ सीयलु तहि मलय वाउ,
गंधोवय विट्ठिहिं सुह सहाउ ।
जो रयणिहिं वरिसिउ तीस पक्ख,
सो धणउ मेहु सुर कुसुम लक्ख ।
वरिसइं अइदीहरधार जुत्तु,
वहु हरिस पुण्ण संभार भुत्तु ।
णिम्मलु जायउ तहि गयण मग्गु,
अइ धवलु धवलु हुउ[6] दिसिहिं वग्गु ।
इंदहं कंपिय सिंघासणाइं,
कप्पिहिं उट्ठिय घंटारणाइं ।
जोइस घरि जाया सिंघाणय,
विंतरघरि वज्जिय पडह धाय ।
वज्जइ संखावलि भवण ठाणि,
किं किं णहु कीरइ पुण्णखाणि ।

घत्ता—णिक्कारणु वज्झिय, मेहव गज्जिय, णिय णिय तूर सुणे विणु ।
णिय अवहि पउं जहिं, संसउ भंजहिं, मणि वहु हरिसु कुणे[7] विणु ॥4॥

(5)

णाणें जाणिवि उप्पण्णु णाहु,
सुरवइ गणुवहु भत्तिए सणाहु ।
उट्ठिवि णिय णिय सिंहासणाइ,
मणि भार किरणभाभूसणाह ।
तद्दिसि जाइवि पयसत्तजामु,
भूयलि लाइवि[8] सिरु किय पणामु ।
ता दाविय दुंदहि हरिगणेण,
आयण्णिय देविहि थिरमणेण ।
सोहम्मि[9] चिंतिउ णिय करिंदु,
वेउव्वि वि णं सिय गुरु गिरिंदु ।
आयउ जोयण लक्खिक्क माणु,
वत्तीस हिंवयणिहिं[10] भासमाणु ।

---

1. ख. लोयहु
2. ग. घ. ०यंतहं
3. ख. पुहवि
4. ख. बद्धाउ
5. क. मणोहर
6. ख. वलु हुउ
7. ख. घ. जणे
8. ग. घ. लाएवि
10. क. वयणिहिं
9. घ. सोहम्में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहो मुहि मुहि दंत वि अट्ठ अट्ठ, केलाससिंग सारिच्छ सिट्ठ ।
तहो दंति-दंति सरवरु विसालु, वत्तीसहिं कमलहिं अइ रमालु ।
णिय कमलि कमलि वत्तीस पत्त, दलि दलि णव्वहिं वहु हरिणणेत्त ।
वहु चमरहिं मंडिय बहुय कण्ण[1] तहिं मणि किंकिणि लक्खेहिं खण्ण ।
वहु णमिहिं मग्रजलु णिज्झरंतु, ससि सूरु वि घंटा जो[2] वहंतु ।
विज्जुलमाला णिह कक्खवंतु,[3] मणि पंचवण्णकं वलु वहंतु ।
वहु रयण पिट्ठ[4] अइ चित्त देहु, सव्वहं अयसय णाणाहं[5] गेहु ।

घत्ता—केलासु व जंगमु, चउपय संगमु, मेरु व जिण जसि धवलियउ ।
विंज्भु व हिमभारें, पसरिय सारें, आइवि णं णिरु सवलियउ[6] ।5॥

(6)

जे गिरि पमुहइं उवमाणु तासु, दिज्जहिं ते सव्वइं होहिं हासु[7] ।
जो हरिहिं पयावउ धवलु वण्णु,[8] तेयहो गेहु व सिय भार वण्णु ।
देवहं जिण भाउ व मुत्तिवंतु,[9] भावहं णं वेउ व सत्तवंतु ।
सत्तहं णिव्वाहु व कायवंतु, कायहं संघाउ व जीववंतु[10] ।
जीवहं पूरु व हंकार वंतु, हंकारहं तेउ व थामवंतु ।
थामहं आवेसु व लच्छिवंतु, लच्छिहिं अहिठाणु व गुण महंतु ।
गुण महिमहं वासु व कित्तिवंतु, कित्तिहिं संठाणु व दाणवंतु ।
दाणहं गेहु व सु विवेयवंतु, ...
सुपयासहं वासु व सिय दिसासु, सुविवेयहं णाणु व फुडु पयासु ।
वहुभेय पुट्ठि उब्भिभय सुकेउ, दिसि वयणहं मंडणु गय विलेउ ।

घत्ता—तं पिच्छि वि सुरवरु, वहुविहु अच्छरु, मणि संतुट्ठउ जायउ ।
लीलइं आरूढउ, हरिसें गूढउ, कुट्टय मज्झि परायउ ।।6।।

---

1. =वहुकर्णः
2. ग. जु
3. = कक्षायुक्तः
4. =तूर्णः
5. ग. ठाणाहिं
6. क. सवलिउं
7. = सर्वपर्वतानां हास्यं भविष्यति
8. = हस्ती इन्द्रप्रतापः इव
9. = जिन परिणाम इव मूर्तिवान्
10. = कायानां संघात इव जीववान्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(7)

कोडी सत्त वि अणु कोडि वीस, इंदणिय इत्तिय तहिं[1] गिरीस[2] ।
आरूढ मूलदेवीय[3] इत्थु, को संखेसइ[4] परिवारु तित्थु ।
तित्तिय तिय गणु[5] पडिहरिहिं चलिउ, बहु हरिस भत्ति भावेण कलिउ ।
सव्वहं कप्पहं संचलिय देव, णिय णाहिहिं सहुं जिण विहिय सेव ।
णिस्संखा जोइस चलिय सव्व, वितरगण चल्लिय गलियगव्व ।
भवणामर हल्लिय तक्खणेण, विज्जाहर धाविय सहुं मणेण ।
अइ पिहुलु वि णहु संकडउ जाउ, दिसि मग्गु वि हूवउ तुच्छ भाउ ।
वेमाणिहिं धासइ फुड विमाणु, जाणिहिं मज्जहिं फुडु सिविय जाणु ।
आहुट्टइ रहुरह[6] वरिहिं तित्थु, गयवरु छंडइ[7] गयवरहं पत्थु ।
छत्तें णिह सिज्जइ धवलु छत्तु, विंधि आलुद्धइ[8] विंधु गुत्तु ।

घत्ता—बहु पूआ पत्तिहिं,[9] ठिय सयववत्तिहिं, पूअपत्त णिह सिज्जहिं ।
बहु मंगलदव्वहिं, अवरिहि सव्वहिं, अवरुप्परु तहिं भज्जहिं ॥7॥

(8)

णहु छत्तिहिं दीसएं धवलवण्णु,[10] णं कोडाकोडिहिं ससिहिं छण्णु ।
धयवडिहि[11] मंगलक्खेहिं किण्णु, चमरिहिं ससिकइ जालेहिं पुण्णु ।
णीलुप्पलु मउ[12] सीयरि चएहिं,[13] रंभा घडियउ कयली सएहिं[14] ।
रविकुल संकुलु[15] कणयहु[16] कुडेहिं[17], जउणा संकडु[18] मरगय पडेहिं ।
कुरू विंदहि णं अरुणेहिं भाइ[19], महणीलिहिं मह अंधारु णाइ ।

---

1. क. तिहं;
2. ग. णिरास; = ईर्ष्या रहितः;
3. = इन्द्राणी;
4. = संख्यां करोतिः,
5. ख. गुणु;
6. = रथः रथेन संघट्टते;
7. ग. छट्टइ;
8. क. आलुरिवि, घ. आलुझिवि;
9. क. तूया० = पूजापात्राणि;
10. = नमो छत्रे- कृत्वा उज्जवलं जातम्;
11. ग. धयवर्डहि;
12. = नीलोत्पल निष्पन्नं,
13. = छवीससमूहैः,
14. = कलिः इन्द्रणीव तया घटितं नमः,
15. = सूर्य समूह संकटम्,
16. ग. कणयहो,
17. = सुवर्ण चुम्मैः,
18. = यमुना नदी संकटम्
19. = रक्तनेत्रैः केलिशनैः कृत्वा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ससिकंतिहिं णावइ चंदखित्तु, वेरुलियहिं णावइ हरियगुत्तु ।
संझाकालु व विद्दुमहं पुरु, रयणिहिं णहमण्डलु णाइ सूरु[1] ।
सुरकुसुमहिं मालहिं कंतु णाइ, गंधिहिं सोरहं संछण्णु भाइ ।
दुंदुहि सद्देणं पिहुल थाइ[2], गेयं णं कल्लोलेहिं जाइ ।
णच्चेणं सयलु वि णच्चवंतु, भारेणं सयलु वि तलिल्ह संतु ।

घत्ता—चउ सुरहणिकायहिं, गयणि अमायहिं, बंभंडु वि तहं पूरियउ ।
जहं वाहण देवहिं[3], कयपहुसेवहिं, संकडु मग्गु वि सूरियउ ॥8॥

(9)

कुवि सुरु पभणइं लहु मग्गु देहि, महु[4] सीहहो गयवरु दूरि णेहिं ।
कुवि पभणइं केसरि करहिं दूरि, सरहिं हउ[5] पच्छा मावि सूरि ।
कुवि पभणइं हरिणु म आणि पासि, महु दुट्ठहु[6] वग्धहो दूरि णासि ।
कुवि भणइं म पिल्लहि भाइ इत्थु, सेरहं[7] अग्गइ हरि जाइ कित्थु ।
कुवि भणइं वसहु चित्तयहु टालि[8], उअरहु[9] मलेवि मासूलु[10] चालि ।
कुवि पभणइं संदणु दूरि किज्ज, आणिवि गय उप्परिमाधरिज्ज[11] ।
कुवि भणइं मेहु वयहु णसाडि[12], मा उप्परि आणिवि मूढ फाडि ।
कुवि भणइं सप्पु परमग्गिणेहि, मा गरुडहु आणिवि मुहिं करेहिं ।
कुवि भणइं हंसु संकडि म धल्लि, मज्जारु गिलेसइ सीलु पेल्लि ।
कुवि भणइं मोरु तुहं अइरमालु, पुणु मज्झु सुणहुं[13] णियडउ करालु ।

घत्ता—किवि भणहिं सुरेसर, वहुवाहणधर, अम्हि पत्थइ जाए सहुं ।
पइसिवि अइ संकडि, पाडिय धयवडि, णहु वाहणइं गमेसहु ।

(10)

इय जहं जहं पुरि आसण्णहुंति, तहं तहं सुरवाहण लहुय थंति ।

---

1. =मालिभिः व्याप्तं नभः
2. क. वा इ
3. =वाहन देवैः
4. क. महों,
5. =अष्टापदैः हतः
6. क. दुट्ठहो, ध. दुट्ठहु
7. क. सरहं
8. चित्रकात् दूरं करु
9· सर्पात्
10. ख. उवरहो नकुलः
11. =गजोपतिमाधारयः
12. वातात् दूरी कुरु
13. =स्वानः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आइवि तहिं पुरि किय कुसुम विट्ठि, गंधोवय रयणिहि जणिय सिट्ठि ।
दुंदुहि[1] अप्फालिय कय विसेस, तूरत्तउ[+] पवर्डाहि सुरवरेस ।
ता इंदाणी सइं उत्तरेइ, णियकज्जहो अवसरु मणि धरेइ ।
आइवि वद्धाविउ जिणहु[2] ताउ णियहहं[3] किउ मंगलहं[4] भाउ ।
जाइवि सूई हरि भत्ति जुत्त, दिट्ठी[5] लक्खण देवी सपुत्त ।
दिट्ठउ परमेसरु तिजयणाहु, कप्पूर धवल सोहा सणाहु ।
रोमंचकंचु हुउ सयलु देहु, लोअणजुउ[6] णं सावणहं मेहु ।
हिय उल्लउ हरसिं[7] पूरियऊ, वहुलोयण हेउ विसूरियउ[8] ।

घत्ता—जिण मायरि संसिवि, कुलु वि पसंसिवि, माया सुउ तहिं अप्पि वि ।
जिणणाहु लएप्पिणु, हरिसु वहेप्पिणु, पुणु रवि गयणु वि सप्पि वि ।10।

(11)

अप्पिउ सुरणाहहो परम देउ, जय जय भणेइ हरिगणु सुसेउ ।
करकमलइं मउलइं सुरहं सत्थु, अहिणउ पिच्छिवि[9] जिणचंदु तित्थु ।
सुरणायणइं पूरइ हरिस वाहु, जगि दुल्लहु जिण दंसणहं लाहु ।
सुर पभणहिं घण्णउं सहसचक्खु, सहसक्खु वि सेसक्खिहिं[10] समक्खु[11] ।
से सुवि[12] तहिं दुत्थिउ[13] हुउ पेक्खि, कहं होइ तित्ति अवरहं समिक्खि ।
णयणाहिय लक्खण पिक्खि सक्कु, अणिमिस लोयणु होए वि थक्कु ।
देवंग पिहिय सुक्खरि सिरम्मि, सक्कें संठवियउ कोमलम्मि[14] ।
ईसाणें धरियउ धवलु छत्तु, पिंडे[15] वि तासु जिण जसु पवित्तु ।
साणक्कुमार माहिंद णाह, चामरढालणि जाया सणाह ।
जे अवर पवर देवाहं णाह, ते करजोडिवि ठिय सेवगाह ।

घत्ता—इय तहिं सोहम्में, माणिय सम्में, अइरावइ संचालियउ ।
सीयर आसारिहिं, मयजलधारिहिं, णहपहु पुरउ करावियउ[16] ।।11।।

---

1. ख. ग. दुदुहे
2. ग. जिणहों, घ. जिणहुं
3. ग. हच्छह
4. क. मंगलह
5. क. ग. दीट्ठी
6. ग. लोयण०
7. ख. घ. हरिसें
\+ = गीत नृत्य वादित्राणि
8. = बहुनेत्राणि यदि भविष्यन्ति तदा जिनस्य रूपं सर्वं पश्यामि इति विषादं कृतं ।
9. ख. पुच्छिवि
10. क. सेसार्कहि
11. = सहस्राख्य शेषनेत्रैः रूपं पश्यति,
12. = धरणेन्द्रः
13. घ. दुत्थिउ,
14. = कोमलवस्त्रादिछादिते
15. घ. पिंडि एकीकृत्य
16. = नभपंथाने पुरकारापितः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(12)

ता चल्लिय चारिवि सुरणिकाय, भूमंडलु ढंकइ धयहं छाय ।
बहु जाणहिं गयणु ण कहवि दिट्ठ, जंगमु मुअणत्तउ णाइं सिट्ठ ।
जोयणसयसत्त वि णउव[1] जाम, महि छंडिवि तारा दिट्ठ ताम ।
तहं उप्परि रवि जोयण दहेहिं, चंदु वि असियहिं दिट्ठउ सुरेहिं ।
णक्खत्तइं चहुं चहुं बुह पहाणु, तिहं सुकुतिहुं जि सुरगुरु सुजाणु ।
तिहुं मंगलु तिहुं पंगुलह[2] ठाणु, तहु अग्गइं सुद्धउ णहु वियाणु ।
उडुगणु सुरकरि सीयर सरिच्छ, पसरिय मण्णिज्जहिं गयणि अच्छ ।
णहणइ रत्तुप्पल[3] भंति मूढ, कुवि सुर करि केली भावगूढ ।
आइच्चवि वि[4] तहं खिवइ हत्थु, जहिं पिच्छिवि विहसइं सुरहं सत्थु ।
दुंदुहिरव तट्ठउ ससि कुरंगु, ता णिम्मलु हूवउ तासु अंगु[5] ।
सुरणारिहिं संकिवि मुहहु तुल्लु, आणिवि अप्पिउ सइं हरिणु मुल्लु ।
तह गेएं णिच्चलु कियउ तासु, जहं चंदहो छंडुइ णेय[6] पासु ।

घत्ता—इय णह पह मुंजिहिं[7], सुरहं मण्णुज्जहिं, वेएं णहु अइकंतउ[8] ।
ता दिट्ठउ मंदरु, बहु सिरि[9] सुन्दरु, सम्मुहुं णं आवंतउ ॥12॥

(13)

सुरगिरिणा पिक्खिवि तिय समेय, माणिक्क दित्ति दीविय सुतेय ।
णिज्झरण तुसारिहिं छडय देय, सुरतरु कुसुमेहिं पयरइं भरेइ ।
मणिसिलसिंघासणु पाय डेइ, चमरी पुंछहिं चामर खिवेइ ।
वायं दोलिर[10] तरु मिसि णमेइ, थल कमलिणि तलि णइं[11] संठवेइ[12] ।
करिभंजिय चंदण इसु पुरेइ, कप्पद्दुम दलचीरइं धरेइ ।
मयणाहिहिं परिमलु विक्खरेइ, मारुअ[13] हल्लिय ताडिहिं णडेइ ।
कोइल झुणि गेयइं पायडेइ, मारुअ[14] पूरिय वंसिहिं रणेइ[15] ।
दुंदुहिं पडिख दुंदुहिं[16] हणेय, लोलिर लयाहिं पडिहारु[17] होइ ।

---

1. घ. णउअ
2. = शनिः
3. = नभ एवं नदी कमल
4. ग, वें,
5. चन्द्रस्य शरीरम्
6. घ. गेइ,
7. ग. नेय,
8. घ. बुज्झिहिं,
9. = अतिक्रान्तः, उलंघितः,
10. घ. विह,
11. क. ख. वातं दोलिल
12. क. तणइ
13. = थल कमलान्येय शप्य स्थापयतीति मेरुः
14. घ. मारुय
15. ख. घ, हल्लिर
16. = शब्दयति
17. = मरुः प्रतिहांर करोति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पभणइं कूरहं मारहउ कोइ, ---- ---- ---- ---- ---- ---- ---- ----
सुरतरु कलियहिं रोमंचि अंगु, देवहिं दिट्ठउ मंदरु-सरंगु ।

घत्ता—उज्जल सोवण्णिहिं, घडिउ सुवण्णिहिं, वहुविह रयणिहिं संजडिउ ।
सच्चउ भूणारिहिं, तिहुअणसारिहिं[1], उरयलि पदकु व संघडिउ ॥13॥

(14)

जो भूयो म्हुणं वीयकोसु[2], उवरिट्ठिय घण अलि जणिय तोसु ।
फणि भवणहो सिरि णं कणयकुंभु, णह[3] गगधवल[4] धयवड[5] वियंभु ।
णं धम्मकरिंदिहो हेमथंभु, रविससि चामर जुअलिहिं अदंभु[7] ।
णं णहसिरि करि[8] इहु माहुलिंगु, उप्परि घणपत्तिहिं अइसुरंगु[9] ।
णं दियवउ[10] इहु किउ मोक्खमग्गि, णं कणयणि सेणी चउग्ग सग्गि ।
तसणाडि वंस मज्झम्मि दिट्ठु, गोरोयण पिंडु[11] व णाइं सिट्ठु[12] ।
णं सग्गणिहाणु व सघर हिट्ठु, वहु हेमकोडि संजणिय सिट्ठु ।
णं रोदसि पंजरि चक्कवाउ[13], णं णहमूकीलण कील भाउ ।
णं जिणवरण्हाण सुवण्णपीढु[14], वहु गहमुत्तिय रंगालि लीढु ।
णं जयकडिसुत्तहो कणयखेल, उडुगण रयणिहि मंडिय सुमेल ।
णं दहदिसि वेल्लिहिं पिंगु कंदु, इय दिट्ठउ सुरगिरि तेय रुंदु ।

घत्ता—सुरतरु मय रंदिहि, परिमलु रुंदिहि, जो णं पिंजरु जायउ ।
अह जिण जलण्हाणिहिं, घुसिण समाणिहिं चिरु लिंपिउ सच्छायउ ॥14॥

---

1. ग. तिहुयण०,
2. कवलपोकरी मंजरी मध्यप्रदेशः
3. आकाश-गंगायाः पूजापट्टः,
4. ख. दडी,
5. घ. धय धवड,
6. ग. घ. जुयलिहिं,
7. =मायारहितो मेरुः,
8. हस्ते,
9. ख. घ. सरंगु,
10. ग. घ. दीवउ,
11. =गोरोचन पिण्डु इव,
12. ग. सिद्धि,
13. =आकाशपृथिव्योः पंचरे चक्रवाक इव मेरुः,
14. ग. सुवण्णवीढु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(15)

तहुं[1] उप्परि पंडुय[2] वणु रमालु, जोयण सय पंचहिं जं विसालु ।
छहिं ऊणिहिं सुरतरु जाय[3] छण्णु, चउदिसि चउ चारु सिला पवण्णु ।
पंडुय सिल तहिं ईसाण कोणि, उत्तत्तकणय किरणाह खोणि ।
अद्धेंदु सरिच्छी पीयवण्णु, जोयण सउ दीहत्तणि पवण्णु ।
जोयण पंचासजि वित्थरेण, अट्ठ जि जोयण उदयत्तणेण ।
सिंहासण तिण्णि जि णिच्चतित्थु, मणिमय पभणइं जिण समय सत्थु ।
धणुसय पंच जि उदयेण हुंति, पंच जि धणुसय वित्थरिण थंति ।
उप्परि तहो अद्धहिं ठिय विसाल, बहु रयण चित्त सोहारमाल ।
तहिं आविवि सुरगण जिणसणाहं, दुंदुहि सरवहि रिय भुवण णाह ।
सुरगिरिहिं पयाहि ण विहि करेवि, चिरण्हव[4] णं विहाणइ[5] संभरेवि ।

घत्ता —ता वायकुमारिहिं, वहु परिवारिहिं, तहिं रयपडलुउ[6] सरियउ ।
णिम्मलु आदरिसहु, पयडिय हरिसहु, सण्णिहुं[7] भूयलु कारियउ[8] ।15।

(16)

गंधोवड वरिसि वि घणकुमार, कुंकुम रस लिप्पहिं भत्तिसार ।
कणदेविउ तहि कुसुमइ खिवंति[9] मुत्तिय रंगावलि णिरु भरंति ।
ता इंदें हत्थिहिं जिणवरिंदु, उत्तारि वि णं अकलंकु चंदु ।
विणि वेसिउ मज्झिमि सिंहवीढि, कोमल सुरवडि[11] अवछाड लीढि ।
दाहिण सिंहासणि पढमु सक्कु, वामइं ईसाणहुं इंदु थक्कु ।
अवरहं कप्पहं जे देवणाह, ते छत्त चमर धारण सणाह ।
चउभेय[12] तूरवितर सुरेस, वायहिं[13] पयट्टिय भारह[14] विसेस ।

---

1. क. तहो, घ. तहु, 2. क. पंडुव
3. ग. जाल, 4. =पूर्वजिनस्नानविधानेन
5. ग. घ. विहाणे 6. = रजसमूहः
7. क, ख. सन्निहु 8. घ. करावियउ
9. =मेघकुमार, 10 ख. खिवेंहिं,
11. = वस्त्रः
12. घततं वीणादिकं वाघं इत्यादि चतुर्विधं,
13. ख. वायहें 14. =संगीत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भुवणेसर गायण पइणिसण्ण, एउ सावि परिट्ठिय जोइ धण्ण ।
दिसिपाल केवि पडिहार जाय, सोवण्ण दंड विप्फुरिय काय ।
देवंगण गण मंगल भणंति, दिसि कण्णउं मगलकरि फुणंति ।
वहु धूव धूम पायउण सार, तहिं जाया णरु अग्गिय कुमार ।
अवर वि जे केइय देवसत्थ, ते पंतिकरणि जाया कयत्थ ।
देविंहि सेणी किय मिलवि ताम, सुरगिरि खीरोवहि मज्झु जाम ।
दोसेणिउं[1] दो सक्कहं णिबद्ध[2], खीरोवहि जलु आणणि सुसिद्ध ।

घत्ता—इय मिलवि सुरेंदिहिं, वहु आणंदिहि, ण्हवण करणु पारद्धउ ।
णिय रिद्धि पहावें, णिम्मल भावें, जारि सुणिय सिरि सिद्धउ ।।16।।

(17)

ता देविंहि करि किय कणयकुंभ, बहुगंध कुसुम मंगल वियंभ ।
जे बाग्ह जोयण उदय तुंग, पिहुलत्तणि जोयण अट्ठरंग ।
मुहं वित्थरु जोयणु इक्कु[3] जाहं, को तहि संखा जाणेइ ताहं ।
हत्थहु हत्थें संवरहिं ताम, खीरोवहिं[4] जिणवर अंगु जाम ।
दाहिण सोणिहिं सोहम्मु लेइ, वामहिं ईसाणेंदु वि झिलेइ[5] ।
दुण्णि वि कप्पेसर जिणु ण्हवंति, वहुभत्तिभार[6] णरु पायडति ।
णिय हत्थिहिं ढालहिं कलस लक्ख, कप्पूरपूर परिमल परिक्ख ।
तेत्तिव[7] सलिलिं[8] वालु वि जिणिंदु, णहु खुहिउ माण गुवि णं गिरिंदु ।
खीरोवहि जलु खीरहो समाणु, जिणकंति मिलिउ अइतेय ठाणु ।
णं[9] मंदिरु जायउ धवलवण्णु, णं फलिह घडिउ केलास वण्णु ।
णं पिंडिय सयलु वि हिमहो सेलु[10], णं भुवणहुं मुत्तिय एक्कमेलु[11]

1. =द्वे श्रेणीबद्ध
2. =सौधर्मेशानौ निबद्धौं
3. घ. एक्कु,
4. घ. क्षीरोवहि,
5. ख. विलिलेइ,
6. ख. ०भत्ते०,
7. क. तत्तिय,
8. ख. घ. सलिलें,
9. क. तं, ख. तें,
10. =हिमाचलाः पर्वताः,
11. =भुवणस्य मुक्ताफलाः एकत्रीकृताः,
12. क. ख. घ. संख,
13. घ. पडिउ,
14. चन्द्रकान्तिमाणिभिः जटितः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णं सक्ख[12] करय कप्पूर घडउ[13], णं चंदकंति खीलेहिं जडिउ[14] ।
णं पारयं लित्तउ हेमपिंडु, णं पिंडउ घिउ[1] जिण जसहं खंडु ।

घत्ता—णं णिम्मल चंदहिं, जुण्हारुंदिहिं, सव्विहिं सुरगिरि ढंकियउ[2] ।
अह जुय बहु पुण्णिहिं,[3] जिणपयपुण्णिहिं, आइवि णं परिअंकयउ[4] ।।17।।

(18)

जय जय पभणंतिहिं सुरगणेहिं, गंधोवउ वंदिउ सुहमणेहिं ।
जं सयलताव संहारठाणु, जं चिर बहुजन्म मलाव साणु ।
जं संचिय बहुरय पडलणासु, जं सयल लोइ संघाय तासु ।
जं भुवणरज्ज अभिसेयतुल्ल, जं सुक्खमहाफल जणण फुल्ल ।
जं सयलरूव सोहग्ग हेउ, जं सयल विजय संठाणकेउ ।
जं धम्मवल्लि पल्लव[5] णमेहु, जं णिम्मल गुण-गण केलिगेहु ।
जं सग्गलच्छि उवभोयधम्मु, जं सयलहं धम्महं सदय[6] कम्मु ।
जं सव्वहं दयभावहं त्रिवेउ, जं सयल विवेयहं जइण[7] होउ ।
जं जिणहेउं मिच्छत्तहाणि, जं मिच्छाहाणिहिं जइणवाणि ।
जं जिणवाणिहिं दिढकम्मछेउ, जं कम्महो छेयहु गंठिभेउ ।
जं गंठिहि भेयहो काललद्धि, जं कालहो लद्धिहिं दव्वसुद्धि ।
जं दव्वहो सुद्धिहिं भव्वभाउ, जं भव्वहो भावहु णिय सहाउ ।

घत्ता—तहिं काल मणाहरि, सुरगिरि उप्परि, जं गंधोवउ वंदिउ ।
सुरगणु तें णिज्जरु, ठिउ बहु अच्छरु, अमरत्तणि अहिणंदिउ ।।18।।

(19)

ता सक्कं पविसुइ णिब्भिणणइं, हुअइ[8] मणोहर णाहहो कण्णइं ।
मणिमय कुंडल जुअलें[9] मंडिय, णं ससि सूरें सइं अवरुंडिय ।
रयण घडिउ सेहरु सिरि वद्धउ, जं भुवणत्तय सारसमिद्धउ ।
उरयलि हारदाम अवलंविय, मज्झहो सुयवीय[10] व पडिविंविय ।

---

1. क, ठिउं, 2. ख. ढंकिउ,
3. =दीप्तिबहुपूर्णैः जिनपादपुण्यैः, 4. घ. परियंकिउं
5. क. पवण०, 6. घ. सुदयकम्मु
7. ग. घ. जोणि 8. ग. हुयइ,
9. घ. युयुलिं 10. =घ. सुयव =यज्ञोपवीत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मणिकिंकिणि मेहलकडि संठिय, णं मंदिरि गहपंति परिट्ठिय ।
कंकण केयूरहिं बाहुजुअलु[1], मंडिय रयणावलि कंति सवलु ।
करसाहा मुद्दिय बहुरमाल, रमणच्छलि ठिय पालंबमाल ।
मय जुअल चारु णेउर महंतु, अप्पु बलच्छि सोहा वहंतु ।
देवंग चीर संछण्ण[2] गत्तु, मंदारमाल संभार मुत्तु ।

घत्ता—इय वहु आहरणिहिं, पसरिव किरणिहिं, सुरणाहहिं सो पुज्जउ ।
णियलच्छि पमाणें, मण उवमाणें, णिम्मल पुण्णु समज्जिउ ॥19॥

(20)

जग मंडणु मंडिवि मंडणेहिं,[3] ....
जग चंदणु चच्चि वि[5] चदणेहिं जग भूसणु भूसिउ[4] भूसणेहिं ।
जग सोरहु[6] साहिवि सोरहेहिं,[7] जगमंगलु माणि वि मगलेहिं ।
जग रंगहु लाइवि घुसिण रंगु, जग तिलयहु कारि वि तिलयभंगु ।
जग विंधहु उब्भिय विंधपत्त, जग छत्तहु धारिवि धवल छत्त ।
.... जग रयणहो रयणंवरु ठवे वि ।
जग गेयहु गेयइं[8] पायडे वि, जग दीवहो णीरायणु करेवि ।
जग पुज्जहो पुज्जाविहि चरेवि, जग उत्तमु उत्तम पय धरेवि ।
जग णाहहु सीसत्तणु सरे वि, जग सेवहु सेवाभरु करेवि ।
जग कित्तिउ कित्तिहिं वित्थरेवि, जग पणमिउं वहु पणमिहिं णवेवि ।

घत्ता—ता सयलु वि, सुरवर सिरि, संठियकर, थुवणइं सइं पारंभहिं ।
णिय बुद्धि पहावें, णियमयभावें, अइ वहु भत्ति वियंभहिं ॥20॥

(21)

जय जय परमेसर सिद्धबुद्ध, जय परमप्पय णिय भाव सुद्ध ।
जय भावाभाव सहावभाव, जय जाणिय णेम्मल फुडु सहाव ।

---

1. ग. पयजुयल०
2. क. सच्छण्ण
3. क. मंडणाहिं
4. ग. भूसिवि
5. क. चच्चिउ
6. ग. सेरुहे
7. ग. सेहरेहिं
8. ग. गेयइं, घ. गीयइं (गीतानि)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जय अप्पमेय परमप्प माण, जय सत्तभंगि विण्णाण ठाण ।
जय परम परंपर परमबोह, जय समरस णियरस जणिय सोह ।
जय सयल अमल अकलंक देह, जय केवल सयल कलाहं गेह ।
जय अजय अजर अजरामरेस, जय भाविय परम कला विसेस ।
जय अभय[1] अभाव अभेय रूअ, जय जाणिय दव्वट्ठिय सरूअ ।
जय णिहुअ[2] णिरंजण जोइणाह, जय रव विय दुक्ख संसारदाह ।
जय परमवंभ वंभाणवंभ, जय णिह णिय मोह महा वियंत ।
जय ईस विसेसर परमणिच्च, जय पयडिय जीवाजीव तच्च ।
जय विस्सरूअ[3] विस्सिक मुत्ति, जय जाणिय सुद्धायारजुत्ति ।
जय कारण करणातीदणाण, जय णाणें हविय मुणिय पमाण !
जय उवसम वीरिय एय ठाण, जय कामय[4] रयणत्तय णिहाण ।
जय सव्वहं तेयहं परमतेय, जय णिह णिय वहु मिच्छत्त भेय ।
जय परमझाणि झाणहं दुलक्ख, जय जीवहं[5] पयडिय पयउ मोक्ख ।
जय करुणा सायर गुण महंत, जय जय जग सामिय सहज संत ।

घत्ता—इय थुणिवि जिणेसरु, वहुगुण गणहरु, अइ हरिसें पडिवद्धउ ।
सुरवरहं णिकायइं,[6] पसरिय कायएं, सइं तंडउ पारद्धउ ।।2।।

(22)

वेउव्वि वि णच्चहिं सुरवरिंद, पय सक्खं पाविय गिरिवरिंद ।
दीहर हत्थिहिं हयचंद सूर, कर अंगुलि पाडिय जोइ पूर ।[7]
इंदहु इंदहु सह सिक्कु हत्थु, दीहत्तिण लंघिय दिसहं सत्थु ।
भमि वारिय हत्थिहिं विलुंपिय,[8] भारें सत्त वि भुवणइं कंपिय ।
णिसमइं[9] मेरु[10] वराहु[11] धुरुक्कहु, कुम्भ करोडि मुडइ फणि लुक्कइ ।

---

1. क. अभव
2. क. णिहुय
3. ग. विस्सत्तूव
4. घ. कामद
5. क. जीवह
6. क. णिकायइ
7. ज्योतिषी देवा:
8. क. विलुंविय
9. क. णिसमइ
10. =खेदयति मेरु
11. =सूकश्चलति चपलो भवति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिग्गय दंत पडंहिं महि डुल्लइ, कुल गिरि मूल बंधु दिढ हल्लइ ।
सायर सत्त वि महियलु रिल्लहिं, वेलंधर[1] धाइ वि जलु पिल्लहिं ।
भुवण भंड उत्तरुडि ढलक्कइं,[2] दिसि चक्कु वि णिय ठियहिं सलक्कइं ।
गयणु विणां सव्वच्छवि फुट्टइ, वायवलय वंधुवि णां तुट्टइं ।
अइ वेएण सुरिंद भमंता, तिहुवण चक्कु व णिरु फेरंता ।
विंभय भय हरिसें जगु पूरिउ, दिसिपालहिं[3] किर जाम विसूरिउ ।
ता अयसय सर जलिहिं[4] णिलुक्कउ, सुरवर णिच्च वि णिच्चल थक्कउ ।

घत्ता—तंडउ णच्चंतहं, हरिसु वहंतहं, जो रसु तहि संजायउ ।
सो णहु* वण्णंतहं, सुरहं कहंतहं, णिय हिययम्मि समायउ ॥22॥

(23)

ता खीरोवहि तलु णिज्जलेवि, मलयाचलु सिल सेसउ करेवि ।
णंदणवणु णिम्मि वि डालसेसु, अगरुहो वणु कारिवि खय पएसु ।
कप्पूर घुसिण आकर पएस, ते सव्वि वि कारवि[5] णामसेस ।
पूऊ वरणइं[6] थोवइ ठियाइं देवहं चित्तइं अइ वित्थराइं ।
हिययइं[7] लहु अइं[8] अइसंकडाइं हरिसइं अइविच्छर लंपडाइं ।
हरिसइं थोडइं बहु भत्तिभारु, भत्तिहिं विंभउ अइबहुपयारु ।
विंभउ थोडउ[9] जिण गुण अणंत, ता पिच्छिवि[10] पिच्छिवि तण्हवंत ।
ता कहवि कहवि सोहम्मणाहु, णिय करिवर कर सारिच्छवाहु ।
मिल्लिवि विंभिय मुच्छा विसेस, आलोइ वि सयल वि सुरवरेस ।
गिण्हइ[11] करकमलहिं जिण वरिंदु, आरोहइ लीलइं करिवरिंदु ।

घत्ता—ता चल्लिय सुरवर, वहुदुंदहि सर, जिण णयरम्मि पहुत्ता ।
बहुमंगल पुण्णउं, लच्छिरवण्णउं, रायहो घरु संपत्ता ॥23॥

---

1. =देवा:
2. ख. ढलक्कवइ; क. ख. ढलक्कहिं
3. =दिग्पाला:
4. =समुद्रवेलाजले
*=स्वामी
5. क. कीरिवि, घ. कीरवि
6. क. ० णइं
7. क. यइं
8. ग. यइ, घ. यइं
9 क. थोडव, घ. थोवउ
10. क. विच्छिवि
11. क. गिण्हइ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(24)

अप्पि वि जिणु पियरहं[1] लच्छिवंतु, आहरण किरण जालिहिं फुरंतु ।
चंदु व पडिहासइ जेण धामु, चंदुप्पहु त्ति तें कियउ[2] णामु ।
अक्खिवि पियरहं[3] इय णामु तासु, सुरगण संगय णिय णिय अवासु ।
दिणि दिणि परमेसरु णाणवंतु, जग हरिसें सहुं वट्टइ तुरंतु ।
वामकरहो अंगुट्ठउ धावइ, तहिं पीऊसहो णिज्जरु पावइ ।
माया पियरहो किं कुणइं[4] तासु, सुरवर दासत्तणु करहिं जासु ।
अकलंकउ चंदु वि विद्धिवंतु, णं कप्पं विव कंदलु ललंतु ।
णं धम्मवीय अंकूर दंडु, णं णाणकमल विस सरल कंडु ।

घत्ता—इय वट्टइ वालउ, णिरु सोमालउ, तिहुअण[5] जण मणहारउ ।
बहुलक्खण वंतउ, लच्छि महंतउ, गुण गण सोहा सारउ ।।24।।

इति सिरि चंदप्पहचरिए महाकइ जस कित्ति
विरइए महा भव्वसिद्धपाल सवण भूसणे
जम्माहिसेउ णाम अट्ठमो संधी
परिच्छेउ समत्तो ।।8।। ग्रंथ संख्या 264।।

---

1. क. णह
2. घ. तं
3. क. पियरह, घ. पियरइ
4. क. तिहुयण
5. घ. किं कुणहिं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णवमो संधि

(1)

आविवि[1] वहु देवकुमार तित्थु, सिसु जिणु खिल्लावहिं[2] सुहकयत्थु ।
ता कमि कमि चल्लइ वालु णाहु, कोमल दीहर[3] विसकंड वाहु ।
थिर कंपं तापइं दितु भाइ, अइ भरु सेसहो[4] संकेइ णाइ ।
किवि कंदुअ लीला[5] पायडंति, किवि अग्गइ सिसु वाहण हवंति ।
किवि धंतहो वालहो पुरउ थाइ[6], किवि वइ[7] संतउ[8] वइ सेविथाइ[9] ।
किवि जलकीलंतहो सहरमंति, णिय छाय[10] व सुर इय अणुसरंति ।
अह णिसु दिव्विहिं भोएहिं सक्कु, सेवंतउ[11] णउ कइया वि थक्कु ।
परमेसरु मेल्लइ[12] वाल भाउ, परियाणइं फुडु विज्जा सहाउ ।
पणवाइय अक्खर[13] संभरेइ, सद्दागम सयल वि परिचरेइ ।
वहु भेयगंथ मणि वित्थरेइ. चउविज्जा[14] वहि पारुत्तरेइ ।
वालू वि परमेसरु तिजयणाहु[15], वहु णिम्मल कलसोहासणाहु ।

घत्ता -- ता ठिउ तरुणत्तणि, रंजिय तियमणि, रूवहु रूउ वि जायउ ।
अह जुव्वणु[16] तारुण्णहो[17], णिरु संपुण्णहो, तेयहु तेउव आइउ[18] ॥1॥

---

1. ख. घ. आइवि,
2. ख. खेल्नावहिं,
3. = गंधूला नाली अथवा कमलक नाली,
4. घ. सेसुवि = धरणेन्द्र शंकां करोति इव,
5. ग. कंदुय = कंदुकदण्डी,
6. घ. धांहिं,
7. ख. घ. नय
8. घ. संतहु,
9. ख. सेवितांहिं,
10. = निज प्रतिबिम्वं इव,
11. ख. घ. सिवंतउ,
12. ख. घ. मिल्लइ
13. = ओंकारादि अक्षर,
14. = प्रथमानुयोगादि,
15. ख. घ. तिजगणाहु,
16. घ. जोव्वण,
17. ग. तारुण्णहु,
18. घ. आयउ,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(2)

विंवरम्मुहं सिरि कुंतल कलाउ, णं जिणदिट्ठिहिं ठिउ तम[1] कलाउ ।
चित्तु व अइ वित्थरु भालु तासु, सुत्तु[2] व लोयण णिम्मलु पयासु ।
बुद्धि व सरली णासा विहाइ, मुह सोरह[3] लोहें णमिय णाइं ।
णिज्जंती[4] मायावल्लि णाइ, तहु सिय वंकिय भूवल्लिणाइ ।
णिम्मल मइ वीउ व दसणहीर[5], अइवहुल किरण चंदिण गहीर ।
हिययहु उग्गिण्ण[6] वरायभाउ, बिंवाहरु इय सोहा सहाउ ।
तिहुअण[7] मण पासु व तासु कण्ण, अह दय रव महिं[8] डोलय रवण्ण ।
धम्मं हि व डालि व बाहुदंड, अहं णरयदार परिघ व पयंड ।
धम्मं हि व पल्लव णाइ हत्थ, अह सम सररत्तुप्पल पसत्थ[9] ।
केवल णाणु व अइ पिहुलवत्थु, अहवा णियगुरु अत्तण[10] सरित्थु[11] ।
संसारु व खीणउं तासु मज्झु, माहप्पु व उंडउ[12] णाहि गुज्झु ॥
जस पसरु व पिहुलउ णिरु णियंवु, कोमल परिणामु व ऊरु विंवु ।
तिहुअण सिरि कमलु व चरणपोम, पय णहं मंदह[13] तहो अमल सोम ।

घत्ता—इय अवयव रूवें, फुरिय सरूवें, सो लावण्णें पुण्णउं ।
सव्वहिं गुणसारहिं, महिमपयारहिं, अवरेहि वि सो धण्णउं ॥2॥

(3)

ता पिच्छिवि[14] तायं तरुणु पुत्तु, णिरुवम लायण्ण कलापउत्तु ।
कमलप्पह णामें रायकण्ण, णिरुवम सरूव सोहग्ग पुण्ण ।
परिणाविउ णिरु उत्तमि[15] णिमित्ति, परिपुण्ण उच्च सुहगह पवित्ति ।
णं चंदहो मेलिए बहुल कंति, णं कामहो अप्पिय बाणपंति ।
णं सुत वहो[16] जोडिय परम खंति, ण णाहहो[17] आणिय विमल संति ।

---

1. क. घ. तल
2. ख. मुत्तुव = सिद्ध इव
3. क. ०सोरहों,
4. = निर्जिता:,
5. क. वीउवदसणहीर
6. ख. घ. उग्गिण्णु = नि:सरित,
7. ग. तिहुयण,
8. क. मांहिं
9. क. पयत्थ,
10. ग. यत्तण,
11. ख. सरित्त,
12. घ. उडुवुं = अगाध:,
13. क. ख. णंदह = तस्य दीप्त्या शोभा मंदा जाता ।
14. क. पिच्छि०, ख. पेछिवि ताएं,
15. ख. उत्तमे
16. ख. ध. सुतवहु,
17. क. णाहहो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णं धम्महो ढोइय जीवरक्ख, णं विणयहो देसिय साहु सिक्ख ।
णं सुगुणहु विरइय धवल कित्ति, णं णायहो सद्धिय सहल सत्ति ।
णं तक्कहो[1] थप्पिय अवल जुत्ति, णं विहवहो[2] दरसिय दाण उत्ति ।
णं सूरहो साहिय अमल बुद्धि, णं सिद्धहो भाविय अचल[3] सिद्धि ।

घत्ता—ता तहिं महिराए[4], हरिस पराएं, णिय[5] रज्जुम्मि परिट्ठिउ ।
जो सक्कहिं मंदिरि,[6] बहु सिरि सुंदरि, तिहुयण पइसइं[7] संठिउ[8] ॥3॥

(4)

णिय वीढिणि वेसिउ सइं णिवेण, सो णिच्छंतु[9] वि हरिसिय मणेण ।
ठालिय जल ऊरिय कणयकुंभ, वहु मंगल भेयहिं सिरि वियंभ ।
गयणहो गंधोवउ कुसुमविट्ठि, संपण्णी ति जययहो हरिस पुट्ठि ।
अइ णिम्मलु फुडु णहयलु पयासु, दिसि चक्कु पसण्णउं कय विलासु ।
चउ भेयतूर सद्दिहिं रमालु[10], रायंगणि वहु गेयहिं विसालु ।
राएं सइं लेविणु कणयदंडु, पण वाविउ णिवगणु गव्व चंडु ।
कुल मंतिहिं करि किय चमरछत्त, इय सेवहिं सयल वि रायभत्त ।
करि हरि सामिय अण्णेवि जेवि, जोडिय कर अग्गइ[12] हूअ[13] तेवि ।
वहु णायर जण पणमहिं भरेण, लज्जंजलि घल्लहिं णियकरेण ।
अविहव[14] गायहिं णच्चंति तित्थु, णिव ढोयहिं[15] पाहुउ सारवत्थु ।

घत्ता—तिहुयणु वि समामिउ[16], सिरिभर णामिउ, किं पुणु वव्वमि महिवलउ ।
जं सामिउं पालइ, णाउं णिहालइ, धम्मलच्छि चंदण तिलउ ॥4॥

---

1. क. तहो
2. क. ०वहु,
3. ख. घ. ग. अचलसिद्धि=शरीररहित मुक्तिः,
4. ख. घ. ०राइं,
5. क. णिय णिय रज्जमि,
6. क. घ. पइ पइ = त्रिभुवनपतीनां पतिः,
7. =इन्द्रैः मंदिरे,
8. क. सिद्धउ,
9. अवाछन् सन्
10. ग, ०रेमालु,
11. क. लिवुणु,
12. ग. अग्गइं
13. ग. हूय,
14. =पुत्रभर्तृवती स्त्री,
15. क. ठायहु, ख. घ. ढोवहिं,
16. =समस्तत्रिभुवनस्य स्वामी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(5)

ता भूयलि णासहिं सयलदोस, संपज्जहिं सुक्खिहिं पउरतोस ।
घणवरिसहिं चितउ ग्रमयधार, वायंति वाय ग्रइ सुहमचार[1] ।
खर किरणु तवइ सुपयास मित्तु, ससि पुणु विलसइ[2] पसरिय पहुत्तु ।
हिमकालु ण लोयहं देइ दुक्खु, सव्वु वि संपज्जइ जणिय सुक्खु ।
दुक्कालु णासु जमुपुरि पइट्ठु, रोयहं गणु केण वि णेयदिट्ठु ।
ईति वि मिल्लवि देसहो पएस, ग्रण्णाय सस्स भक्खहिं ग्रसेस ।
तहिं वोरिज्जइ जइ मणु जणेहिं, ग्रच्छरिय हेउ पयडिय गुणेहिं ।
तण्हा गुणेसु तहिं णिरु जणाहं, णहु पुण विसाय वित्थर[4] मणाहं ।
धम्मम्मि मणोरह[5] णिरु णराहं, ग्रवगण्णिय लच्छी सुहभराहं[6] ।
तहिं पावहो वीहइ सयलु लोउ, णहु[7] ग्रण्णहो कासुवि गलिय सोउ ।
गह पीडुप्पाइय जेवि केवि, सव्व वि विलयंगय सुट्टु तेवि ।

घत्ता—दालिद्दिहिं मुक्कउ, दुक्खिहिं चुक्कउ, चिंताभर परिवज्जियउ ।
तहिं जणु सुहि णंदइ, सग्गु वि णिंदइ, जिण पइ गुणगण रंजियउ ।।5।।

(6)

इय जा पालइ महि परमेसरु, कुल किंकर ठिय सयल सुरेसरु ।
ता सोहम्में[8] णियमणि चिंतिउ, तिहुयणजण उवयारु सुमंतिउ ।
इहु जिणु जीवइ दह पुव्वलक्ख, परमाउ गणणि जाणिय परिक्ख ।
परमेसरु माणिय केलि सुक्ख, ग्रकलत्तु[9] ग्रढाइय[10] पुव्वलक्ख ।
ग्राहुट्ठ तिण्ण ठिउ पुव्वलक्ख, चउवीस पुव्व ग्रंगइं ग्रदुक्ख ।
इत्तिउ पालिउ सत्तंगरज्जु, किहं[11] ग्रज्जवि ण करइ भविय कज्जु ।
जाणिवि[12] इण्हें[13] वेरग्गकालु, भुत्तउ चरियावरणउं विसालु ।
जइं किं पि वि किर वेरग्गहेउ, पिच्छइं ता वुज्झइ परमदेउ ।
ता उप्पायमि वेरग्ग मित्तु, जह तव यरणहों जिणु करइ चित्तु ।

---

1. क. मंदचार, 2. ख. विलेसइ,
3. ख. घ. मेल्लिवि, 4. ख. विसएसु विथि०
5. ग. मणोहर, 6. क. इयं पंक्ति र्नास्ति,
7. क. णेहु, 8. क. सोहम्मि
9. =कुमारकाल, 10. ग. ग्रढाइ,
11. क. ख. किह, 12. जाणेवि
13. ख. इण्हि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इय चिंतिवि **ससिरुइ** णामदेउ, वुल्लाविउ णिरु पायडिय सेउ ।

घत्ता – चंदउ रिहिं जाइवि, जिणहरु पाइवि, करि किं पिवि तं वेयरु[1] ।
जं पिक्खिवि तक्खणि, चिंतिवि णियमणि, पडिवुज्झइ सो जिणवरु ॥6॥

(7)

ता आइवि ससिरुइ रायदारि, बहुभेय लच्छि संभारसारि ।
होइवि अइदुक्खरु[2] लट्ठि हत्थु[3], अइ सिढिलु सिढिलु पहिरे विवत्थु ।
पुक्कारइ सामिय रक्खि रक्खि, हउं कालें किज्जमि अप्पभक्खि ।
ता णाहें तहो णिसु णेवि सद्दु, पभणिउं किं भणइं एहु भद्दु ।
हक्कारिवि पुच्छिउ तासु दुक्खु, सो भणइं णाहु तुहं भवणचक्खु ।
जर रक्खसि महो भक्खेइ अंगु, बहु[4] रोय चोर णिह णेहि रंगु ।
जम वग्घुवि इह घुरु हरइ पासि, इय पीडहिं साभिय तुज्झ वासि ।
एवहिं करि लहुं रक्खणउ वाउ, जावहिं[5] णहु घुट्टहिं मज्झु आउ ।
तं णिसुणिवि चिंतइ इहु[6] कयत्थु, जर रक्खसि मारणि[7] को समत्थु ।
अंगहो रोय वि णहु जाहि दूरि, लहरिउ णह फिट्टहिं जलहं पूरि ।
कालु वि को रक्खइ आवडंतु, सइं णाइं गयण मंडलु पडंतु ।
अत्थउ किर एयहो तणियवत्त[8], अम्हाणवि को करही परित्त ।
जगि[9] को णवि कासु वि रक्खवालु, सव्वहं सामण्णु जि एइ कालु ।

घत्ता—इह[10] कियणिय कम्में, सुहदुहधम्में, सयलु वि जगि[11] उप्पज्जइ ।
अण्णु वि णहु कारणु, विग्घ णिवारणु, जीवहो[12] भवि संपज्जइ॥7॥

---

1. ख. घ. वइयरु, क. वेअरु,
2. =अतिवृद्धः
3. क. ग. यत्थु,
4. =बहु रोगा एव चोरास्तैः पीडितांगं
5. ख. जावेहि,
6. ख. पहु,
7. ख. वारणे, ग. वारिणि
8. ग. ०वत,
9. क. घ. जणि,
10. ख. इय,
11. ख. घ. जणि
12. ख. घ. जीवहु,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(8)

जं अत्थि चराचरु वत्थु रूअ, तं सव्वु वि खणभंगुर सरूउ ।
धणु जोव्वणु जीविय तणु पवंचु, जलवुव्व व[1] सण्णिहुं[2] तं अणिच्चु ।
दिणि बद्धउ जसु सिरि रायपट्टु, णिसि तहो उप्परि किउ मरणु घट्टु[3] ।
दिणि जो गाइज्जइ मंगलेहिं, णिसि सो रोइज्जइ तिय[4] कुलेहिं ।
दिण जो दिट्ठउ गयवरहो खंधि, णिसि सो बंधिउ णिरु चोरबंधि[5] ।
दिणि जो दिट्ठउ धणयहु समाणु, णिसि सो दीसइ मग्गंतु खाणु ।
दिणि जे बंधवहु णेहवंत, तक्खणि सत्तु व दीसहिं[6] हणंत ।
जे पुग्गल चिरठिय सुक्खभाव, ते खणि संपज्जहिं दुह सहाव ।
जे पिंड घडणि परमाणु हुंति[7], तहु[8] पिंडहो खंडणि ते हवंति ।
फेणु व णिस्सारउ मणुय[9] जम्मु, खणि णासइ जहं गयणयलि हम्मु ।
खणि धम्म भाउ खणि खयहो जाउ[10], खणि णेह भाउ खणि वेरु थाउ[11] ।
जे पिय सुय जणणी जणण मिच्च, ते सव्व वि तक्खणि इह अणिच्च ।
कर सलिलु व जीविउ णिरु अणिच्चु, सव्वु वि विण्णासिय वयणु सच्चु ।

घत्ता—अण्णु वि इह असरणु, दीसइ तिहु यणि, सव्वु वि इक्क समाणउं ।
जीवहु भवि यंतहु,[12] दुक्खु सहंतहु, णहु कुवि रक्खा ठाणहुउं ।।8।।

(9)

णहु कोवि[13] अत्थि सो पुरिसु इत्थु[14], जो जमु लंघिवि हूयउ कयत्थु ।
इंद वि णिवडहिं हाहा भणंत, दिसिपाल वि पडिहहिं वहु कणंत ।

---

1. क. अ,
2. क. ख. सणिहु
3. क. ग. घुट्टु,
4. ख. णिय,
5. क. मोर०,
6. ख. ते णिसि दीसहिं सत्तुव०
7. ख. होंति,
8. क. एहु, ख. तहो,
9. क. मणुअ,
10. ख. घ. जाइ,
11. ख. थाइ घ. थाइं,
12. ख. घ. जीवमुहो भवियंतहो, क. जीवहु भविच्छंतहु,
13. ख. कोइ,
14. क. यच्छु,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवरवि जे केईय बल पंहाण, ते[1] असरण सवि मिल्लंति[2] पाण ।
अवरहं णरकीडहं को पमाणु, जमि रुट्ठइ सक्कु वि किमि समाणु ।
जणि मूअइ[3] णिरु सोयंति[4] मूढ, अप्पाणउं णहु जम[5] वयणि छूढ[6] ।
जे सपुरिस कवलिय जमि ण इत्थु, तहं णाम वि जमि इह मंति कित्थु ।
जम्मु जि कारणु मरणहु[7] णिरुत्तु, जो अण्णु भणइं सो मोहगुत्तु[8] ।
जे जायहु[9] जीवहो दिवस जंति, ते जमपुर पंहहु[10] पयाणहुंति ।
मणि मंतो सहि तावहिं फुदंति, जावहिं जमढक्का णहु सुणंति ।
जणु[11] परहु मरणु पिच्छंति हुंतु, णहु अप्पउ[12] आसण्णु वि पडंतु ।
माणुसु सुमणोरह[13] विल्लिपूरु, जमु उच्चाइ वि घल्लेइ दूरु ।
सासहुच्छलेण जीविउ णिरेइ, खणि खणि मूढउ णहु संभरेइ ।
जइ वज्जहो पंजरि पइसरेइ[14], तो असुरणु जणु णियमें मरेइ ।

घत्ता—अण्णु वि भवसायरि, वहु दुह दायरि, णहु किं पि वि तं सारउ ।
जं किरइ इह लोयहो[15], पयडिय सोयहो, णिमि सुविथिर
सुह कारउ ।।9।।

(10)

चउगइ भीसणु भवजलहुं मज्झु, को सक्कइ वण्णण तासु गुज्झु ।
जहिं सक्कु मरिवि मलकीडु थाइ, मलु[16] कीडु वि सक्कहो ठाणि जाइ ।

---

1. ख. त, 2. ख. मेल्लंति,
3. ख. घ. मूवइ, ग. मूवव, जेने मृते सति ।
4. क. घं. सो अंति०,
5. ख. जमि०,
6. =जनाः आत्मानं यममुखे क्षिप्तं न जानंति;
7. क. मरणहं, ग. मरणह;
8. ख. माह०,
9. ख. जायहु,
10. ग. पह,
11. क. ख. जण,
12. ख. अप्पहो
13. क. ख., घ. समणोरह,
14. क. पइसरे वि,
15. ख. लोयहु, 16. कं. मणु०,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बंभु वि[1] चंडालहो लहइ जोणि, चंडालु वि वंभहो सरइ खोणि[2] ।
मित्तु वि संपज्जइ इत्थु[3] सत्तु, सत्तु वि संपज्जइ[4] अचलु मित्तु ।
मायरि वि कंत[5] कंता वि माइ, वप्पो वि पुत्तु सुउ जणणु थाइ ।
भवणाइउ णच्चंतहं विसालु, जीवहं संजाउ अणंतकालु[6] ।
माणुसु उप्पज्जइ जोणि मज्झि, विलसंतु ण लज्जइ तासु गुज्झि ।
वालु वि तिय घण फंसणु[7] करेण, तहं अब्भासें तरुण वि भरेण[8] ।
वहु दुक्ख विडंवण पाव-भारु, इत्तिउ कहियउ संसार सारु ।
भव भाव कालु दव्वेण सोइ, खित्ते सहुं पंचपयारु होइ ।
तं णत्थि दव्वु जं णेय जुत्तु, तं णत्थि खित्तु जं णेय छित्तु ।
सो णत्थि भउ जं णेंय[9] जुत्तु, सो भउ ण अत्थि जहिं णेय खुत्तु ।
कालु वि अतीदु भुत्तउ अणंतु, इय सहिउ दुक्खु दुक्खिहिं महंतु ।

घत्ता—अण्णु[10] वि इक्कल्लउ, पीड सहिल्लउ, इह भुंजइ णिय कम्मफलो ।
वहु जोणि सरंतहु चउगइ घंतहु, कासु वि किंपि वि णेयवलु ॥10॥

(11)

इक्कक्किउ[11] बंधइ विविहकम्मु, इक्कु जि अणुहुं जइ परम सम्मु ।
इक्कु जि वइतरणिहिं पियइ णीरु, इक्कु जि उप्पज्जइ सुरसरीरु ।
इक्कु जि तिरियत्तणि सहइ दुक्खु, इक्कु जि विलसइ महिरज्जु सुक्खु ।
इक्कु जि पीडा परवसु कणेइ, इक्कु जि[12] रमणीरय रसु मुणेंइ ।
परिवारहेउ बंधेइ पाउ, इक्कु जि अणुहुं जइ तासु साउ[13] ।
इक्कु जि जम्मइं इक्कु जि मरेइ, इक्कु जि भवसायरि संसरेइ ।
इह रत्ति वि जइ[14] दुहु सहइ इक्कु, तहो परभवि सुहदुह फल गुरुक्कु ।

---

1. =विप्रोऽपि, 2. चंडालोऽपि विप्रस्य योनि लभते
3. ख. एच्छु, 4. ख. संज्जइ
5. क. माइरि कंता, 6. क. संजायउ णंत कालु,
7. ख. फंसइ 8. =वालाभ्यासेन सयौवना स्त्री सूनान् स्पर्शयति ।
9. ख. णेअ, 10. एकत्वानुप्रेक्षा कथयति,
11. क. ख. ग. इक्काकिउ, 12. एक्कु जि,
13. ग. जह, 14. =स्वादः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जह णिसि वायस तरुतलि मिलंति, सिरिवंतहं तह परिवारु हुंति ।
णियकज्जि मिलइ सव्वो विलोउ, पुणु इक्कुजि भुंजइ जीउ सोउ ।
परु अप्पा मणइं मूढ चित्तु, णिय परमभाउ सब्भाववत्तु ।
इक्कु जि तोडइ चिरकम्मपासु, इक्कु जि पावइ सिव सिरि विलासु ।

घत्ता—इय भिण्णउं जीवहु, सुद्ध सरूवहु, सव्वुवि फुडु परिहासइ ।
परु अप्पु मुणंतउ[1], अप्पु हणंतउ, अप्पा मुज्झिवि णासइ[2] ॥11॥

(12)

जीवहु अण्णु भाव णिरु चेयणु, देह हु अण्णुजि पयडुवि वेयणु ।
अप्पा अचलु अमुत्तु अणिंदिउ[3], देहु[4] समुत्तु सुचलु वहु इंदिउ ।
जहं जल जलणहं अण्णु भाउ, तहं जीवहो देवहो परु सहाउ[5] ।
देहु वि जहि जीवहो अवरु दिट्ठु, कहं होही अप्पणु अवरु इट्ठु ।
भवि भवि अण्णण्णाइ पिय रहुंति, भवि भवि अण्णण्णाइ मायथंति ।
भवि भवि अण्णण्णाइं पुत्त मित्त, भवि भवि अण्णण्णाइं चेडभत्त ।
चिरजम्महो सुअणइं तहिं रुवंति, इह जम्महो[6] वहु मंगल कुणंति ।
चिरजम्मुहो सुय पाडंति पिंडु, इह जम्मुहु हत्थहु लेहिं खंडु ।
चिरजम्मुहो पियविरहेण तत्त, इह जम्मुहो धाइवि कंठि सत्त ।
मूढउ जणु चिरभउ वीसरेइ, इह जम्मु मूक्कु मोहें करेइ ।
जिहं पहिय दूरि देसंमि जंति, अण्णुण पयाणिहिं वीसमंति ।
संसार घोर अडविहिं भमंति, जीव वि भवि भवि इहवीसमंति ।
जइ वयइ कह वि इहु अण्णु वत्थु, णिय भाव लीणु[7] ता हुइ कयत्थु ।

---

1. = परः आत्मानं मन्यते
2. = अन्यत्वानुप्रेक्षा कथयति
3. ख. मुणिदिउ
4. क. देहो
5. क. जम्मह, ख. जम्महु
6. = अन्यस्वभावः
7. क. जम्मह, ख. जम्महु
8. 1. ०खीणु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—अण्णु वि इहु देहहु[1], असुइहिं गेहहु[2], पूयगंध विलसावणउं ।
णव द्दारिहिं विट्टलु, वहुमल पुट्टलु. मज्भुरोय[3] भीसावणउं ॥12॥

(13)

मलवीउ एहु माणुसहो देहु, तह गब्भासउ मलभंड गेहु ।
सव्वहं मल गंधहं देहु जोणि, सव्वहं मलदारहं देहु खोणि ।
अइ मलिण सत्त धाउहिं दुगंधु, अइ गाढु गाढु मल पिंडु बंधु ।
जइ मज्भु कह वि बाहिरउ होइ, देहहो ता पिच्छइ णेग्र कोइ ।
अण्णु वि जं किं पि वि मलिणु होइ, तं सयल वत्थ खणि[4] देहि जोइ ।
कुंकुम कत्थूरी पमुहं दव्व, छुहु देहिं लग्ग ता मलिण सव्व ।
मलि कीडु व सुद्धप्पा सरीरि, तहु मज्भि लीणु बहु दुह गहीरि ।
जइ वहु चम्मं ढंकिउ ण हुंतु, ता मच्छय कायहं को अवंतु ।
णिच्चु वि सव्वहं रोयाहं वासु, णिच्चु वि णवदारिहि मलपयासु ।
णिच्चु वि जममुहि पडणिक्कसीलु, णिच्चु वि पंचेंदिय[4] विसयसीलु[6] ।
देहहो कारणि जणु करइ पाउ, तहो देहहो दीसइ इहु सहाउ ।
णारी सरीरि जणु करइ रंगु, जाणं तुवि ण मुणइं तासु भंगु ।
वस तेयहो तहो लायण्णु णामु, मलरस सिंदणु सोहग्ग थामु ।
जइ तियवउ पिच्छइ संत भाउ, ता जणइं माणुसु तहों सहाउ[8]।
दुद्धरतवयरणें एहु सारु, एएहो फलु अण्णहं दुण्ण यारु[9]

घत्ता—मिच्छःमइ णिवणिहिं, तणु मणवयणिहिं[10] जीउ कसाइहि रत्तउ ।
आसवइ सहावें, हयसुह भावें, मणु[11] अविरइ संसत्तउ ॥13॥

---

1. ख. देहु
2. ख. गेहु
3. ख, रोय सोय०
4. क. वणि
5. ख. पंचिंदिय
6. ख. घ. ०लीलु
7. माणुसु ता जाणइं तासु भउ
8. ख. दुह पयारु
9. ख. ०मणव०
10. ग. मलु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(14)

जहं[1] जलहिं मज्जि ठिउ जाणवत्तु, छिद्दिंहि सलिलें भरियइ णिरुत्तु ।
तहं[2] भवि सायरि जीउ वि भमंतु, जोयहिं कम्मु वि ठिउ आसवंतु ।
सुह असुह रूअ आसउ दुभेउ, सुह जोयहिं सुहु पयडिय विवेउ ।
अण्णु वि जम णियमिहिं उवसमेहिं, वेरग्ग तच्च भावण कएहिं ।
इय भाविहिं सुह आसउ मिलेइ, विवरीयहिं असुहु जि संगिलेइ ।
मिच्छत्तु[3] पमुह आसवहो[4] ठाणु, तहं अवरइ णिरु वट्ठण विहाणु ।
दीहरिहि कसायहिं वद्धमूलु, जोयहिं पुणु भवभावहिं[5] कुसूलु ।
इय असुहासउ वट्टइ तुरंतु. भवजलहिं तेण गज्जइ महंतु ।

घत्ता—आसवहु[6] णिरोहणु[7], चिरमलसोहणु, संवरु वहुगुण सारउ ।
दो मेयहि दिट्ठउ, मुणिमण इट्ठउ दव्वभाव सुपयारउ ॥14॥

(15)

आसव णिरोहु संदरु पउत्तु, सो दव्वभाव दोभेय जुत्तु ।
जा कम्मु पुग्गला दाण छेउ, सो दव्वहं संवरु सुक्ख हेउ ।
जो भवकारणकिरियाणिवित्ति, सो भावहो संवरु समहो[8] जुत्ति ।
संजम वम्में जो पिहिय गत्तु, तसु आसव सर विहलहिं[9] णिरुत्त ।
जो जस्स सत्थु सो तेण हणइ जो संवरु दुविहु वि करण मुणइ
खम सत्थे णिहणइ कोहवीरु, मद्दविण माणु दिढ गव्व धीरु ।
माया डायणि[10] सरलत्त ठोण, मण चवलत्तणु धीरत्तणेण ।
लोहु वि णिरु संग वि वज्जणेण, मोहु वि जिणणाणु समज्जणेण ।

---

1. ग. तह
2. ग. तह
3. क. मिच्छुत्त ख. मिच्छत्त
4. क. आसवोहो ख. आसवहु
5. क. भावह
6. क. ग. आसवहो
7. क. गेहणु, ख. रोहणु ।
8. ख. संवइ
9. = आश्रववाण निष्कलाः, ख. राउवि
10. घ. डाइणि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रागु वि दोसु वि समभावरणेण, णेहु वि णिम्मम संभावणेण ।
मिच्छत्तु वि सम्मं दंसणेण, भव भाउ वि मुत्ति णिहंसणेण ।
मयणु वि वउ[1] तच्च णिहालणेण, परिसह वि णारय संभालणेण ।
अण्णु वि जो जसु पडिकूल भाउ, तं तेण हणइं[2] संवर सहाउ ।
इय विहिणा जे संवरु कुणंति, आसव भरु लीलइं ते हणंति ।

घत्ता—ता किज्जइ णिज्जर, वहु दुह णिज्जर, कम्मगंठि दिढ दारिणिय ।
रय मल परकालिणि, गुणगण मालिणि, मोक्ख रुक्ख जल सारिणिय ॥15॥

(16)

साणिज्जर भासिय फुडु दुभेय, अप्पहु मल णासिणि जा अभेय ।
सा होसइ[3] कामा[+] मुणिवराहं, अइ घोर वीर तवा दुद्धराह ।
अण्णहं जीवहं वीया अकाम, चउगइ दुहभावहिं जणिय थाम ।
जहं आमफलइं दढजलणपक्क[4], अण्णइं पक्कइं कालेण[5] थक्क ।
तहं हठि[6] आणि वि मुंजेइ कम्मु, मुणिवर सकाम णिज्जरहिं हम्मु[7] ।
सइं मुंजि[8] कम्मु परिणामि जाइ, तं पुण अकामणिज्जरहिं थाइ ।
जलणावत्तिउ[9] सुज्झइ सुवण्णु, तहं जीउ वि णिज्जर भर पवण्णु ।
वारह विह विरतव ताव तत्तु, खणि खणि परमप्पा हुइ पक्तिु ।
वावीस परीसह थिरु सहंतु, णिज्जरइ कम्मु घोरु वि महंतु ।
वहु उत्तरगुण संभारभुत्तु, अप्पाहुइ मल पडलहिं विजुत्तु ।

घत्ता—अण्णु वि इह तिहु अणु, पभणइं वुहु जणु[10], चउदह रज्जु पमाणउं[11] ।
कत्ताइं[12] वि वज्जिउ[13], गयणि समज्जिउ, छहं[14] दव्वहं णिरु णाणउं ॥16॥

---

1. ख. वय
2. ख. हवइं
3. ख. ना होइ सकामा.
4. क. जणण
5. क. कोलेण
6. क. हढि, ख. हवि
7. =अधर्मः,
8. क. भंजि
9. ख. ०धत्तिउ
10. ख. बुहयणु
11. ख. समाणउं
12. ग. कत्ताइ
13. =ब्रह्मादि कर्तृनाशरक्षणरहितः
14. क. ०छहं
\+ = सकामनिर्जरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(17)

जहिं एह पएसि ठिय पंच दव्व, तं लोउ भणहिं जिण समय कव्व ।
सो चउदह रज्जू तुंगु होइ, पिंडेण सत्त रजूपलोइ ।
कडि किउ[1] हत्थिउ जारिसउ गोहु, इहुतिहु अणु तहं आकार सोहु ।
तलि सत्त रज्जु पिहुलत्तणेण, एक्क जि रज्जू महि वित्थरेण ।
पंच वि रज्जू ठिउ सग्ग ठाणु, ठिउ एक्कु रज्जु पिहु[2] सिरपमाणु ।
तिहिं वायहिं वेढिउ अइघणेहिं, अयवेय महावल संधणेहिं ।
एहु आइ[3] भाउ अवसाणु तासु, सइं सिद्धु मुक्क कारण पयासु ।
सो तलि वित्तासणु सरिसुभाइ[4], झल्लरि णिहु वद्दलु मज्झि ढाइ ।
मद्दल सरिच्छु उप्परि णिसण्णु, इय आयारिहिं तिहु अणुर वण्णु ।
ठिउ जीवाजीविहिं[5] गाढ पुण्णु, जम्मंत धुव्वु[+] धम्मिहिं पवण्णु ।।

घत्ता—इय धम्मु जि दुल्लहु, बुहजण[6] बल्लहु, जिणणाहेण पउत्तउ ।
ते[7] विणु मणयत्तणु, अहहु, वुहत्तणु[8], रयणु व जलहिं पचित्तउ ।।17।।

(18)

दह[9] लक्खणु तं जिणवर[10] कहंति, जं[11] लग्ग भविय भउ उत्तरंति ।
जिणधम्मु ति जय जण कप्परुक्खु, जिणधम्मु ति जय जणि देइ सुक्खु ।
जिणधम्मु सयलु दुक्खहं पठासु, जिणधम्मु सयलु आवइ विणासु ।

---

1. घ. किय
2. क. ख. पहु,
4. ख. सउभाइ,
6. क. वहुजण,
8. क. बूहत्तणु,
10. जिणवरु,

+. = उत्पादव्यय ध्रौव्य युक्तः
3. = आदि-अंत रहितः
5. क.जीवाजेविहिं,
7. ख. तं,
9. ख. ग. दस,
11. क. जें,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिणधम्मु ति जय रक्खण समत्थु, धम्मु जि पीयूसहू त्तारवत्थु ।
कूर वि धम्मेण हवंति संत, धम्मेण जलण थक्कहिं जलंत ।
धम्मेण मेहवरिसहिं अयालि, धम्मेण होइ घरि कणय पालि ।
धम्में गयणहु हुइ रयण विट्ठि, धम्में उप्पज्जइ सग्गसिट्ठि ।
धम्में हवंति तित्थयर देव, धम्में इंदरि सुर जणिय सेव ।
धम्में अइसय गुण संभवंति, धम्में सव्वच्छवि विजय हुंति ।
धम्नें पूरिज्जइ[1] सयल काम, धम्में णरवर बहु[2] अतुल धाम ।
धम्में णिह णिज्जइं सयल दुक्खु, धम्में कमि कमि फुडु होइ मोक्खु

घत्ता – इय दुल्लहु जाणहिं, णिय मणि माणहिं, बोहिरयणु अइ णिम्मलु ।
तिं लद्धइं लद्धउ, सिवसुहुसिद्धउ, अण्णु वि जायउ जम्मफलु ॥18॥

(19)

वहु थावर जावहिं संचरंतु, जिउउ हिंड भवसायरि भमंतु ।
ता कहवि कहवि विय लक्खजोणि, तत्थवि दुक्खें पंचक्ख खोणि ।
अइदुल्लहु तत्थवि मणुय जम्मु, तत्थवि अइदुल्लह[3] जिण[4] सुधम्मु ।
बोहिहिं हवंति वहु अंतराय, बहुकम्म सुहउ किय संपराय ।
मणुयत्तणि णहु हुइ दीहु आउ[5], तत्थ वि णहु हुइ धम्महिं[6] उवाउ ।
णीरोयत्तणु अइदुलहु तित्थु, तत्थवि णउ जाणइं जिणह मुत्तु[7] ।
जाणंतु वि णहु हुइ संतु चित्तु, संतु वि णहु हुइ मुणि णाह भत्तु ।
भत्तु वि बेरग्गहो णेइ जाइ, वेरिग्गउ णहु चिरु कालु थाइ ।

---

1. ख. घ. पूरिज्जहिं,
2. क. अइ,
3. ख. दुल्लहउ,
4. ख. जिवर,
5. क. अऊ,
6. क धम्महो,
7. ख. सत्थु,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुवि लहि विवोहुं[1] जइ पुणु वमेइं[+], सो सिवि पइ सेंविणु रिणक्कमेइ ।
इा[2] ते मरिण जलरिणहिं जलि खिवंति, कप्पं[3] घिउ[4] जालि वि हिमु हणंति ।
पीऊसिहिं[5] ते धोवंति चीर, माणिक्कहिं ठवलु कुणंति धीर ।
हा लद्धउ बोहि[6] पलाइ जासु, हाहा इहु[7] को उवमाणु तासु ।

घत्ता—इय अविणय चंडिहिं, बहु पासंडिहिं, सयलु वि जगु विट्टालियउ[8] ।
परमप्पहु[9] सोहिहिं,दुल्लहवोहिहिं, मूढउ जणु णिरु टालियउ ॥19॥

(20)

इय बारह भामरण भवयंतु, जां अच्छइ भावदुह संसरंतु ।
वर चंदहु पुत्तहो रज्जु दिंतु[10], महि भारु सयलु मंतिहिं णिसंतु ।
अप्पहु उद्धरु तउ चित्तवंतु, --- --- --- --- --- --- ---।
ता आइय तहिं लोयंत देव, बहु भत्ति करणि पायडिय सेव ।
ते पभणिय सामिय तिजयदीव, उद्धरिय सयल पइं भव्वजीव ।
वहु दुक्खसलिलवेला रउद्द, पइं विणु जगु बोलइ भवसमुद्द ।
जगु[11] पडइ णरइ मोहंधयारि, णासिय सद्दंसण रुइ पयारि ।
जय णाणदिवायरु जिणवरिंदु, णहु भासइ तिहुयणु[12] कम्मचंदु[13] ।
करि लहु जाणिय[14] पारद्ध कज्जु, तुम्हारिसु जग उद्धरणि सज्जु ।

---

1. ख. विघोहि, घ. विधम्मु, 2. ख. हो,
3. क. कप्प, 4. ख. हिउ,
5. क. पीयूसिरिण, 6. क. वोरि,
7. क. हाइहु, 8. ख.विट्टालियउं,
9. ख. परमप्पा, 10. ख. दिंतु रज्जु,
11. ख. जइगु, 12. ख. तिहुवणु,
13. ख. ग. ते परंडु,
14. क. जं णियं +.= मोक्षे प्रविश्य निस्सरति,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उग्घाडहि पहु सिवणयर दारु, तित्थय रत्तणि इह फुडउ सारु।
धम्मामय सद्धिउ सयल लोउ, करि सामिय लहु केवल पलोउ।
बहु विणय भाव पायडि पसेव, इय जंपहिं जा तहिं बंभदेव।

घत्ता—ता तिय सुर कलयलि, दह दिसिणहयलि, दुंदहि सरु संजायउ।
अइ हरिस गहिल्लउ, भावर सिल्लउ[1], सुरवर गण तहिं आयउ ।।20।।

(21)

ता आइवि तहि पणमंति[2] सक्क, वहु भत्ति भार संभार थक्क।
जा मउलिय कर संथुवहिं तित्थु, ता उट्ठिउ जिणवरु समकयत्थु।
आरूढउ सिविया जाणि भत्ति, विमला णामए[3] सुरजणिय भत्ति।
सोहम्मी साणहि दिण्णु खंधु, कइवय पयाइं दिढभत्ति बंधु।
तहं अग्गइ सिविया चंदसूर, उव्वहहिं[4] पद रिसिय भत्ति पूर।
तहिं[5] अग्गइ ठिय भवणामरिद, उव्वहहिं त्रिणयभारेण रुंद।
तहं[6] अग्गइ विंतर पहु हवंति[7], णिय देवत्तणु णिरु सहलयंति।
दुंदहिं सरवहि रिउ भुवणमंडु, फुट्टण मणु ठिउ णं पक्क अंडु।
सव्वत्थवि सुरगण बहु णडंति, सव्वत्थवि सुभ्र कुसुमइं पडंति।
सव्वत्थवि गायहिं देवसत्थ, सव्वत्थवि आणिय देववत्थ।
सव्वत्थवि धयवड उल्लसंति, सव्वत्थवि सुरवीणा रसंति।
सव्वत्थवि मंगल हत्थणारि, सव्वत्थवि सुरतिय माल धारि।
सव्वत्थवि णंदण चंदणाइं, सव्वत्थवि सुरकिय वंदणाइं।

---

1. ख, घ. वे इव हिल्लउ
2. ख. पणवंति
3. ख. णामइं
4. =शिविकानि
5. ख. तहें
6. फ. तह
7. ख. वहंति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—समसिरि परमेसᵐ, तातहिं जिरावरु, अइधणावरिण संपत्तउ ।
जा सुरहं विरत्तिय, बहु गुण जुत्तिय, तहिं तव सिरिहिं
सुसत्तउ ॥21॥

(22)

सयलुत्तय णामें तं वणंतु, पिच्छइ परमेसरु गुणमहंतु ।
जं केलि करंजिहिं करवरेहिं, करवीरिहिं कयरिहिं किंसुएहिं ।
कं किल्लि कयं विहिं कंचणेहिं, कुडयहिं कच्चूरिहिं[1] काकवेंहिं ।
करहाउ कवट्ठु[2] कप्पूर एहिं, कंकोल कउह कणियार एहिं ।
को सु ं तिहिं कास कपास एहिं, खज्जूरिहिं खयरिहिं खरकरेहिं ।
चंपय चंदण चूयह चरेहिं, जूही जायहिं जा सवण एहिं ।
तम्मालिहिं ताली ताडिएहिं, दीहर दाडिम दुम दमण एहिं ।
धव धम्मण धाहुडि धाइ एहिं, णारंग णिवालिहिं णिव एहिं ।
लवली लवंग लंवा उलेहिं, वावल[3] वव्वूलिहि वहु फलेहिं ।

घत्ता—इय वहु तरु भेयहिं, हयरवि तेयहिं, गाढु गाढु संछण्णउं ॥
तव वंतहं जोग्गउ, हय उवसग्गउ, णिम्मल सिलहि रवण्णउं ॥22॥

(23)

तं वणु पेक्खिवि तरु जालरुंदु, जाणहुं उत्तरियउ जिणवरिंदु ।
णिम्मल पासुय सिलतलि वइट्ठु, वियसिय तिहुवण णयणेहिं दिट्ठु ।
पोसहु एयारसि कसिण पक्खि, संगहिय दिक्ख तिहुयण समक्खि ।

---

1. ख. कच्छूरिहिं 2. ग. कविट्ठु
2. ख. वाउल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धाहं णमोइय भणिवि मंतु, संचिति वि इहु संसारु[1] अंतु ।
उप्पाडिय केसहं[2] मुट्ठि पंच, णं भव पायव मूलहं पवंच ।
मणिपत्तु धरिउ इंदेण ताहं, तिहुवण सामिय सिरिवासु जाहं ।
उत्तारिय कुंडल रयण दित्त, णं कामरहहो चक्काइं चत्त ।
हारु वि तोडिउ वहु मणि पयासु, णं कंठहो दीहरु[3] मोहपासु ।
मुक्कइं केयूरय कंकणाइं, णं भवणिव कर मुद्दागणाइं[4] ।
कडि सुत्तु वि तोडिउ दूरिवत्तु, णं कामधणुह जीवाहिं[+] सुत्तु ।
णेउर[5] परिसेसिय रयण देह, णं पुत्तकलत्ताइय सणेह ।
मुक्कइं देहहो णिरु सुहमवास, णं चरणावरणिय मिलिय फास ।
इय अवर विवहु आहरण जाइं परि मुक्कइं भववंधणइं ताइं[6] ॥

घत्ता—ता ठिउ थिर झाणें, वियलिय माणें किरियाकम्म विवज्जियउ ।
णिच्चल ठियचित्ते[8], चिंतावत्तें, णिय चरणेण संमज्जियउ ॥23॥

(3)

सुरवर संजाया हरिसवंत, पुलइय हरिसं सुय जलवहंत ।
पियरुवि अब्भुय विंभइ ण जुत्तु, पभणइं को जाणइं जिणहं सुत्त ।
मायरि केवल सोएण भुत्त, अइ दुम्मण सोयं सुय पसित्त ।
हरिसें सो एण वि सुयण दक्ख, संजाया पुलइय सुह विं[9] लक्ख ।
विंभिय सोएण वि अबुह लोय, वियसिय लोयण सुहि ठिय ससोय ।
अंतेउरु अइ विरहेण तत्तु, कोत्रि दुक्खेण वि अइवि गुत्तु ।
चिंता सोएण वि पुत्तु वालु, जायउ णिच्चल लोयण करालु ।

---

1. ख. ध. संसार
2. ख. केसेहं
3. ख. दीहहो
4. ख. ०मुद्दाघ० घ. मुद्दायणाइं
5. ख. जं उर
6. ख. णाइं
7. ख. थिरत्तणें
8. ग. ०बित्तें

+घ. =प्रन्पंचा

9. ख. मुहवि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दह[1] सय संखिहिं राएहिं दिक्ख, संगहिय मुणिय णाहहो[2] परिक्ख ।
खीरोवहि जलि घित्ताइं केस, सुरवइ[3] णाणिय हत्थें असेस ।
तहिं गाइ वि णच्चि वि तिय सणाह, पूया थुइ बहु भत्तिय[4] सणाह ।

घत्ता—णिय णिय आवासहो, जणिअ विलासहो, ता संपत्ता सयल सुरा ।
दुक्खेण मुवंता[5], थिर पयदिंता, तहिं पुरि पत्ता सुयण णरा ।।24।।

इय सिरि चंदप्पह चरिए महाकइ जसकित्ति विरइए
महाभव्व सिद्धपाल सवण भूसणे जिण णिक्खवण
कल्लाणो णाम णवमो संधी परिछेउ

समत्तो ।।9।। (ग्रन्थ 234)

———

1. ख. घ, दंस
2. ख. णाहहु
3. क. ख. सुरवय
4. ख. भत्तिएं
5. क. सुवंता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दहमो संधि

(1)

पंच महव्वय भार धुरंधरु, पंचसमिदि परिपालइ तप्परु ।
पंचेंदिय दारहं कय संवरु, लोय परीसहु विसहइ खरतरु ।
छावासय विहि णिहिमे पालइ, अच्चेलत्तहु ण वि मणु चालइ ।
अण्हाणत्तणु तिविहं दक्खइ, खिदि सिज्जाहर चारु परिक्खइ ।
दंतवणु[1] वि तिविहेण विवज्जइ, सुद्धउ ठिदि भोयणु वि समज्जइ ।
एय भत्तु णिय मुवि परिहावइ, मूलगुणाइं इय णिम्मल भावइ ।
उत्तरगुण वहु भेयइं पोसइ, कम्मवंधु दुद्धरु अइ सोसइ ।
वारह विहतवयरणइं सेवइ इय णिम्मल चारित्तहिं देवइ ।
णिच्चलु णिमणु णिग्गय वंछउ, किय समभावणु हणिय दुगुंछउ ।
सत्तु वि मित्तु वि सो समुवण्णाइं, तिणु तवणु वि तुल्लउ अवगण्णाइं ।
रउ रयणु वि समभावें पिक्खइ, सुक्खु वि दुक्खु वि समउं समिक्खइं ।
सक्कु वि रंक वि तहों सम तुल्लउ अप्पगत्तु परगत्तु वि भल्लउ ।
पाउ वि पुण्णु वि तुल्लइ तोलइ, रज्जु वि चरणु वि समु मणि वोल्लइ ।
लच्छि वि भिक्ख वि सरसी भावइ, भव पुरु सिवपुरु सम परिभावइ ।

घत्ता—इय भावणावंतउ[3], तवसमवंतउ, सो दो दिवसइ थक्कउ ।
आहारहो कारणि, दोसणिवारणि, चल्लिउ भुक्ख वि मुक्कउ ॥1॥

(2)

चिंतइ जिणवरु एसणहिं सुद्धि, संजम परिपालण जणिय बुद्धि ।
आहारु वि णवकोडी विसुद्धु मुणि देसिवि जो[4] किरणेय रद्धु ।
सच्चित्तें मीसिउ जंतु धाउ, सच्चित्त भंडि तहं उवरि ठाउ ।

---

1. ख. दंतधवणु वि
2. ख. उवगण्णहं
2. ख. घ. भावंतउ
4. ख. जे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छेयालीसिहिं दोसेहिं[1] मुक्क, चउदह मलदोसिहिं दूरि थक्कु ।
तहं वत्तीस वि ते अंतराय. ते पालिव्वा भोयण अपाय ।
अग्गइ पाछइ[2] दायारथत्तु वज्जेवीजाणि वि सयल जुत्ति ।
पासंडि लिंगि वज्जे वि दाणु, आकिट्ठि सत्तु यारु विं अमाणु[3] ।
वेसा णिद्धम्महं दोसि गेह, वज्जि वि तहं दिट्ठिहिं कुट्ठदेह ।
वलि चरु[4] लाहण,कप्पिय भोयण, परभय भावें पिंड पढीयण ।
ए दोसइं मेल्लि वि भुंजिव्वउ, सरसा सरसु ण किं पि गणिव्वउ ।
णिप्पणउ जं परहो णिमत्तें, लद्धउ सुद्धउ समइ[5] भमंते ।
पाणिपत्ति ति परिक्खइं दिट्ठउ, पुव्वसूरि चरि आगमि सिट्ठउ ।
संजम जुत्ति मित्तु कवलेव्वउ, रसणिंदिय लउ लत्तु[6] दलेव्वउ ।
लुक्खउ आरणाल संजुत्तउ, दाणरायभत्तहं घरिपत्तउ ।

घत्ता—तहं लोय विरुद्धउ दोसिहिं वद्धउ, भोयणि मुणिवरु वज्जइ ।
आयमि जं भणियउ, चिर जिणथुणियउ, तं किर कवलु समज्जइ ।।2।।

(3)

इय चिंतिवि जिणवर ति जयणाहु, सुरवर करिकर सारित्थ वाहु ।
संचल्लिउ किय जुगमित्त दिट्टि, अइमंदु[7] मंदु किय चरण पुट्ठि ।
छंडंतु अडइ वहुवण विसेस, मिल्लंतु सचित्तइं धरपएस ।
विंसिय णाय णिहिं लोएहिं दिट्ठु णं कित्ति धम्म पिंडेण सिट्ठु ।
सो जंतु जंतु संपत्तु तित्थु, णामेण णलिणपुरु णयरु जित्थु ।
हिंडइ घरि घरि अंगण ति भाउ, धरि उच्च णिच्चि थिरु देइ पाउ ।
जा णायर णर तहिं संभमंति, अग्गइ पच्छइ हरि सिय भमंति ।
ता पहु संपत्तहु रायगेहिं, बहु पंचवण्ण धयवड सुसोहि ।
ता धायउ णरवइ सोमदत्तु, सियवत्थ जयलु मंडिय सुगत्तु ।
जय जय पभणिवि वंदइ त्ति वारु, ठाहुत्ति भणइं वहुभत्ति सारु ।

---

1. ख. घ. आयम दोसहिं सयलेहिं
2. क. पाच्छय, ख. पछइ
3. =वलिविधानादिसत्तूकार निमित्त
4. ग. चरु
5. =मध्यान्हकाले
6. लोलन्वं
7. ख. मंदु मंदु
8. ख. घ. मेल्लंतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिक्खालइ फासुग्र जलहं ठाणु, ढोवइ सिंघासणु सुहरिणहाणु ।

घत्ता—ता जिरणयइं चरणइ, सिव सुहकरणइं, ग्रट्ठ विहाणें पुज्जिय ।
तिहुग्रण हुग्र णंतइं, बहुसिरिकंतइ, पुण्णइ चारु समज्जिय ।।3।।

(4)

ता जिणु खम्मावइ सिद्धभत्ति, खीरण्णु खिवइ खिउ पालिपत्ति ।
णहयलि उट्ठिउ दुंदुहि णिणाउ, सव्वत्थ वि सुरयणु साहुवाउ ।
गयणहो संजायइं रयण विट्ठि, गंधोवय वरिसणि जणिय पुट्ठि ।
बहु कुसुम वरिस संछण्ण गेहु, तिहुयणु जणु जायउ पुलउ देहु ।
भुंजिवि परमेसरु जलु गहे वि, लोयहं चरियागमु[1] पायडेवि[2] ।
ग्रक्खइदाणु भणइं भुणि रुदें, सजलमेह गंभीर लुसद्दें ।
ता हुइ भोयणु तहि धरि ग्रक्खउ, जो भावइ सो ग्राविवि भक्खउ ।
पुणु जिणपय पुज्जइ सोमदत्तु, ग्रटंठगपुज्ज पायडइ भत्तु ।
गंधोवइ पयडइ तिण्णिधार, चंदणरस घल्लइ घुसिणसार ।
पुण्णंकुर णिह तंदुल खिवेइ, सियकुसुमिहिं णिरु[4] पुज्जणु करेइ ।
णेवज्जइं[5] णेवइं[6] मह महंत[7], दीवय उत्तारह विप्फुरंतु[8] ।
ग्रण्णाणं तमो हइं णं हणंतु, धूवइ संधूवइ गंधवंतु ।
फलभारु वि ढोवइ महुरसारु, पुप्फंजलि भामइं इग्र पसारु ।

घत्ता—इग्र पयपुज्जेविणु करमउलेविणु थुत्ति करण पारंभइं ।
चिरभवसय बद्धइं. कम्मह खंधइं, लीलइं राउ णिसुंभइं ।।4।।

(5)

तुहुं परमेसरु तिज्जइक्क णाहु, परउवयारइं वद्धिक्क गाहु ।
पइं तिहुंयण सयलु वि किउ पवुत्तु, पुणु सविसेसें महो धरु णिरुत्तु ।
पइं धण्णु पुण्णु किउ सयल लोउ, पुणु सविसेसिं हउं गलिय सोउ ।
पइं सुपसिद्धउ किउ तच्च गामु, ग्रण्णु वि महुकुलु ससि लिहिय णामु ।

---

1. क. चरियायमु
2. क. पाग्रडेवि
3. ग्रक्खयदाण
4. ख. णिउ
5. ग, घ. णेवज्जइ
6. ग. ढोयइं
7. ख. घ. महंतु
8. ख. ० रंतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पइं भव्वहं फेडिउ[1] पंक भारु, अण्णु वि महु णयरहां दोस सारु[2] ।
सा धण्णुभूमि जहिं देहिं पाउ, कह पसरइ जहिं तुह अंगवाउ ।
जे गहृण वि पइं लीलइं दिट्ठ, ते तित्थ भणेवि[3] लोएहिं सिट्ठ ।
जहिं णिमि सुवि तुहं संलीणु ठाणि, सग्गु वि मोक्खु वि तं देइ जाणि ।
तुहं[4] परमप्पउ परमप्पयारु[5], तुहुं णिम्मल केवल कप्पसारु[6] ।
तुहुं सुक्खाहं[7] वि संजणहिं सुक्खु, तुहुं णिह णहिं जीवहं परमदुक्खु ।
को सक्कइ तुहं गुण थुणण सामि, सक्कु वि सुव मक्कइ गहिय णाणि ।

घत्ता—इय जासो जंपिवि, विणउ पयं पि वि, मोणें णिउ संजायउ ।
ता दिक्ख व णंतरि, सुतरु णिरंतरि, जिणवरु जाणे परायउ ॥5॥

(6)

णिव गेहहो चल्लिउ मंदु मंदु, इरिया समिदी पालण अतंदु ।
संपत्तउ तित्थ जि दिक्ख ठाणि, तव णिव्वाहणि जाणिय पमाणि ।
वादीस परीसह सो सहेइ, बारह विह तवयरणइं वहेइ ।
तरु मूलि पडिच्छइ मेह णीरु, आसार[8] पसरदूमिय सरीरु ।
धणतम अंधारइ रयणि मज्झि, बहुदंस मसय तण जाल गुच्छि ।
घण गज्जिउ बहिरिय कण्णदारु, सो विसहइ[9] वहु दुक्खहं पयारु ।
सो विसहइ[10] विज्जुल किय झडप्प, धणवाय लहरि किय काय कंप[11] ।
चच्चरि ठिउ विसहइ अइ[12] तुसारु, हिमदड्ढ[13] सयल दलदुम पसारु ।
हेमंतवाय सोसिय सरीरु, इह दुहु तणु समु मण्णेइ धीरु ।
गिरि सिरि ठिउ विसहइ गिम्हयालु, खरकिरणपसर किय पलय कालु ।
अइ ताव जलिय दावाणलेसु, आतावणु विसहइ[9] गिरि तडेसु ।
णिय अप्प झाणु सुह रस पवीणु, णहु दुहु वेयइ वेरग्ग[14] लीणु ।

---

1. ख. फेरिउ
2. = नाश:
3. क. ० भविण, ख. तित्थरु भणवि
4. क. तुहु
5. ख. घ. परमप्पयाणु,
6. ख. ०रुक्खु
7. क. सुक्खहेवि, ख. सुक्खाहवि
8. धारा संपात आसार = मेघ:
9. ख. विहसइ
10. ख. विहसइ
11. ख. पंव
12. ख. अतुसारु
13. हिमदत्तु
14. ख. ०वरग्ग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—इव तउ पालंतहु, वणि णिवसंतहु, जाइ कालु सुह झाणें।
इंदियइं जिणंतहु[1], कम्महु णंतहु, रक्खिय जीव सुपाणें ।।6।।

(7)

ता णायरुक्ख[2] तलि तहिं वणंति, बज्जासणि संठिउ पिहु सिलंति[3]।
आरंभिउ तहिं णिरु सुक्क झाणु, जं मोह महातम पलय भाणु।
जं आयम संहण[4] णाइं थाइं, जं पुव्वधरहं णिरु सिद्धि जाइ।
जं खयमोहहं[5] विप्फुरइ झत्ति, जं केवल णाणहं[6] जम्मसत्ति।
चउ भेउ तं जि ठिउ सुक्क[7] झाणु, धम्महं[8] दो भेयउ सो पहाणु।
अग्गिम दो भेयउ केवलीए, घायक्खइ पयडण वहु[9] वलीण।
दुहुं पढमहं लंवणु सुत्त अत्थु, अवरहं दुहु लंवणु णत्थि वत्थु।
पढभेउं सवितक्कउ सवियारउ, पित्थक्कत्तणि पयडिय णिसारउ।
वीयउ सवितक्कउ अवियारउ पक्कत्तणि संमुणिय पयारउ।
जो यत्ताय जुत्ताहं पढम भेउ, वीयउ जोगिक्कहं हुइ अछेउ।

घत्ता—इय वीयहो झाणहो, मुक्ख पयाणहो, सो धरत्ति संलीणउं।
चिर कालें वद्धउ वहुभव सिद्धउ, घाइ चउक्कउ खीणउं ।।7।।

(8)

पयडिय तिसट्ठि तोडिय तडत्ति, जहं केवल रुंधणि फुरइ सत्ति।
ता केवलु णिम्मलु फुरिउ णाणु, जं वत्थु पयासण पयडु भाणु।
जं णिक्कलु णिक्कारणु महंतु, जं णिच्च णिरंजणु गुण अणंतु।
जं सव्वोदउ जं णियपवासु, जं छेय विवज्जिउ सुह वियासु।
जं परमप्पय भावेण थक्कु, जं भव भावण भावेंहिं मुक्क।
जं रयणत्ताय परिणामसारु, जं णं तव उट्ठय ठिदि पयारु।
जं इक्क समय सयलु वि मुणेइ, जं कालत्ताय पसरणु कुणेइ।

---

1. ख. जितंतहु
2. = नागवृक्षतलि
3. = विशीर्णशिलोपरि
4. = वज्रवृषभनाराच सहनन
5. ख. मुक्क
6. ख. ०णाणहो
7. = शुक्लध्यान
8. ख. घ. छम्मच्छहं
9. क. ख. वजहु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भू उवि भविसु[1] वे जसु वट्टमाणु, पच्चक्खु फुरइ अमुणिय पमाणु ।
जं णंतह दव्वहं पज्जयाहं, कालत्तयं[2] वित्थर-संठियाहं ।
जुगवज्जाणणि पयडियउ सहाउ, तेण[3] जि णणिज्जइ तहोव[4] पहाउ ।

घत्ता—ता तहिं परमेसरु, इयवम्मीसरु, दव्वजाउ णिरु पेक्खइ ।
कर ठिउ सुत्ताहलु, णाइं सु णिम्मलु, सयल वि फुडउ समिक्खइ ।।8।।

(9)

ता कंपिय इंदहं आसणाइं, मणि किरणभारभा भूसणाइं ।
घंटा टंकारिहिं बहिर कप्प, जाया सुरगण विंभिय वियप्प ।
जोइस घरि उट्ठिय सिंहणाय, दिग्गयमय सोसण किय[5] सहाय ।
पडु पडह सद्द वितर घरेसु, सइं जाया विंभिय वितरेसु ।
भुवणहं घरि वज्जहिं बहुअ संख[6], विंभिय भुवणामर वहु असंख ।
ता सोहम्में णाणें चिंतिउ, णाणु जिणेंसहु इय मणि मंतउ ।
अइ हरिसपूर पिल्लिय मणेण, जरकेसरु चिंतिउ तक्खणेण ।
आइ वि सो तहिं जोडे वि हत्थ, आइए सहि[7] भणइं सामिय कयत्थ ।
ता भणइं सक्कु करि धम्म कज्जु, जिण समयुज्जो वणि[8] होहि सज्जु ।
उप्प ण्णउं देवहो परमणाणु, करि समवसरणु जुत्ताउ पहाणु ।
तं सुणि वि धणउं पभणइं सुजाणु, इहु करमि सामि आइसु पमाणु ।

घत्ता—ता णिय परिवारें, बहुय पयारें,[9] सहुं जक्खेइ[10] परावउ ।
जिणुणाहुण वेप्पिणु, विणय थुणिप्पणु[11], णिम्मइं सह सिरि रायउ ।।9।।

(10)

समवसरणु णिप्पायउ जक्खें. कम्म पयट्ठिय[12] परियर लक्खें ।

---

1. क. भविसु, ख. भविस्सु
2. कालुत्तय०
3. = केवलज्ञानेन
4. = केवलज्ञानस्य
5. ख. कय
6. ग. घ. बहुयसंखं
7. = आदेशं देहिं
8. = जिनमतोद्योते
9. क. पराएं
10. ख. जक्खिहुं. ग. जक्खंदुं
11. ० ब्विणु
12. = कार्ये परिक्षित परिकरलक्षेंनं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सद्ध अट्ठ जोयण कय वित्थरु, मेलिय[1] पंचवण्ण मणि पत्थरु ।
पंच सहास धणुहं धर मिल्लिवि[2], आरंभिय सह णहयणु पिल्लवि ।
णीलिहिं बद्धउ तहि तल महियलु, णं हरि अंकुर[3] छण्णउं णिम्मलु ।
पंचवण्ण मणि रेणुं सुसिद्धउ, घूलि सालु पढमेण सणिद्धउ ।
सोहवि कत्थवि मरगय वण्णउं, कत्थ वि पोमराय संछण्णउं ।
कत्थ[4] वि माहणीं लेहिर वण्णउं, कत्थ वि दित्त कणए णिप्पण्णउं ।
कत्थ वि चंदकंति संघडियउ, कत्थ वि कक्केयण संजडियउ[5] ।
बहु सोहा जुत्ताउ धूलिसालु, आइमु णिप्पण्णउं अइ[6] विसालु ।
चउदारिहिं चउपोलिहिं जुत्ताउ, मणिमयतारण तेसं दित्ताउ ।
तहिं वाहिरि णिम्मिउं मणि वावेउ, णिम्मल जल कल्लोल पराइउ ।
माणखंभु अइ तुंग मणोहर, तिहुयण माणदलण अइ दुद्धर ।
चउ सालिहिं चउ पोलिहिं मंडिय, चउदिसि चउ जिण पडिम पयंडिय ।
तहि सरवर पोमिणि संछण्णउं, ठिउ वहु सुरपक्खेहि रवण्णउं ।

घत्ता—परिहा जल णिम्मल, विय सिय सयदल, तहो तलि पिहपडिहासइ ।
तहं तडि जिणगेहहं, मणिमयदेहहं, घरहं वि सेणी दीसइ ॥10॥

(11)

परिहा परितडि वल्ली वियाणु, फल फुल्लपवर पल्लव पहाणु ।
तहु अग्गइ दीसइ कणय सालु, अइ तुंग सयल सोहा रमालु ।
तहुं अग्गइ उववणु अइ महंतु, पुण्णाइय तरुवर भरु सहंतु ।
तहो अग्गइं वेई[7] रयणसार, तहो अग्गइ धयठिय बहु पयार ।
तहो अग्गइ पायारु सु णिम्मलु, णिम्मिउ हीरावलि रुइ पविडलु ।
तहो अग्गइं सुरतरु वर थक्क, चित्त रुक्ख पडिमहिं णिलुक्क ।
तहो अग्गइ वेईय रुइ रम्मिय, वहु पयार रयणेहिं विणिम्मिय ।
तहो अग्गइ सुरहरसुक्खधाम, जहिं णच्चहि वहु देवाह राम ।
तहो अग्गइ सालु वि सालु इट्ठु' मणि किरण जाल संभार पुट्ठु ।

---

1. = संग्रहत्य
2. ख. मेल्लिवि
3. ख. यंकुर
4. ख. कहवि
5. ख. घ. संघडियउं
6. अह
7. ख. ०वइ०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहु अग्गइ मणि फलहेहिं बद्ध, बारह भित्तिहि अंतरि णिरुद्ध ।
अग्गइ पीवत्तउ रयणसारु, उप्परि असोउ वहु लच्छि भारु ।

घत्ता—तहोतलि सिंहासणु, भणिभाभूसणु[1], गंधकुटी परिवारियउ ।
विय सिय मंदारिहिं, बहुय पहारिहिं, मालिहिं णिरु संभारियउ ।।11।।

(12)

चउ सालिहिं तहिं वेइय पंचहिं, मंडिउ समवसरणु मणि संचिहिं ।
सालि सालि तहिं पोलि पसिद्धय, पोलि पोलि मणि तोरण रिद्धिय ।
चउ दिसु वीस सहस सोवाणिहिं, मंडिउ इच्छु क्किक्कु पमाणिहिं ।
पढम पोलि तहिं वितर रक्खिहिं, भव्बु लोअ आवंतु[2] समिक्खहिं ।
बीय पोलि[3] ठिय णाय सुरेसर, मुग्गर कुलिस पास संठियकर ।
णव णिहाण तहिं संठिय दीसहिं, मणि दित्तिहिं जे दुच्छइं भीसहिं[4] ।
तहिं बहु मंगल दव्वइं णियहिइं, अट्ठुत्तरु सउ संखामहियइं ।
पह उह दिसि दो णाडयसालउ, ठामि ठामि मंडियउ विसालउ ।
ठामि ठामि तहिं धूव धडुल्ला, अयणिसु[5] सुरहिं धूम भरभल्ला ।
ठामि ठामि कीडागिरि[6] सुंदर, सेवागय संठिय णं मंदर ।
ठामि ठामि मणिरासिउ भासहिं, तमु दालिद्दत्रि दूरिहिं णासहिं ।
ठामि ठामि चित्तहिं[7] व णिम्मिय, जिण पडिमंकिय[8] उरि णं धम्मिय ।

घत्ता—तहिं पोलिसु तिज्जिय, रयण समज्जिय, रक्खिय जोइ सदेवहिं ।
करि किय बहु संछिहि, सार समत्थिहिं, पयडिय जिण पयसेवहिं ।।12।।

(13)

ता पोलि चउत्थिय फलिहसाल, तहिं भितर वारह गण विसाल ।
तहो अग्गइ[9] वेई धवल वण्ण, चउदाररयण पयडिहिं रवण्ण ।
तहो अग्गइ पीढत्तउ रवण्णु, वहुभेय रयण किरणेहिं छण्णु ।

---

1. क. भणि भासणु, ख. घ. भणिभाभूसणु
2. ख. पउलि,
3. = अवलोकयन्ति
4. ग. भीसही,
5. ख. ग. अह.
6. ख. ग. कीलागिरि,
7. चैत्यवृक्षः
8. = प्रतिमा सहित चैत्यवृक्षः
9. ग. अग्गल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पढमहों पीढहो[1] सिरिधम्मु चक्कु, सह सारिहिं[2] जुत्तउ पुरउ थक्कु ।
बीयहुं पीढहो सिरि अट्ठकेय, देवंगिहि लंविय अट्ठ भेय ।
तइयहो पीढहो सिरिदेव सिट्ठ, संठिय बहु❀सिरि पडिहेर अट्ठ ।
तहिं उरि सिंहासणु खणसारु, जक्किहिं बुद्धिहिं[3] णिम्भय पयारु ।
तहो वित्थरि संठिउ पोमजाणु, तहो उप्परि छत्तत्तउ पहाणु।
तहों तलि परमेसरु णिरवलंबु, चउसट्ठि[4] चमर वीजिउ सुबिंबु ।
सिंहासणु बाहिरि गंधगेहु, बहुदेव कुसुम संपुण्ण देहु ।
सुरचंदण सिंचिय सयल खोणि, महमहइ गंध कप्पूर जोणि ।
सव्वत्थवि णिवडइ कुसुम विट्ठि, मुत्तिय रंगावलि जणिय सिट्ठि ।
अण्णु वि जं तिहुयणि सारवत्थु, तं किउ जक्खें णिरु सुलहु इत्थु ।
[5]छुडुसमव सरणु णि पुण्णु पुणु, ता सक्कविंदु आवण पवण्णु ।

घत्ता—ता दुंदुहि वज्जइ, तिहुअण गज्जइ, चउणिकाय संचल्लिय ।
जय जय पभणंता, पुलउ वहंता, हरिसभाव परिपेल्लिय ॥13॥

(14)

एरावणि आरुढउ सुरिंदु, बहु अच्छर ढालिय चमर विंदु ।
दिसिपाल सवल चल्लिय महंत, णिय वाहण णिय परिवारवंत ।
दुंदुहिरव गज्जइ णहु समुद्द, धयवड कल्लोलिंहिं हुउ रउद्दु ।
बहु धवल विमाणिहिं केण जुत्तु, सुदबाहण जलयर कोडि भुतु ।
सुरकाय कंति तोइं[6] विसालु, सिय छत्ता कमल खंडहिं रमालु ।
तहिं विद्दुम रमणइं विद्दुमंनि, मुत्ताहरणइं मुत्ताहलंति ।
बहु धूव धूम मंडलु विहाइ, जलयाणहिं उट्ठिउ भेहुणाइ ।
तहि संखहि संजाआ सुसंख, जलसिय[7] पक्खहि चमरहिं[8] असंख ।
सेवालइं सिक्किरि[9] सयसमूहु, जलसप्पइं मणितोरणहं बूहु ।
वाडव जलणा अइ सूरु तित्थु, एरावड मंदर तुल्ल जित्थु[10] ।

---

1. ग. सारहिं, 2. क. बीढहो,
3. क. बुद्धि + =चैत्यवृक्ष ❀ =प्रतिमा सहित चैत्यवृक्ष
+ =आरा 1000 धर्मचक्र, ❀ =श्री ह्रीधृतिकीर्ति बुद्धि लक्ष्मी =बूजा
4. =भवणवासी 20. व्यंतर 16, कल्पवासी 24, सूर्य, 1, चन्द्र 1.
5. क. बुडु, 6. ग. तोएं
7. =समूहैः 8. =श्वेत पक्ष. ख. घ. चमरइं
9. =छत्री 10. ख. घ, जेत्थु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—वायंतु[1] णडंतउ, गेउ भणंतउ, देवसत्थु तहिं आयउ ।
जहिं ठिउ परमेसरु, परमु जिणेसरु, परमणाण संपायउ ॥14॥

(15)

सह मज्झट्ठिउ दिट्ठउ[2] जिणिंदु, मंडल मज्झट्ठिउ[3] णाइ चंदु ।
घाइक्खपदह अइसयहिं जुतु, परमेसरु हुउ केवल पवित्तु ।
जहि जहि विहरइ तहि तहि सुभिक्खु, चउदिसि सय सय योयण परिक्खु ।
गयण गमणु जीवहं सयल रक्ख, उवसग्ग भुत्ति वज्जण समिक्ख ।
छाया वज्जिउ चउमुहउं रूउ, अप्फंदु जाउ लोयण सरूउ ।
संजायउ विज्जा सयल णाहु, णहं केसर विद्धि वज्जण सणाहु ।
इय अवसय दह णिम्मल हवंति, जगि तित्थयरहो णिच्चलइं थंति ।
मित्ती सव्वहं जीवाहं जाय, सव्वत्त कुसुम फलदल सुछाय ।
धर णिम्मल दप्पण पडिमदिट्ठ, सीयल समीर संचरण सिट्ठ ।
मारुय सुरधर णिम्मल करेहिं, तिणकीडय कंटयऊ सरेहिं ।
घण सुरवरि[4] सहिं गंधोउ तित्थु, णह दिसि मंडलु णिम्मलउ जित्थु ।
मंगल अट्ठइं अणु धम्मचक्कु, मागहिं भासा सहुं अइ गुरुक्कु ।
अवरुप्परु सुरसद्दणु कुणंति, णिरु पोमजाणु अग्गइ ठवंति ।
अट्ठारस धण्णइं धर हवंति, इय पनुहइं देवेहिं तासु थंति ।

घत्ता—इय अयसयवंतउ, णाण महंतउ, देवहिं तहिं जिणु दिट्ठउ ।
जय जय पभणे विणु, पुरउ सरे विणु पणमिउ भावपघुट्ठउ ॥15॥

(16)

आइवि तहि[5] ति पयाहिणु करेवि, बहुभत्ति भारविणए णमेवि ।
जोडेवि हत्थ संथुवण लग्गु, चउगइ भवभमसंसारभग्गु ।
जय जय परमेसर अप्परूअ, जय भाविय रयणत्तय सरूअ ।
पइं वुज्झिउ अप्पहु फुडु सहाउ, पइं मुक्कउ परदव्वाहं भाउ ।
तुहुं भुंजहि णाणामय[6] सुसाउ, पइं उज्झिउ[7] भवभावहं कसाउ ।
तुहुं परमप्पउ तुहुं परमदेउ, पइं दिट्ठउ णाणाणाण भेउ ।

---

1. =वाद्यानि वादन
2. ग. दिठउ
3. ग. ०ठिउ
4. क. ०वर०
5. ख. तेहि
6. =ज्ञानामृतस्य
7. =तेजितः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुहुं एक्करूउ णिमुक्करूअ, तुहं सव्वहं पररूअहं[1] अरूअ ।
तुहुं सीयलु संतउ सिवसहाउ, तुहुं परमपरापर पर पहाउ ।
पइं कारक[2] णियरु वि दूरि चित्त[3] को अण्णु संगु पइं णाह छित्त ।
जं दव्वजाउ पज्जायजुत्त, तं तुह णाणी वहि लविण[4] सितु ।
जे तिहुयणि वट्टहिं जीवभव्व, ते तुहं असेहुअ सुद्धदव्व ।
तुहुं अवरु[5] तुज्झ गुण जो थुणेइ, सो[6] णहु[7] कइ अंगुल इय गणेइ ।
जो मणवयणिंहि तुहं गणहं धुत्ति, तं मण्णउं कवलहि गयणभुत्ति ।
तुहं बाहिरु असु वि मुणिउ जेहिं, दुक्खहं सलिलं जलि दिण्णु तेहिं ।

घत्ता—इय थुणिवि सुरेसर, सिरि संठियकर, हरिसपूर पर परमट्ठा ।
किय उवसम भावें, साहु सहावें, णिय णिय कोठि वइट्ठा ॥16॥

(17)

पढमइं कुट्ठइ मुणियर वइट्ठ, वीयइ कप्पामर णारि सिट्ठ ।
तीअइ अज्जिय संठिय सुसील, तुरियइं जोइस णारिउ सुलील ।
वितरतिय पंचमि संपवण्ण, छट्ठइ णायइं णि बहु कुलिउ सण्ण ।
सत्तमि भुवणामर तेय पुट्ठ, अट्ठमि वितर सयल वि पयट्ठ ।
णव मइं जोइस वहु तेयरुंद, दहमइं उवविट्ठा कप्प इंद ।
एयारह मइं संगय माणुस, बारह मइं तिरिअंच अतामस[8]
अवरुप्परु जहं चिरु वेर भाउ, ताहं वि संपायउ सम सहाउ ।
बग्घी थणि धावइ तित्थु वच्छु, मूसउ मज्जारिहिं छिवइ वच्छु ।
णउलहु मुहुं चुंवई तित्थु सप्पु, हरि करि वि दोवि मिल्लंति दप्पु ।
तहिं मरणु ण कासु वि णेअ जम्मु, णहु भुक्ख तण्ह णहु कूरकम्मु ।
णहु णिद्द रोय कंदप्प भाव, णहु पीडा भय दुट्ठा सहाव ।

घत्ता—इय तहिं बहु भवियण, णिरु णिम्मल मण, बारह कुट्ठय संट्ठिया ।
णिय उरि जोडिय कर, धम्मायरवर, णं लिप्पेण परिट्ठिया ॥17॥

इय सिरि चंदप्पचरिए महाकइए महाभव्वसिद्ध
पाल सवणभूसणे केवलणाण उप्पत्ती णाम
दहमो संधि परिच्छेउ समत्तो ॥10॥

ग्रन्थ संख्या—192, अक्षर 19

---

1. ख. रूवंहं
2. = कर्ताकर्म क्रियादि
3. ग. चतु
4. = लवणपाणी, 'एकत्र' आत्मा
5. क. अवर
6. = कविः
7. आकाश,
8. क्रोधरहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एयारहमो संधि

(1)

घत्ता–भवियण सुमण सवण परिपीणण, अमय[1] सहाव संगया ।
ता जिणणाण जलहि[2] गलगज्जिय, मागहवाणि[3] णिग्गया ।

दुवई–मेहहु गज्जिव फुडु वण्णु चुक्क, जोयण माणि वित्थरणि थक्क ।
णिय णिय भासा भेएण थाइ, सुरणर तिरियहं परिणामि जाइ ।
वित्थेय सास[4] वज्जिय अगव्व, जुगवं[5] पयडिय पज्जाय दव्व ।
तिणवइ गणहर वित्थरहिं वाणि, संगह विचारु णिय णिय पमाणि ।
परमेसरु भासइ सत्ततच्च, ते वण्णिय भंगुप्पाय णिच्च[6] ।
जीउ अजीउ आसव विबंधु, संवर णिज्जर मुक्खु वि अबंधु ।
इय सत्त वि तच्चइ फुडु कहेइ, भवयहं संदेहहं अवहरेइ ।
दो भेउ पढमु इह जींव दव्वु, संसारि सिद्ध भावेण सच्चु ।
संसारिउ पुणु दो भेउ दिट्ठु, तस थावर भेएं सो विसुद्धु ।
चउ भेयहिं तहिं तस फुडु हवंति, पंचहिं भेयहिं थावर सहंति ।
अण्ण वि थावर दो भेय उत्त, सुह मइं वायर रूवेण जुत्त ।
तस थावर पुणु दो भेय हुंति, पज्जाए दर भावेण थंति ।

घत्ता–पढमउं तस वण्णणु, भेय णिवण्णणु, चउगइ जाणिहिं वज्जरइ ।
भवियहं मणि थक्कइ, मोहणि लुक्कइ, जिणवरु संसयु[7] संसरइ ।।1।।

(2)

वे इंदिय पमुहा ससुय[8] उत्त, ते फास रसण इंदियहिं जुत्त ।
'ते इंदिय घाणें सहु हवंति, चउरिंदिय णयणइं परिगणंति[9] ।

---

1. = अमृत
2. = मेघ
3. = मागधी भाषा = प्राकृत
4. = श्वासोच्छ्वासरहित वाणी
5. = युगपत्
6. = उत्पादव्यय ध्रोव्य युक्तं सत् ।
7. खा. संसउ
8. घ. तसए
9. ख. घ. परिगहंति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचिदिय सवणहिं सद्दु लिंति, ताहं वि केइ वि सण्णी[1] हवंति ।
जोयण वारह हुइ संख अंगु, कोसत्तऊ खज्जूरय पसंगु ।
भमरहो जोयणु इक्कु[2] जि पमाणु, जोयण सहासु मच्छहु पमाणु ।
इहु तसहो उक्किट्ठउ काय माणु, जेहउ भासइ केवलु सणाणु ।
वियलिंदिय वियडिय जोणि हुंति, गब्भुभव संपुड वियडि थंति ।
एयहं अण्णु वि सीअणह[3] जोणि, अण्णु वि तहं मिस्सा कम्म खोणि ।
वेइंदिय वारह वरिस आउ, उक्किट्ठउ फुडु जीविय सहाउ ।
णव चालीस दिवस फुडु तिक्खहं, उत्तउ छम्मासइ चउ अक्खइं ।
मच्छहं पुव्वकोडी जीवेव्वउ, अवरहं अवरु अवरु णाइव्वउ ।

घत्ता—पक्खिहिं ठिउ आउसु, इहु परमाउसु, वरिस सहस्स वाहत्तरि ।
सप्पाहु सुणिज्जहु, भंति म किज्जहु, तहिं चालीस दु उत्तरि ।।2।।

(3)

वहु आयारिहिं इह होइ फासु, जव णाणु व ठिउ सवणहं पयासु ।
पोमहु[4] पत्तु व जीहा विहाइ, धाणु जि अइवंतहु[5] फुल्लुणाइ[6] ।
वट्टलिय मसूरिय[7] पडिमु चक्खु, इय पडिमइ[8] भासइ विस्स चक्खु ।
अप्पुट्ठउ विदइ णयणरूउ, सवणु जि पुट्ठउ सद्दहु[9] सरूउ ।
पुट्ठापुट्ठउ सेसा[10] मुणंति, इय इंदिय गहणइं जिण भणंति ।
फासहो गंधहों रसहु णिरुत्तउ, णव-णव[11] जोयण विसउ पउत्तउ ।
सवणहो[12] जोयण वारह दिट्ठउ, सत्त चाल सहसइं णयणिट्ठउ ।
अण्णु जि जोयण दुसय दिसट्ठउ, चक्कवट्टि लोयण[13] परिमट्ठउ ।

---

1. क. सन्नी
2. घ = एक्कु
3. ख. घ. सीउण्ह
4. ख. पोमहं
5. = अतिमुक्त पुष्पनाली तिल्ल फुल्लाकार,
6. ख. फुल्लणाइं
7. ख. मसूरी
8. =आकाराश्चक्षुषाम्
9. क. सद्दउ, ख. सद्दहो
10. = शरीर नाशाजिह्वा
11. ग. णउ णउ
12. = विषय
13. = नेत्रविषय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मणु पुणु दो भेएहिं पउत्तउ, दव्व भाय भेरण्ण णिरुत्तउ ।
दव्व चित्तु हिययम्मि वइट्टउ, अट्ठवत्त कमलुव्व विसिट्ठउ ।
भाउ[1] जि पुणु सो अप्पयहो भाउ, को वण्णण सक्कइ तहो सहाउ ।
ईसीसि पयहु जो अप्पदेसु, सो इंदिय भेयं हुअ असेसु ।

घत्ता—जे तिहुयणि णिवसहिं, कम्में विलसहिं, ते पंचदिय णिरु भणइं ।
सुरणर णारइयहं, णिय भवि तवियहं, ताहं विठाणइं संगणइं ।।3।।

(4)

पढमें इह वण्णइ णारय ठाणु, जं रज्जु सत्त ठिउ[2] उट्ठमाणु ।
णारउ पढमु[3] तेरह पत्थडयहिं, उवरि उवरि परिमंडिय घडयहिं[4] ।
पढमइ पत्थडि णारयइं हवंति, निसि दिसि एउण पण्णास थंति ।
विदिसि-विदिसि अट्ठय चालीसहिं, सेणीवद्धहिं ईंदिय[5] दीसहिं ।
हिट्ठिम पत्थडयहं सेणिबद्ध, एक्केक्की[6] हीणा ते णिरुद्ध ।
दिसि विदि[7] संतरि जे पुर हवंति, ते कुसुममहं पयरव वहलसं ।
सक्कर धर इंदय एयारहं, वालुअ धर नव ट्ठिय दुहसारहं ।
पंकप्पहिं इंद जि सत्त[8] ठिय, धूमप्पहि ते पंच परिट्ठिय ।
तह पहि पच्छड तिण्ण जि भणंति, तम तम पहि एक्कु जि जिण कहंति ।
रयणप्पह[9] इंदय पुर माणउं, दिट्ठउ माणुस रित्त पमाणउं
सत्तम णारय मज्झि पुर वित्थरु, जोयण लक्ख पमाणु सुदुद्धरु ।

घत्ता—रयण धहु तीसहिं, पुणु पणवीसहिं, तइयउ पणरहि परियरिउ ।
जम्मण विललक्खहं, दुक्खसमिक्खहं, दहेहिं चउ छउ परिसरयउ ।4।

---

1. =भावमनः;
2. ग. जिउढ०
3. =प्रथम नरके
4. ग. थडयेहिं
5. ग. इंदय
6. घ. एक्केक्कं
7. =दिग्विदिग् मध्ये पुष्प प्रकीर्णकाः संति,
8. ग. 3,
9. रत्नप्रभ मध्ये प्रमाण योजन 4500000

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(5)

पंचमु तिहिँ लक्खेहिँ सु दिट्ठउ[1], पंचऊण लक्खिक्कें छट्ठउ[2]।
अइ बहु दुक्ख कोडि संतत्ती, सत्तमि पंचहिँ विलहिँ णिरुत्ती।
सत्तहिँ [3]णरयहं विलगणु घुट्ठउ, पढम णरय पढमिंदय जीविउ।
वरिस सहास दसिहिँ उद्दीविउ, परमाउसु तित्थु जिणु भासइ।
गणियहिँ वरिसहिँ णउअ[4] सहासहिँ, वीयइ इंदइं णव लक्खिहिँ णिउ[5]।
वरिसहिँ आउ जहण्णु परिट्ठिउ, णउ अहिँ लक्खहिँ तित्थु व किट्ठउ।
तइ अइ एउ जहण्णु सुदिट्ठउ, ...
आउ असंखहं बहु दुहगव्वहं, उक्किट्ठ उ पुणु कोडी पुव्वहं।
गाढु-गाढु बहु दुक्खहं भरियहं, एउ जहण्णउ जीविउ तुरियइं।
तहिँ[6] परमाउ सुएहि णिरुत्तउ, दहमु अंसुसायंरहो पउत्तउ।
तेरह मइं ठिउ सायरु जायहि, वट्टइ अहिउ अहिउ इय तावहिँ।
सायर सत्तय ठिय वालुप्पहि[7], तिण्णि जि सायर तहिँ[8] सक्कर पहि।
छट्ठइ सत्तमि अहिउ पउंवमि[9], दह सत्तारस तुरियइ पंचमि।
ए परमाउस भणिय णि- रुत्ता, वावीसहिँ तेंतीसहिँ जुत्ता।

घत्ता—पढमइं जं दिट्ठउ आउ उक्किट्ठउ, ट्टिठल्लि जहण्णउं।
इय कमिठिउ सव्वहं, अइ दुहदव्वहं, णरयहं आउपत्तउ ॥5॥

---

1. घ. ०दिट्ठी
2. घ. छट्ठी,
3. ग. सत्तहिँ
4. ख. घ. णवइ, ग. णवंय
5. क. तिच्छु क्किट्ठउ
6. ग. तेहिँ
7. तहं
8. ख. घ. वालुयपहिँ
9. क. पउंचमि, ख. घ. पवंचमि,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(6)

पढमुइं इंदइ देहु वि तिहुत्थु, उदए उप्पज्जइ सुट्ठु[1] दुत्थु ।
तहिं अहिउ अहिउ इय देसु होइ, तिरह[2] मइं धणुहइं सत्त जोइ ।
तहण्हत्थ[5] तणि अंगुलइ छप्पि, परमेसरु जंपइ फुड वियप्पि ।
तहं विउणु विउणु[6] तल मेयणीसु, उदएण अंगु हुइ दुहधणीसु ।
तहं सत्तमि धणुहइं सयइं पंच, तुंगेण हुंति पावहं पवंच ।
रयणप्पहि हुइ विवरीउ णाणु, चउकोस खित्त जाणण पमाणु ।
अद्धु कोसु इय राहं हीणु, जहं कोसुइक्कु सत्तमइं लीणु ।
णारउ मरेवि पंचक्खु जाइ, तिरियंचु हवइ माणुसउ थाइ ।
सण्णी पज्जत्तउ कम्मखोणि[7], णहु वियलिंदिय[8] णहु देव जोणि[9] ।
सत्तम पुढविहिं पुणु पसु जि होइ, णहु मणुयत्तणि संघडइ कोइ ।
णारइउ ण हरि बल चक्कि जम्मु, णरयहो आइउ पावइ अहम्मु[10] ।
तुरियहो णरयहु णउ[11] तित्थु णाहु, उप्पज्जइ बहु अइसइ सणाहु ।
पंचम णरयहो णहु चरम देहु, छट्ठउ णहु मुणि संजमहो गेहु ।
सावउ[12] सत्तमयहो णेय दिट्ठु, तिरियंचु घोर कम्मेण दुट्ठु ।

घत्ता—इय सत्तहं णरयहं, वहु दुहघरयहं, जीउ वि मरि[13] उप्पज्जइ ।
अइ पावइ[14] माणइं, अप्पु ण याणइं, घोरइं कम्मइं अज्जइ ।। 6 ।।

---

1. घ. उदय (त्रहस्तेन दीर्घा:), 2. ग. सुख
3. =अतिशयेन दु:खी 4. ख. ग. तेरह,
5. ख. ते हेत्थ, घ. ते हच्छ
6. क. विवणु विवणु, 7. =कर्मभूमे: संज्ञी पर्याप्तो भवति,
8. नारकी मृत्वा विकलत्रये 9. =देवो न भवति,
10. =अधर्म:, 11. क. णं
12. =व्रतधारीन् 13. = मृत्वा
14. =अतिपापानि मानयति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(7)

सण्णा वज्जिउ[1] पढमिल्लि जाइ, घरगोहा[2] पमुहं वीइ थाइ ।
पक्खि तइअइ[3] जाइ उप्पज्जइ, सप्पु चउच्छइं णरयहो वज्जइ ।
पंचमि केसरि णारिउ छट्ठइ, सत्तमि तिमि णर अइदुह कट्ठइ ।
पढमिल्लि णरइ हुइ अट्ठवार, णियमेण णिरंतर दुह पयार ।
इक्कक्कउ णं[4] इयरेसु जाणि, जह दुण्णिवार सत्तमइं णाणि ।
पढमं तरु चउवीस मुहुत्तुइ[6], वीयइ दिवसइ सत्त णिरुत्तइ ।
तइयइ पक्खु जि मासु चउत्थइ, पंचमि मास दुण्णि चउ छट्ठइ ।
अद्धु वरिसु सत्तमि दुह पुट्ठइ, ... ।
केवल णाणें जेम सयासिउ, इय णरयहं जणणं तरु भासिउ ।
तिय णरयहिं छह संहणणि जाइ, तल णरय जुअलि पंचेंहिं[7] भाइ ।
छट्ठइ चउ संहणणेहिं जुत्तु, सत्तमि आइउ संहणणि पत्तु ।
णारइ यहु णहु संहणणु कोइ, संठाणु हुंडु पुणु तहं वि होइ ।
सव्वहं णारइयहं खंड लिंगु, संपज्जइ वहु पीडा पसंगु ।

घत्ता—दुहु पंचपयारहु, पीडा सारउ, अहिउ अहिउ णरयहं हवइ ।
जगि ताव पहावें, कम्म सहावें, धम्मि[8] विणु सो तहिं हवइ ।। 9 ।।

(8)

चउणरय भूमि अइ तावतत्त, तहं तिहिं अंसिहिं पंचमि पलित्त ।
पंचमं सुअणु छट्ठी सत्तमि, तहं सीयत्तणु कहहउं वण्णमि ।

---

1. =असंज्ञी;
2. =क्रिरकंटिय विश्रुभरादि
3. ग. तहयइ, घ. तइए
4. क. ण.
5. ख. पढमिं;
6. =प्रथम भूमौ चतुर्विंशति मुहुर्तं नारकाणामुत्पत्ति र्नास्ति
7. पंचमहिं
8. ख. घ. धम्में ।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णारइयहं असुईय जम्म ठाण[1], हिट्ठामुहं[2] किय भच्छय समाणु ।
तिमिर पूइ कंटेंहिं सुसड[3], तेसु हवंति जीव कम्मु भड[4] ।
किण्ह णील कापोय सुलेसिय[5], वद्ध घोर कम्मेण जि पेसिय ।
एय मुहुत्ति[6] परिपुण्ण देह, हिट्ठामुह णिवडइ पाव गेह ।
असि पत्ति खित्ति णिवडं तितिच्छु[7], वहु पहरण लक्खइं तिक्ख जिच्छु[8] ।
अइ सुइ तिक्खइं तहिं तिणाइं[9], आइस गुक्खरु[10] सक्कर घणाइं ।
पूई किमि पूरिय जलणिहाण, अह ताविय तंवय रसहु ठाण ।
सव्वु वि तहिं दीसइ कूरसत्तु, सव्वु वि दीसइं मारणहं पत्तु ।
जं भक्खइ तं गरल समाणउं[11], जं सुंघइ, तं फोडइ धाणउं ।
जं आयण्णइ तं कण्ण सूल, जं करि फंसइ तं दुक्ख मूलु ।
जं पिक्खइ तं तं हणइ चक्कु, सव्वत्थ वि तहिं संभवइ दुक्खु ।

घत्ता—इय[12] लक्खणु कित्तहु, असुह णिमित्तहु संखेवेण पउत्तउ ।
विंत्थरि पुणु वण्णण, णिय मणि मण्णण, जिणवरु देव पउत्तउ ।। 8 ।।

(9)

ताहं सरीर दुक्खु जइ वण्णइ, सुय देविवि अप्पउ जइ मण्णइ ।
पंच कोडि अडसट्ठिय लक्खइं, सहसइं णव णव दीयसु संखइं ।
पंचसयइं चउरासी अहियइं, इक्क अंगि इय मंदइं[13] कहियइं ।
अंगुलु अंगुलु वहु गय[14] विद्धउ, णार पिंडु एम णिरु सिद्धउ ।

---

9. ग. ठाणु,
2. =अधोमुखी भावुडी समाना,
3. =सुसंघट्टसंयुक्ता;
4. =कर्मोद्भटाः;
5. क. क. कायो अ सुसेविय
6. ख. घ. मुहुत्तों;
7. ग. तितेच्छु;
8. ख. घ. जेच्छु;
9. =नरके तीक्ष्णसूची समानतृणानि विद्यन्ते;
10. =लोहमय गोरव;
11. =विषसमान भक्ष्यवस्तु;
12. ख. इय,
13. =व्याधि,
14. =व्याधि ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खणि खणि ताहं ण वल्लइं दुक्खइं, णिमि सुवि णहु[1] लहंति तहिं सुक्खइ ।
अण्णु वि माणस दुक्खिहिं तप्पहिं[2], चिरभव दुक्खइ[3] समणि वियप्पहिं ।
हउं हरि पडि हरि हउं चक्कवट्टि, हउं रायहिं वंदिउ रायवट्टि[4] ।
भू खेवइ[5] तहिं मइ जणिय राय, एवहिं विसहमि मुग्गरहं घाय ।
अण्णु वि असुरिहिं पुणु चोइज्जइ, चिर भव वेरइ संभारिज्जइ ।
तुहुं कारणि संगरि मारिउ, सीहें[6] गयवरु तुहुं संहारिउ ।
धगिध तुहुं हरिणुल्लइ खद्धउ, तलवरेण तुहुं तक्करु वद्धउ ।
इय पमुहहं वेरइ संभारिय, मणिलें जलणु व ते संचारिय ।

घत्ता—लहु पिंगल केसउ, मल मसि[7] वेसउ, दीह दंतु भीसावणउ ।
करि किय दिढ पहरणु, तहिं मग्गिय रणु धावइ हणण रोसावणउं ।। 9 ।।

(10)

वहु पहरणि चूरि वि कियउ चुण्णु, पुणु जं त मज्झि वट्टण पवण्णु ।
पुणु खित्तउ तत्तय तिल्ल मज्झि, पुणु तिव्व खार कुंडयहु गुज्झि[8] ।
पुणु पुणु सो खणि हुइ पुण्णु देहु, धावहिं[9] णारय गण लेहु लेहु ।
पमणइ[10] तुव भावइ मंसगासु, चम्मुक्केलि[11] वि मुंहि घिवहिं तासु ।
तं वउ पायहि महु महु भणेवि, अंगाल देहि उंवर[12] गणे वि ।
लोहहु पुसलि ताचि वि सुतत्त, आलिंगावहिं पिय परकलत्त ।
इह रूअ दिक्खि तुहुं रत्तणाइं, पीणत्थणि पिहुलणियं घ भाइ ।

घत्ता—इय पंच पयारउ, वहु दुहसारउ, णरयहं को किर वण्णइं ।
जं मणि चिंतंतउ. णिउणु गणंतउ, अप्पउ दुहि ठिउ मण्णइं ।। 10 ।।

---

1. ख. घ. तहिं,
2. क. ग. तप्पइ,
3. ब. सुक्खइ,
4. =राजपट्टे,
5. =मया भूक्षेपेन राजा जिता विद्याधर भूमि च राजिता
6. ख. सीहिं,
7. ख. समि,
8. ग. सज्झि,
9. ख. धावहि
10. ख. अंगदीव,
11. =1600,
12. =वज्रधातकी द्वीपे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(11)

संखेवें उत्तउ णरयचारु, एवहिं भासइ भवणहं वियारु।
ते भवणवासि सुरदहं पयार, खरभाइ वसहिं णव भेयसार।
घर पंक बहुलि असुराहं ठाणु, ताहं अक्खमि जीविय देह माणु।
असुरहं जीविउ सायरु णिरुत्तु, णायहं[1] पल्लोवम तिण्णि वुत्तु।
गरुडहं आढाइय[2] पल्ल आउ, दीवहं पल्लहं दुइ ठिउ पराउ।
सेसहं सह जाइहिं सद्ध पल्लु[3], णहु चुक्कइ जिणवर णाह वुल्लु।
पणवीस धणुहं असुराहं देहु सेसहं दह[4] धणु इह धाम गेहु।
कसिण असुर अहिड अहि सुसेय[5], गडुरुच्छरिण य[6] दिसि[7] कुमरसुपीय।
विज्जु अग्गि दीवय हरि वण्णा, वायकुमार सुसक्कर वण्णा।
पक्खिक्कें असुरा ऊस संति, वरिसहं सहसें णिय असणु लिंति।
अहि गरुड दीव तेरह मुहुत्त, सट्टइ[8] अच्छिवि ऊस सण पत्त।
तेरहिं दिवसिहिं सट्टेहि[9] मुत्ति, इय भासिय भोयण सास जुत्ति।

घत्ता—अवरहं तिहिं वारिहिं, सुद्ध पयारिहिं, पाणायामु मुहुत्तिहिं।
बारहिं दिण मारिणहिं, समय पमारिणहिं मोयण होइ
उपत्तिहिं ।। 11 ।।

(12)

अंतिम तिहिं जाइहिं होइ सासु, माहुत्त सत्त सट्टहिं पयासु।
दिण सत्तिहिं सट्टहिं असणचित, मणइच्छा भोयणि धुम्र समत्त।

---

1. = सुवर्ण द्वीपे, 2. ख. महो उरय,
3. क. भू., 4. ग. पिसापय,
5. = व्यंतराणां दिसि पंचपुराणि प्रत्येकं जम्बूद्वीप प्रमाणानि,
6. ग. कख 7. ख. देसं,
8 ख. सढइ, 9. साट्टइहिं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असुरहं उक्किट्टउ अवहिणाणु, गय संख कोडि जोयण पमाणु ।
सेससं णवहिं सम वितराह, सहसाइं असंखइ णाणु ताहं ।
असुरहं भुवणाइं चउसट्ठिलक्ख, णायहं चउरासी तेसु संख ।
वाहत्तरि लक्खइ गरुड गेह, वहु वण्ण रयण संघडिय देह ।
अग्गिम छह जाइहि भुवण[1] हुंति, छाहत्तरि[2] लक्खइं जिण कहंति ।
वायहं गेहइं छाणवइ लक्ख, णिय णिय वण्हि जाणिय परिक्ख :
पडि भुवणि भुवणि जिण विंबु दिट्ठु, वहु भुवण मउड पय घट्ठु वीठु[3] ।

घत्ता—वण्णिय भुवणामर, मिल्लिय वित्थर, ले सुद्दंसि पुहवि तलि ।
इह वण्णमि वितर, महि वहु ठिय घर, अणु संठिय जे उवहि जलि ॥ 12 ॥

(13)

भेयहिं अट्ठहिं वितर हवंति, दो भेय पंक वहुलंमि ठंति ।
सेसहं छह भेयहं पवरदीवि[4], ठिदि णिच्छल रवि ससि कय पईव ।
चउदह सहसइं भूयाहं वास, रक्खहं सोलहं[5] विप्फुरिय भास ।
अंजणि किदीवि किण्णर वसंति, किं पुरिस वज्जधादकि[6] सहंति ।
सोवण्णि[7] महोरग[8] वासुलिति, ... ।
मणिसिलकि वसहि गंधव्व णाह, वज्ज वि जक्खाहि व सिरि सणाह ।
रजयम्मि दीवि ठिय रक्खसिंद, हिंगुलकि भूय[9] सामियहं विंद ।
हरिदालि व सहिं ते वहु पिसाय,[10] अवरुप्परु सिरिं दंसण कसाय ।
चउ[11] दिसि एयहं संठाण हुंति, दिसि-दिसि पुर पंच जि जिण कहंति ।

---

1. क. भुअण० 2. क. बाहत्तरि
3. =भवनवासिदेवानां मुकुटैः भ्रंष्टपादाः
4. ख. अंगदीव, 5. = 1600
6. वजधातकीद्वीपे । 7. सुवर्ण द्वीपे
8. ख. महो उरय, 9. ख. देसं,
10. ग॰ पिसापय,
11. =व्यंतराणां दिशि दिशि पंच पुराणि प्रत्येकं जंबूद्वीप प्रमाणानि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ते सव्वे जंबूदीवमाण, जाणिय जिणिंद कहियइं पमाण ।
जे अवर पवर वितर असंख, वहु दीव जलहिं संवास कंख[1] ।
सव्व वि वित दह[2] धणुह तुंग, अण्णु वि किण्णर ठिय पीय[3] अंग ।
किंपुरुसरक्ख[4] ते धवल हुंति, सेसा वितर सामल सहंति ।
परमिं[5] पल्लु जि वितर जियंति, वासहं दह सह मइं अहमु[6] ठंति ।

घत्ता—इय कहियइं वितर, पुहवि णिरंतर, एवहिं जोइस गणु कहमि ।
जे ठियइं असंखइं गयण समिक्खइं, विच्छरु तुच्छु वि नहु
वहमि ॥ 13 ॥

(14)

चंदाइय[7] जोइस पण पयार, रवि रिक्ख पइण्णिहिं[8] गहहिं सार ।
दो दो ससि रवि पढमिल्लि गणि, चउ चउ लवणोवहि जलि पमाणि ।
वारह वारह धादकि[9] हवंति, कालोयहि[10] वायालीस थंति ।
पुक्करि वाहत्तरि ते भमंति, तहो अग्गइ तेअर अहिय हुंति ।
पुक्कर पर घंटा घिर हवंति, इय अहिअ अहिअ अग्गइ हवंति ।
इक्कहुं[11] चंदहु परिवारु[12] उत्तु, अउसीदो गह संखा णिरुत्त ।
अट्ठावीस जि रक्खइं हवंति, छासट्ठि[13] सहस्सइं तहिं गणंति ।
णव सय हत्तरि इय पउत्त, वारह[14] कोडा कोडिउ णिरुत्त ।
दीहत्तणि वउ[15] धणु होइ सत्त, जोइस सव्वहं माणइं पउत्त ।

घत्ता—चंदाहं विमाणइं, जोयण माणइं, कित्तू णइं ते जिण गणिय ।
को सत्तउ अहियउ, तहं जिण कहियउ, सव्वहं सूरहं
भणिय ॥ 14 ॥

---

1. ज. कख
2. ख. देसं
3. =पीतशरीर वर्ण
4. किं पुरुषराक्षसधवला,
5. ग. परमें,
6. =जघन्यं,
7. =चन्द्रादिज्योतिष्क पंच प्रकारा,
8. क. पयाणिहिं, ख. पयण्णिहिं,
9. ग. धादयिह,
10. ग. ०अहि,
11. ग. इक्कहु,
12. क. परिवार,
13. =66975000000000000
14. ग. तारह,
15. =शरीर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(15)

को सिक्कु होइ सुक्कहो विमाणु, पाउणु कोसु जीवहो पमाणु ।
बुध[1] आरहो[1] मंदहो अद्धु कोसु, तम रिट्ठहु[1] ससिघर समसिसेसु ।
को सहु तुरियउ भाउ लहु तारहं, अद्ध कोसु अहियउ ठिउ अवरहं ।
चंदहो जीविउ पल्लु जि सलक्खु, सूरहं पल्लु जि सहसें समिक्खु ।
सुक्कहु पल्लु सएण पउत्तउ, जीवहो पल्लु जि एक्कु णिरुत्तउ ।
बहु मंदहो आरहु पल्लु अद्धु, तारहं तुरियउ पल्लं सुसिद्धु ।
अण्णु वि जोइसहं जहण्णु आउ, ठिउ पल्लोवम अट्ठ मउं भाउ ।
जं जोइस पभणिउं परम आउ, तं ताहं तियउ[2] अद्धद्ध भाउ ।
इगतीसे पारस[3] सय पमाण, जोयण मिल्लिवि आयास ठाण ।
मेरुंह जोयस गण संचरंति, ते एण[4] सहावें णहि भमंति ।

घत्ता—चउ सुर णिक्कायहं, लच्छि सरायहं, जे तिहुवणि[5] मणि गेह ठिय ।
ते णिरुवम महिमहं, जिणवर पडिमहं, सुव्ववठाण परिट्ठिय ॥ 15 ॥

(16)

पंचासी लक्खइं[6] सुरविमाण, तिहिं[7] सहसिउ[8] णइं तेय ठाण ।
अण्णु वि विमाण ते वीस तित्थु, जिणणाह भणइं केवल कयत्थु ।
बारह कप्पिहिं बारह सुरिंद, तल चउकप्पहिं चउभेय रुंद ।
अंतरि अट्ठिहिं चउ इंद हुंति, उवरिम चउक्कि चउ संखवंति ।
तहं उप्परि सव्व विं इंदलोउ[9], णहु तहिं कुवि किंकर बहु विवेउ ।
वत्तीस[10] लक्ख सोहंमि गेह, अडवीस वीय सग्गहो णिरेह ।
साणकुमारि बारह वि हुंति, अट्ठेव लक्ख माहिंद थुंति ।
वंभहो वंभुत्तरि गेह लक्ख, जुयलि[11] वि चउरो जाणिय परिक्ख ।

---

1. =बृहस्पति, मंगल, राहु
2. ग. तिया, घ. तियाहं ठिउ अद्ध भाउ (=स्त्रीणां)
3. क. यारहसे,
4. ख. णिय एण
5. क. ०अणि,
6. =8497023
7. क. तहिं
8. सहसेउ णयं, ख. सेहसइं
9. =अहमिन्द्र लोकः
10. 3200000, 2800000, 1200000, 800000, 400000, 50000, 6000, 700, 111, 107, 91, 9, 5,
11. ग. जुअलि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लंतविका पिट्ठहो जे विमाणु, पंचास सहस ते गिरु पमाणु ।
सुक्कहो जुवलुव्लइं वीस दुण्णि, सहसहुं वेमाणहं सारवण्णि[1] ।
सायारि सहस्सारिवि गिरुत्त, सहसहिं छहिं वेमाणय पउत्त ।
आणदि पाणदि[2] आरणि अच्चुवि, सव्वहं सत्तस सयाइं सुसच्च वि ।
पढमहो गेवेयहु पढमं तिक्कि, एयारह उत्तर सउ वितिक्कि ।
मज्झिल्लि तिक्कि सउ सत्त जुत्तु, एयाणवदी अंतिमे पउत्तु ।
णव एव णवाहं अणुदिसाइं, पंचहं पंचेव अणुत्तराहं ।
विहुं सग्गहं तुंगत्तणि विमाण । पढमहं छह सय जोयण पमाण ।
वीयहं दुहं पणसय जोयणाइं, तइयहं दुहं चउसद्धहं कयाइं ।
तुरियहं दुहं चउसय तुंग हुंति । पंचमि दुहु ते आहुट्ठ पंति ।
छट्ठहं दुहं तिण्णि सयाइं दिट्ठ, उवरिम चउक्कि अट्ठाइ इट्ठ ।
तुंगत्तणु गेहहं पढम तिक्कि, दोसयजोयण गेहहं वियक्कि ।
वीयहो तइ यहु तिक्कहो पउत्तु, सउ सढु एक्कु सउ हुउ गिरुत्तु ।
पंचासण वाहं अणुद्दिसाहं[3], पणवीस जि होइ अणुत्तराहं ।

घत्ता—णिय णिय विमाणहो, कहिय पमाणहो, जोधयदंड परिट्ठयउ ।
तहु सीमाणाणउ, अवहिं पमाणउं, सव्वहं ताहं पहिट्ठियउ ।।16।।

(17)

पढमहं दो कप्पहं अवहिणाणु, तलि रयणप्पहं सीमा पमाणु ।
उवरि दुकप्पहं सक्करहिं जाम, विक्किरिया सत्ति वि फुरइ ताम ।
उवरिम चउ सग्गहं फुरइ णाणु, वालुय[4] पुहवी सीमा समाणु ।
उवरिल्ल[5] चउक्कहं तं पउत्ति, पंकप्पहं पुढवी सीम जुत्ति ।
अंतिल्ल सग्ग जे चउ हवंति, धूमप्पह जामइं ते मुणंति ।
गेवेइय तम पुढवी उवंति, उरिवम सुरतल सव्वु वि मुणंति ।
जे बहु अवहि किर होइ जाहं, विक्किरिय वि फुडु ते बहु ताहं ।

---

1. ग. ०मण्णि,
2. ख. आणइ पाणइ,
3. ग. ०दिसाहं
3. क. वीलुघ,
5. क. उवरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जणणंतर तहं मरणंतराइं, दो पढम कप्पि सत्त जि दिणाइं ।
उवरिं दोहं वि ठिउ पक्खु एक्कु, उक्किट्ठउ अंतरु एहु थक्कु ।
उवरिं चउक्कि मासिक्कु दिट्ठु, उप्परि चउक्कि दो मासु इट्ठु ।
तहो उप्परि चउमासउ चउक्कि, सेसह छहमासं तरु वितक्कि ।
सोहम्मी साणइं हत्थ सत्त, तुंगत्तणि संठिय सुरणिरुत्त ।

घत्ता—वे उवरि समग्गहं, विहव समग्गहं[1], छह जि हत्थ परिसंठिय ।
पण ठिय कर चउ तुरहं, चउकर अवरहं, सग्गह माण परिट्ठिय ॥17॥

(18)

अग्गिम दुहइय आहुट्ठ पाणि, उवरिम जुवलुल्लइ तीणि जाणि ।
तिहु तिक्कि्कउ हत्थहं अद्ध अद्धु, तहं अवरहं करु एक्कु जि पसिद्धु ।
दो सत्त दह जि चउदह णिरुत्तं, सायर चउ जुअलिहिं आउउत्त ।
चउ जुअलिहिं दो दो विद्धिताम, सग्गहं साअर वावीस जाम ।
इक्किक्कु चडइ उवरिम णवाहं, बत्तीस णवाह अणु दिसाहं ।
तित्तीस जे पणहं अणुत्तराहं, संकहियइं णिरुवम सुहधराहं[2] ।
पण पल्ल आउ[3] णिरु अत्थराहं, सो हम्मि सग्गि रइ रस धराहं ।
दो दो पल्लइं वट्टंति ताम, ठिय सत्तवीस सहसारि जाम ।
उवरिम चउक्कि सत्तेहिं विद्धि, जहिं अच्चुइ पंचावण्ण सिद्धि ।
विहिंसग्गिहिं अच्छर जम्मु लिंति, उवरिम सग्गेहिं णिय देव णिंति ।
दो कप्पहं पढमहं काय चारु, उवरिं दुहुं सिद्धउ फरस वारु ।
रूवें पविचारउं चउ सग्गिहं, सद्दें उवरिम चउं सुरवंग्गहं ।
मण पविचार उवरि चउक्कहं, सेसहं णहु कुवि सुक्ख गुरुक्कहं ।

घत्ता—जं सुहु अहमिंदहं, सुहमण णंदहं, पविचारेण विवज्जियउ ।
तं णहु सुरणाहहं, तियगण णाहहं, अंसु वि पुण्ण समज्जियउ ॥18॥

---

1. क. समयहं
2. = निर्मलश्रुतधरैः
3. = सौधर्मदेवी, आयुपल्यं 5/7/9/11/13/14/17/19/21/23/25/27/34/41/48/55 अच्चुते ।
4. क. सग्गहं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(19)

संखाविणु दीव समुद्द हुंति,
ते विउणएर बलएण[1] थंति ।
जंबूरुक्खं किउदीउं तित्थु,
जोयण लक्खिक्कि वित्थारु जित्तु ।
सुद्दंसणु तसु मज्झत्थु भाइ,
दिवधरण कणय मउ थंमु णाइ ।
तुहु[2] दक्खिण संठिउ भरह खित्तु,
एरावउ उत्तर ठाण पत्तु ।
जोयण सय पंचहिं भरह माणु,
तहं छहवीसहिं छ कलाह ठाणु ।
भरहहु हिमगिरि वित्थर विउणउं
जोयण सय तुंगत्त पहाणउं ।
हेमवंतु तहु विउणउं वित्थरि,
अत्थि खित्तु[3] विउणयरि[4] संथरि ।
मह हिमवंतु तहो[5] विउणउं गिरिवरु,
हरि खित्तु वि तहो विउ णिय वित्थरु ।
णिरवद्ध महीरहु तहुं विउणउं[6] ठिउ,
तहं विउणउं रुम्मउ विदेहु परिट्ठिउ ।
णीलु वि हुउ तहं णिरवधहो समाणु,
रुक्कु वि[7] सुखित्तु ठिउ हरि पमाणु ।
रुकमि वि गिरिमह हिमवणु विसालु,
हेरण्णु[8] हेमवंतु त्रि रमालु ।
सिरवरि वि हिमसेलहो अणु सरेइ,
एइावउ भरहहो कमु धरेइ ।

घत्ता—खित्त चउगुणु, खित्तु तह सेलाहं वि सेलु ठिउ ।
दीहत्तणु सव्वहं दो जलरासिहिं सीम किउ ॥19॥

(20)

हिमगिरि मज्झइ पोमु महा दहु[9],
जोयण सय पंच जि वित्थरु तहो ।
जोयण सहसु एक्कु दीहत्तणि,
दह जोयणि संठिउ उट्ठत्तणि ।
जोयणु पोमु कोसु तह कण्णिय,
तहिं सिरिदेवि पल्ल ठिदि वण्णिय ।
महपोमहो तं विउ णउ सव्वु वि,
तिगिंग छिहिं महुं[10] पुज्जइ पुव्वु वि ।
उत्तर पोम वि इय कमि हवंति,
हरि धिदि आइय देविए वसंति ।
पहिलउ पव्वउ हुइ हेमवण्णु,
वीयउ चंदुज्जलु रुइर वण्णु ।

1. ग. वलएव, क. वलयेण
2. क. तहो
3. ख. खेत्तु,
4. ख. पयडिय सिरि,
5. ग. तहा,
6. क. विणउ,
7. ग. रुम्मउ,
8. ग. हेरणु,
9. क. महदेहु
10. =महापद्मात्, द्विगुणविस्तारादिति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लइयउ पुणु पउमहु अणुहरेइ, तुरियउ वेरुलियउ विप्फुरेइ ।
पंचमु धवलउ पीलउ छट्ठउ, कुल पव्वहं वण्णु इहु तिट्ठउ ।
गंगा सिंधु णइहिं जं परियरु, विउणु[1] विउणु तं णइयहं वित्थरु ।
पुव्वविदेहिं सोलह खेत्तइं[2], तित्तिय[3] अवर विदेहि णिरुत्तइं ।
खित्ति खित्ति[4] वेयट्ठु पहाणउं, सव्वहं खेत्तहं भरहु पमाणउं ।
धादिगि[5] खंडिवि दो मेरु हुंति, पुक्कर अद्धिवि तहं दोहवंति ।
मेरु मेरु खित्तइं पडिवद्धइं, चउतीसइं संखासु समिद्धइं ।

घत्ता—जे पंच वि मंदर, सुरमण सुंदर, तहं बहु सुक्ख समिद्धिय ।
छह छह इक्किक्किहु, महिमगुरुक्कहु, भोयहं भूमि सुसिद्धिय ।।20।।

(21)

तहं छण्णवइ कुभोय महीयल, लवणकाल जलणिहि उरि पवि उल ।
कुलगिरि महणइं जलणिहि पवेसि, ठिय भोय धरायल दीवि देसि ।
तहिं सक्कुलिकण्णा सूपकण्ण, अइलंविय कण्णा पिहुल कण्ण ।
सूयर मुह हरि मुह पक्खि मुहं, सेरह मुहं गोमुहं वग्घमुहं ।
दुहु भोयभूमि जणइय हवंति, पल्लोवम जीविउ भवण हुंति ।
जे पुणु तीस सुभोय महीयल, कुलपव्वय अंतरि ते अविचल ।
ता हवि उत्तिम मज्झिम जहण्ण, तहि रत्त धवल कणयाह वण्ण ।
बहु भूसण भूसिय सिरिरवण्ण, उपज्जहिं माणुस पुण्ण पुण्ण ।
दह[7] पयार तहिं कप्प महीरुह, दिंति भोय ते मग्गहिं जहि जहि[6] ।
इक्कु दुण्णि तिय पल्लहिं जीवहिं, पच्छा कप्पवास सिरि सेवहिं ।
जे पुणु पण दह[7] कम्मधरायल, अज्ज मिच्छलोयहिं ते संकुल ।
जे धम्मा धम्महं णहु मुणंति, ते बहु अभेव मिच्छह[8] हवंति ।

---

1. क. विणुउ विणुउ,
2. ख. घ. खेइं,
3. ख. घ. तेत्तिय,
4. ख. घ. खेत्ति खेत्ति,
5. ख. धादइ,
6. क. जहं जहं
7. ख. दस
8. ख. मिच्छइं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अज्ज लोय दो भेयहिं पउत्त, इट्ठिवि वज्जिय इट्ठियहिं जुत्त ।
ते सट्टि सजाया पमुह लोय, ते इट्ठिवंत पयडिय असोय ।
पंच सयइं अहियइं तुंगत्त[1], धणु हइं ते हवंति णिय गत्तें ।
णिक्किट्ठेण दुहत्थ पउत्ता, हत्थु एक्कु कालेण णिरुत्ता ।

घत्ता—तहिं जीविउं उत्तउ, एहु णिरुत्तउ, पुव्वकोडि उक्किट्ठउं ।
अह णिय णिय कालें, परिणय[2] सालें अवरु अवरु णिवकट्ठऊ ॥21॥

(22)

वाहत्तरि वरिसइं जिण जयंति, अहमेण हरिवि सहसिक्कु ठंति ।
सहसा हिउ जीवइ सीर हत्थु, सय सत्तइं चक्काउहु[3] कयत्थु ।
इहु एहय जीविउ णिक्किट्ठउ, चउरासी लक्ख पुव्व[4] उक्किट्ठउ ।
पढम यालि[5] तिय दिवसहि भोयणुं, वीयइ दो दिणेहिं[6] छुह मोहणु ।
तइयइ दिवसंतरि होइ मुत्ति, तुरियए[7] पडि दिणु भोयणहुं जुत्ति[8] ।
पंचमइं[9] दिवसिक्कें[10] दुण्णिवार, छट्ठइ भोयणु हुइ वहुयवार[11] ।
पंचम कालि अंत दिवसुल्लइ, धम्मणासु हुइ पहरि पहिल्लइ ।
वीइ[12] पहरि णरवइ तहिं णासइ, णरवइ णासें जलणु पणासइ ।
तहिं माणुस णिद्धम्म णिण्णग्ग, विलवासिय मच्छा[13] मिस लग्ग ।
छट्ठउ कालहु अंतिसु सिट्ठी, सत्त दिणाइं सीय भर विट्ठीं ।
सत्त सत्त विस खारहं वरिसणु, सत्त सत्त रय अग्गिय वरिसणु ।
इय अवसप्पिणि कालुपयट्टइ, पच्छइ उवसप्पिणि विपलुट्टइ ।

---

1. क. तुंगव्में
2. ख. परिणइ
3. ख. चक्को
4. ख. पुव्वहं
5. ख. ०कालि
6. क. दो द्दिणेहिं
7. ख. तुरिघए
8. क. युत्ति
9. ख. पंचमिति
10. क. दिवसकें
11. क. वहु अवार, ख. वहुयवर
12. ग. बीए
13. ख. मछ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घत्ता—इय किउ तस वण्णणु, भेयणि वण्णणु, संखेवेण णिरुत्तउ ।
थावरहं समज्जमि[1], वित्थरु वज्जमि, वण्णणु जं जिण[2] उत्तउ ।।22।।

(23)

ते थावर पंच पयार हुंति, धर जल ते आणिल[3] वणइं थंति ।
भूकाय मसूरायार दिट्ठ, ते सुर णर णारय भुवणि सिट्ठ ।
भणि कणय तार तं वाइ धाउ, वहु दीव समुद्दें मट्टिभेउ[4] ।
खर मउ पुढवी जा पंचवण्ण[5], ते पुढवि काय सयल वि पवण्ण ।
वारह वावीस सहास वरिस, आउसु मिउखरहं विविगय हरिस[6] ।
जलकाय वि कुस[7] आयार हुंति, ते सयलहं जल ठाण हवंति ।
सरि सरि हिम ऊसा पमुह णीर, जे किर असंख जलणिहिं गहीर ।
ते सयल वि जल काइय मयाइं, जिणवर केवलणाणें कयाइं[8] ।
तहिं आउ वरिस सहसाइ संति, केवलणाणिय जिणवर कहंति[9] ।
सूई[10] संचय सम अग्गिकाय, वहु भेय जलण विप्फुरिय छाय ।
कुलिसाणल[11] विज्जुल सूरकंति, रविकंति फुलिंगम[12] जालपंति ।
अंगार पमुह जे अग्गिभेय, ते अग्गिकाय विप्फुरिय तेय ।
पसरिव धयवउ[13] णिह वाय देहु, णिय वाय वलय संठविय गेहु ।
उक्कलिगुजा मंडल वाइय, अवरस सद्दय किय पडिधाइय ।

---

1. ख. पवंचमि
2. ख. जो जिण णाहें
3. ग. याणिल
4. =पृथ्वीभेद
5. =कृष्ण-पीत-हरित-श्वेत-रक्त
6. क. ग. घ. पुस्तकेसुनास्ति पंक्तिरीयम्
7. =दर्भाग्रजलाकार
8. =कथितानि
9. क. ग. पुस्तकयो र्नास्ति पंक्तिरियम्
10. =सूच्यप्राकार
11. =वज्राग्नि, विद्युत्तग्नि, सूर्यकान्तमणि
12. =सूर्यकांतफुलिंगपंक्ति
13. =पवनप्रेरिता ध्वजाकारा:

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिसि भेएं मारुय वहु हवंति, ते वाय काय जिणवर भणंति ।
चउ भेय वणप्फय[1] काय हुंति; पंचगांहि तरु[2] जाई हवंति ।
दस सहस वरिस आउसु कहंति; उच्छेहु सहस जोयण नभंति[3] ।
इय जिण उत्तउ गणहर कहंति, ...
सव्वहं अंतरहं मुहुत्तु आउ, अंगुलहं असंखहं भाउ काउ ।[4]
वारह सहसहि खर पुढिवि आउ; वावीस सहस मिउ पुढवि काउ[5] ।
सतहं सहसहिं जलकाइ मरहिं, दस सहस वण्णफइ जीउघरहिं[5] ।।

घत्ता—जलणहं पउत्तउ, एहु णिरुत्तउ, चउवीसहिं पहरेहिं ठिय ।
मारुय सुपयासहं वरिस सहासहं, सव्वउ तिण्णि परिट्ठिय ।।23।।

(24)

जीउ दव्वु संखेवें उत्तउ, एहु अजीउ भणेइ णिरुत्तउ ।
होंइ अजीउ जि पंच पयारउ, णिय णिय गुण पज्जयहं[6] सारउ ।
धम्मु अहम्मु कालु आहासु वि, पंचमु पुग्गलु पयहु पयासु वि
धम्मु अमुत्तु अखंडु पयासिउ, धुग्गल जीवहं गमणें भासिउ ।
पयहं ठिदि कारण हुइ अहम्मु, सो विहु धम्मुहो[7] णिरु सरिसु धम्मु ।
पुग्गल परिणामहो जं णिमित्तु, तं काल दव्वु भण्णइं णिरुत्तु ।
सो ववहारें हुइ तिण्णि भेउ, परमत्थे णिच्चलु णिरु अभेउ ।
जं गयणहो एक्किक्कइं पएसि, कालाणुरहिय तिहुयणहु देसि ।
तेरय णरासि सण्णिाह हवंति, थिरणिच्चकाल सण्णा लहंति ।

---

1. क. वणप्पइ
2. = वृक्ष-विटपि-गुल्म-वल्ली-तृण
3. क. ग. पुस्तकयो र्नास्ति पंवितरियम्
4. क. ग. पुस्तकयो र्नास्ति पंक्तिरियम् ।
5. क. ख. पुम्तकयो र्न स्तः ।
6. ग. पज्जाय
7. = यथा धर्मः तथा धर्मं असंख्य प्रदेशः

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धम्माधम्महो जीवहु पएस, संखातीय एयहं असेस।
आयास पएसाणंत हुंति, ते अच्छिकाय णिक्काल छंति।
पुग्गलु जिणेहिं छब्भेय दिट्ठु, रस गंध वण्णरव फास सिट्ठु।
महिजलु तमु गंध कम्माणु जाइ, अणयणु[1] चउ इंदिय विसउ थाइ।
अइ थूलु थूलु महियलु पघुट्ठिु, थूलु जि जिणणाहें सलिलु दिट्ठु।
थूलु सुहमु तमु जुण्हा[2] भासइ, सुहमु थूलु गंधाइय सीसइ।
सुहमु कम्मु अइ सुहमा णिट्ठउ[3], पुग्गलु इम भेएहिं परिट्ठिउ।

घत्ता—सो सयलु वि पुग्गलु, णिय गुण णिच्चलु, खंधु अद्ध देसु जिट्ठिउ।
तहों अद्ध पएसउ, णियलव[4] सेसउ, अणुय विभाउ परिट्ठिउ ।।24।।

(25)

कम्महं पवेसु[5] आसउ कहंति, तं पुणु दो भेयहिं वज्जरंति।
चउ भेउ बंधु भासइ जिणेसु, पडिट्ठिदि अणुभाइय पएसु।
आसव णिरोहु संवरु पउत्तु, णिज्जर बंधहु जं हवण सत्तु।
मुक्ख वि अप्पहो जं सयल मुक्खु, इय तव्वइं भासइ णाण चक्खु।
पडिवाहइ तिहु अणु भव्व संघु, णिण्णासइ तम भरु जण दुलंघु।
तहो गणहर तिणवइं संजाया, तिहु अण जण संदेह णिघाया।
पुव्वधरहं दोसहसइं दिट्ठा, विउसय दो लक्खइं मुणि सिट्ठा।
अवहिणाण घर अट्ठ हहासइं, दह सहसइं केवलि छुडु[6] भासइं।
विक्किरिया इट्ठिय तहिं थक्का, सहसि जि चउदह दोस विमुक्का।
अट्ठसहस मणपज्जय णाणहं, सुहमु चराचरु तच्च सुजाणहं।

---

1. —नेत्ररहित चतुरिन्द्रिय-विषय
2. क. जुण्णा
3. ख. णिट्ठिउ
4. क. तव
5. ख. पएसु
6. ख. फुडु
7. ख. तहि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अट्ठ सहासय दोसय ऊणा, तहिं वाइय जिण वयण पवीणा।
असिय सहस लक्खाहिय अज्जिय, तिण्णि लक्ख सावयहं समज्जिय।
तहिं णिय साविय जण पंचलक्ख, चउभेय देवतहिं ठिय असंख।

घत्ता—इय संघे जुत्तउ, कलिमल चत्तउ, तिहुयण कमल दिणेसरु।
महि मंडलु विहरइ, तमभरु पहरइ, केवल किरणु जिणेसरु ॥25॥

(26)

मासिक्कें जाणिवि आउ छेउ, संमेदसेलि संपत्तु देउ।
धम्मोवदेसु अणु समवसरणु, मिल्लिवि पारंभिउ झाण करणु।
दंड कवाड पयर जय पूरणु, तहिं जिणु कुणइ[1] कम्म भउ[2] सूडणु।
आउ कम्म सम कम्मइं कीरइ, सुहम किरिय झाणम्मि सुधीरइ।
जे दड्ढरज्जु[3] सारिच्छ कम्म, ते चारि वि णिहाणि वि अवल धम्म।
भद्दवयहो सत्तमि सुक्ख पक्खि, पडिमाजोएं ठिउ परम सुक्खि।
दह पुव्वलक्ख जीवियहु णासि, तुरियहु सुक्कहु झाणहो पयासि।
णिरु अट्ठकम्म संजोय मुक्कु, सच्चेमणु गयगुव तित्थु थक्कु।
जं दिट्ठउ देहहु इह पभणु, किंचू णु तित्थ ठिउ तासु माणु।

घत्ता—तिहु अणसिरि संठिउ, मुक्खु परिट्ठिउ, तेजय णाहु परमेसरु।
जं मुह सोमाणइं तं परियाणइ, सुज्जि देउ सुरकेसरि ॥26॥

(27)

इक्कि समइ सयलु वि सो जाणइं, णंत दव्व पज्जाय पमाणइं।
पयणें विणु[5] सो रूवें पिच्छइ, सवणें विणु सद्दइ णिय सुम्मइं।

---

1. ख. करइ
2. ख. भर
3. =दग्धरज्जु
3. ख. रूवइं
4. =वलरहित अवकर्मं
5. =नेत्रं विना समस्त पदार्थान् अवलोकते
6. रूवइं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रसणें विणु सो रसु परियाणइं, फासें विणु फासइं संजाणइं ।
घाणें विणु गंधइं अणु हुंजइ, चिन्तें विणु परुसुहु वहु संजइ ।
भुक्ख तिण्ह[1] णिद्दवि सुपलाणिय, रइ अरई दूरेण पराणिय ।
पुव्वभाव सयलेहिं पमुक्कउ, दंसण णाण सहावें थक्कउ ।
णाणु देहु णाणु जि ठिउ चेयणु, णाणु णेउ[2] णाणु जि तहो भोयणु ।
णाणु सयणु णाणु जि तहो कीलणु, णाणु सुद्ध तहो णयणउं मीलणु ।
णाणु सहाउ णाणु तहो[3] अप्पउ, णाणु णाणु णाणु जि सवियप्पउ ।
णाणेक्कंतु तासु सुफुडु जाइउ, णिय दव्वत्थ सहावें भायउ ।।

घत्ता—जो वण्णइं तासु, माणि उहयासु, फुडु सरुअ सब्भावें ।
सो सच्चउ मूढउ मोहै, गूढउ हास ठाणु ससहावें ।।27।।

(28)

ता हरिस सोय संभार भुत्त, तह[4] सुरणिकाय परिवार जुत्त ।
णह रोभइं णाहहं धरणिपत्त, णिक्खि वि विंभिय रसभावसत्त ।
मेलिवि[5] कालागरु चंदणाइं, घणसार पमुहं दव्वइं घणाइं ।
ता जलण कुमारा तहिं णमंति, मउडग्गि सूरकंतइं जलंति ।
जालावलि जलियउ तहिं किसाणु, सोरहि[6] महमहियउ णह वियाणु ।
सुरणच्चहिं गायहिं सोयभिण्ण, वहुअट्ठभेय अच्चा पवण्ण ।
चउविह संघ वि तहिं संमिलंति, जिण णिव्वाणहं[7] किरिया कुणंति ।
सुरपभणहिं सामिय तिजयणाहु, पइं विणु लोय विहू अउ अणाहु ।
जय जय परमेसर सुक्खधामु, जय अमय घुंट्ट सारित्थ णाम ।
जय जय पाविय सिव मुह णिहाण, जय जय परमेसर अकल णाण ।

---

1. ग. तण्ह, 2. क. णेऊ,
3. ख. तहि, 4. ख. वहो,
5. क. मलिवि, 6. = सुरतिगन्धैः,
7. ख.० णहिं,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जय दूर मुक्क संसार बंध, जय सिव रस भावण किय पबंध ।
जय जय पर मंगल मंगलाहं, जय पढम ठाण मंगल कलाहं[1] ।

घत्ता—इय सयल वि सुरवर, जिण संथुइ वर, भत्तिभेय भरसत्ता ।
पंचम कल्याणहो, सुक्ख[2] णिहाणहो, करिवि ठाण संपत्ता ॥28॥

(29)

जं सुद्धु असुद्धउ गंथ चारु, जं सारु[3] असारउ वहु[4] पथारु ।
जं जिणवाणी खमउ सव्वु, महुं कवि गहि लहो विलसिउ अगव्वु ।
जे परमेसर जाणहिं अपारु, ते सोहि वि सोहि वि कुणहु[5] सारु ।
मुणि जणु पंडिय मेल्लि वि कसाउ, सोहंतु मुणिवि इह मुह[6] पसाउ ।
गुज्जरदेसहं उम्मत्त गामु, तहिं छड्डा सुउ हुउ दोण णामु ।
सिद्धउ तहो णंदणु भव्ववंधु, जिणधम्म भारि जं दिण्णु खंधु ।
तहु[1] सुअ जिट्ठउ बहु[2] देवभव्वु, जिं धम्म कज्जि विवकलिउ दव्वु ।
तह लहु जाउ सिरि कुमरसिंहु, कलिकाल करिंदहो हणण सींहु ।
तहो सुउ संजायउ सिद्धपालु[3], जिणपुज्जदाण गुण गुण रमालु ।
तहो उप्परोहिं[3] इह कियउ गंथु, हउं णमु णमु णमि किं पि वि सत्थुगंथु ।

घत्ता—जा चंददिवायर, सव्ववि सायर, जा कुलपव्वय भूवलउ ।
ता एहु पयट्टउ ढियइं चहुट्टउ, सरसइं देविहिं मुहि तिलउ ॥29॥

इय सिरिचंदप्पहचरिए महाकइ जसकित्तिविरइए
महाभव्व सिद्धपाल सवणभूसणे चंदप्पह
सामि णिव्वाणो णाम एयारहमो संधी
परिच्छेउ सम्मतो ॥ इति चदप्रभ चरित्रं समाप्त ॥

ग्रन्थ संख्या 300
श्लोक संख्या–24J6[11]

---

1. ख. कयाहं,
2. ख. सोक्ख,
3. ख. सार,
4. क. बंह,
5. ख. कुणहो,
6. ख. महु.
7. =दोणस्य,
8. =पुत्रः
9. =श्री कुमारस्य सिद्धपालपुत्रः
10. घ. उवरोहें,
11. घ. श्लोक संख्या–2306

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5273

प्रथम संधि

संक्षिप्त भावानुवाद

(1)

विमल केवल ज्ञान को प्राप्त करने वाले, लोकालोक को जानने वाले चन्द्रप्रभ तीर्थंकर को प्रणामकर तथा त्रिकालवर्ती पंच परमेष्ठियों की वंदनाकर मन-वचन-काय से शुद्ध होकर मैं चन्द्रप्रभ स्वामी के चरित्र का आख्यान करूंगा। जिन रूपी गिरिगुहा से निर्गत, शिवपथ की ओर जाने वाली, शाश्वत सुख की कारणभूत सभी द्वारा प्रशंसित, गणधर द्वारा वर्णित और त्रिभुवनवर्ती लोगों के मन को हरने वाली सरस्वती मुझ पर प्रसन्न होवे।

हुंबड कुलभूषण कुमरसिंह के पुत्र सिद्धपाल जो, निर्मल गुणों से युक्त है, के अनुरोध पर यशःकीर्ति विद्वान ने प्राकृत (अपभ्रंश) भाषा में इस ग्रन्थ की रचना की। जिन वचनामृत को फैलाने वाले केवलज्ञानी गणधरों ने तथा कुन्दकुन्द जैसे महान् आचार्यों ने जिनकी वन्दना की है उनके चरित्र का वर्णन दूसरा कौन कर सकता है? एक लंगड़ा व्यक्ति क्या चांद को पकड़ सकता है? फिर भी चूंकि बड़े-बड़े आचार्यों ने वाणी-विलास किया ही है, इस लिए मैं भी प्रयास कर रहा हूँ।

पूर्णिमा के चन्द्र के समान अत्यन्त निर्मल चरित्र वाले समन्तभद्र मुनि को प्रणाम करता हूँ जिनके प्रणाम से क्रोधाविष्ट शिवकोटि की शिव-पिण्डि फूटकर उसमें से तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की मनोज्ञ प्रतिमा प्रकट हुई। इसी तरह अकलंकदेव की भी वंदना करता हूँ जिन्होंने तारा देवी का मानमर्दनकर बौद्धों को शास्त्रार्थ में पराजित किया था। श्री देवनन्दि मुनि, जिनसेन, सिद्धसेन आदि जैसे आचार्यों को भी प्रणाम करता हूँ जिन्होंने परवादियों के दर्प का भंजन किया है ।। 1 ।।

(2–3)

संसार-समुद्र से पार होने के लिए धर्मध्यान किया जाता है। सज्जन दूसरों के सद्गुणों की प्रशंसा करते हैं और उनके ग्रहण करने का उपदेश या आग्रह भी करते हैं। पर दुर्जन दूसरों के दोषों का ही आख्यान करता है। ठीक भी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्र भी राहू के द्वारा निगल लिया जाता है। इसी तरह दूसरी ओर चंदन अपनी सुगंध से दूसरों को सुवासित कर देता है। दुर्जन निष्कारण शत्रु और निंदक बन जाता है पर सज्जन मित्र और गुणप्रशंसक तथा गुणग्राही रहता है ।।2–3।।

(4–5)

यहाँ जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं। उसके बीच विशाल सुमेरु पर्वत है जो सुगंधित पुष्प और वृक्षों से सुशोभित है। उसका ऊपरी भाग सुनहरे रंग का है। उसके पूर्व में पूर्वविदेह है जहाँ शुक्ल ध्यानी तपस्वी सम्यक् तप और आचरण में लीन रहते हुए रत्नत्रय का पालन करते हैं। वहां **मंगलावत्ती** नाम का एक देश है जो दिव्य वेश से स्वर्ग के समान शोभित हो रहा है। सरोवरों के अमृत कुण्ड मनभावन हैं। कल्पद्रुम वृक्ष पथिकों को फल प्रदान करते हैं, धान्य की खेती अधिक मात्रा में होती है, सरोवरों में हंस पंक्तियां ऐसी चलती हैं कि पनिहारनों की मन्द गति को भी मात कर देती हैं और कृषक अपने खेतों के काम में व्यस्त हैं। ।।4–5।।

(6)

जहां धान्य की खेती अधिक होती है, गृहपति लक्ष्मीसंपन्न हैं, सिंह और महिषी एक साथ पानी पीते हैं, गावों के बाहर खलिहानों में धान्य राशियाँ इतनी ऊंची लगी हुई हैं कि लगता है, उनकी शोभा देखने के बहाने कुलाचल ही चले आये हों। चन्द्रकांत मणिमय भवनों से रात्रिकाल में चन्द्रमा का स्पर्श पाते ही जल का प्रवाह बढ़ जाता है। फलतः ग्रीष्मकाल में भी नदियों का प्रवाह अपने दोनों किनारों से टकराते हुए बहता है। वहां **रत्नसंचय** नामका एक नगर है । उस नगर के बाजारों में मणियों के ढेर लगे रहते हैं इसलिए वह नगर सार्थक नाम वाला है ।।6।।

(7)

जहां गगन के समान ऊंचे धान्य के ढेर लगे हुए हैं जिनके ऊपर सूर्य का रथ दौड़ लगाता है। जहां के भवनों की छतों पर बैठी स्त्रियों के मुख चन्द्र को देखकर राहु ग्रसने का प्रयत्न करता है पर प्रतिचन्द्र होने के कारण ग्रस नहीं पाता। जहां के प्रासादों में अंकित चित्रकला इतनी सजीव है कि नववधु पर-पुरुषों की उपस्थिति के भ्रम से अपने पति के साथ गाढ आलिंगन नहीं कर पाती तथा सौतों के उपस्थिति की भ्रम से मुग्धा संयोग के समय अपने नेत्र बंद कर लेती है। जहाँ प्रफुल्लित अरविन्द पंक्ति से आकाशगंगा में सुरभित वायु संचरित होती है ।। 7 ।।

(8)

जहां कालागरु का धुंआ गगन में अंधकार व्याप्त कर देता है। लगता है, सूर्य उसी के ऊपर चल रहा हो। जहां की तरुणियों के कपोल तल इतने निर्मल हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि उनमें चन्द्रमा का प्रतिबिंब झलकने लगता है। उनके कपोल मण्डल वाले मुखकमल तथा चन्द्रमण्डल के बीच चन्द्र की पहचान केवल उसकी कलंक रेखा से हो पाती है। जहाँ के सज्जनों का दान देने का भाव अपूर्ण है। जहां के महलों पर स्वच्छ वस्त्र सूर्य के टुकडों के समान लटक रहे हैं ।। 8 ।।

(9–10)

उस रत्नसंचयपुर नगर का राजा **कनकप्रभ** था जिसे देखकर सुरपति भी ईर्ष्यालु हो जाता था। उसकी कीर्ति चतुर्दिक् फैली हुई थी। ऐसा जगता था जैसे संसार में घूमते-घूमते कीर्ति वृद्धा जैसी थक गई हो और इस राजा के घर में स्थिर हो गई हो। जिसमें तेज समुद्र के जल के समान स्थिर हो गया था। सूर्य भी जिसके तेज से कंप गया था। उसका रूप काम देव से भी अधिक सुन्दर था। उसके नयनोत्पल में शोभा का निवास था। उसके धनुष के सामने कोई टिक नहीं सकता था। बहुत गुणवान था। उसके मुख में मानों सरस्वती का वास था। तीनों लोकों में उसका प्रतिद्वन्दी कोई दिखता नहीं था। उस कनकप्रभ राजा की **कनकमाल** नाम की महाराज्ञी थी जो पूर्ण लावण्यवती, गुणवती और शीलवती थी। हर अंग-प्रत्यंग अनंग का रूप लिये हुए थे। वदन और नयन क्रमशः चन्द्र और सारंग जैसे थे।9-10।

(11)

कनकप्रभ और कनकमाला दोनों का हृदय परस्पर प्रेम से भरा हुआ था। पंचेन्द्रिय सुखों का उपभोग कर रहे थे। सांसारिक सुखों में डूबे हुए अपना समय यापन कर रहे थे। एक दिन कनकमाला में गर्भ के लक्षण दिखाई दिये। उसका शरीर आलस्य से भरा था, पीलापन लिए हुए था, चूचुकों में कालापन आ गया था। दोहद पूर्ण होते हुए उसके नव मास पूरे हो गये और उसने पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का सारा शरीर लक्षणों और अनुव्यंजनों से स्फुटित था। धर्म, अर्थ और काम का घर था, कुल का सूरज था। उस पुत्र का नाम रखा गया **पद्मनाभ**। पद्मनाभ चन्द्र के समान बढ़ने लगा। कालक्रम से तरुण हुआ। तरुणावस्था में उसके रूप ने रूपगर्वीले लोगों को हतप्रभ कर दिया था। वह अत्यन्त गुणवान था ॥11॥

(12)

एक दिन राजा कनकप्रभ अपने प्रासाद पर बैठे-बैठे राजधानी की शोभा देख रहे थे। इसी बीच उसकी दृष्टि एक ऐसे छोटे सरोवर पर पड़ी जहां से पानी पीकर बैलों का एक झुण्ड वापिस आ रहा या। समीप में ही दुर्दम कीचड़ में क्षीण काय वाला एक बैल फस गया। उसमें से वह निकल नहीं सका और उसका वहीं प्राणान्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो गया। उसे मरते हुए देख कर राजा को वैराग्य हो गया और वह सोचने लगा कि संसारियों की यह दुर्वस्था है। वे लोग धन्य हैं जो मोक्ष को प्राप्त कर चुके हैं। यह संसारी जीव विषय भोगों से कभी तृप्त नहीं हुआ। अपने कर्मों से बंधा हुआ है ॥12॥

(13)

संसार में सुख कहीं नहीं है। यह जीव देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक गतियों में घूमता रहता है। क्षण भर में यह आसक्त होता है, क्षण भर में विरक्त होता है। कभी स्वर्ग और कभी असुरक्रीड़ा करता है, कभी धनवान् होता है, कभी दरिद्र होता है, कभी रूपवान होता है, कभी कुरूप होता है, कभी दर्प करता है, कभी दीन बनता है, कभी वीर होता है कभी भीरु होता है, कभी दानी होता है कभी भिखारी बनता है, कभी सुखी और कभी दु.खी होता है, कभी यश पता है, कभी अपयश हाथ आता है, कभी मधुरभाषी होता है, कभी कटु बोलता है, कभी इष्ट संयोग होता है, कभी इष्ट वियोग होता है, कभी जीतता है कभी पराजित होता है। इस तरह संसार में प्राणी के लिए एक जैसी स्थिति कभी नहीं मिलती। उसे इष्ट-अनिष्ट की अवस्थाओं में सदैव घूमना पड़ता है ॥13॥

(14)

संसारी प्राणी दुखों से मुक्त होने और सुख पाने के लिए सचेष्ट रहता है। पर उसे अन्ततः दुःख ही मिलता है उसी तरह जिस तरह खाज का रोगी क्षण भर के सुख के लिए आग तापता है पर बाद में उसे दारुण दुःख भोगना पड़ता है। ज्ञान के स्वभाव को न जानता हुआ चर्मचक्षुओं के आस्वादन को मोहवश मान लेता है। जो वर्जनीय होता है उसे करणीय मानता है और जो करणीय होता है उसे छोड़ देता है। वह वस्तुतः शक्कर की आशा में बालु-मिट्टी इकठ्ठा करता है। धीरे-धीरे उसकी आयु क्षय होती जाती है और वह मरणोन्मुख हो जाता है। मर जाने पर लोग शोक मनाते हैं, रोते हैं और श्मसानघाट पहुँचा देते हैं। वे दुःख भोगने में सहभागी नहीं होते। सच तो यह है कि सुख धर्म के बिना नहीं मिलता। मोहासक्त व्यक्ति इस तथ्य को नहीं समझ पाता और वह पाप कार्य करता रहता है। फलतः नये-नये जन्मों को धारण करता रहता है। इसलिए इस भवचक्र को समाप्त करने के लिए जिन वचनों पर श्रद्धा करनी चाहिए और दयावंत होकर सम्यक् चरित्र का पालन करना चाहिए ॥14॥

(15)

यह विचारकर राजाने पद्मनाभ पुत्र को राज्य भार सौंपने का निश्चय किया और उसे बुलाया। सामन्तों और मन्त्रियों को भी बुलाकर अपना मन्तव्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यक्त किया नगर सजाया गया, मणि तोरण लगाये गये। यह सब देखकर पद्मनाभ के आंखों से आंसू बहने लगे। राजा ने स्वयं उन असुओं को अपने हाथ से पोछा और संसार की स्थिति समझाई। एक मन्त्री ने कहा—हे स्वामी! मेरी बातों पर भी विचार कीजिए। जीव देह से पृथक् नहीं है। जीव और देह में कोई भेद भी नहीं है। राजा ने यह सुनकर कहा कि देह और जीव दोनों पृथक्-पृथक् हैं। जीव ज्ञानवान है। जीव का अस्तित्व हमारे सुख दुःख के वेदन से होता हैं। तप का आचरण और व्रत-धारण संसार से मुक्त होने का कारण है और घर में रहना दुःख और भव-भ्रमण का कारण है ॥15॥

(16)

इस प्रकार उस मन्त्री को निरुत्तरकर राजा जंगल की ओर चला गया। वहां चारित्र के आधारका श्रीधर नामक मुनि विराजमान थे। उनके चरण कमलों में प्रणामकर उसने जिनदीक्षा ले ली। इधर नरपति पद्मनाभ पिता के जाने से शोकाकुल हो गया, पर मंत्रियों के प्रतिबोध से वह स्वस्थ हो गया। जो ज्ञानवान होता है वह पर पदार्थों के मोह से दूर हो जाता है पर जो अज्ञानी होता है वह मोहासक्त वना रहता है जो शोक-दुःख का कारण होता है। पृथ्वीपालन क्षत्रिय धर्म है। यह सोचकर पद्मनाभ प्रजा के पालन में लग गया। आन्वीक्षिकी, वार्ता; दण्डनीति से मुक्त होकर, षट्गुणों (परिवार संरक्षण, विवेकपूर्वक कार्य संचालन, स्वरक्षण, प्रजारक्षण, दुष्टनिग्रह और शिष्ट-पुरस्कार) के आधार पर शासन करने लगा। प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मंत्रशक्ति से युक्त होकर, संधि, विग्रह, यान, आसन द्वेष और संश्रय का का आधार लेकर प्रजापालन में दत्तचित्त हो गया। फलतः उसका कोई शत्रु नहीं रहा। स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्र ये राज्य के सात अंग होते हैं जिनके माध्यम से वह शासन करता रहा। शासन करते हुए भी जो उसमें आसक्त नहीं होता वह निश्चित् रूप से मोह को नष्ट कर देता है।॥16॥

इस प्रकार महाकवि यशःकीर्ति द्वारा विरचित श्री चन्द्रप्रभ चरित्र में महाभव्य सिद्धपाल श्रावकभूषण श्री पद्मनाभ राज्याभिषेक नामक प्रथम संधि समाप्त हुई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय संधि

(1)

जिन वचन रूपी कमल की सुगंध से वासित, पूर्वो द्वारा प्राप्त, गणधरों द्वारा संग्रहीत (स्वीकृत) आगम सरस्वती प्रसन्न हो । जिनभक्त और गुणरक्त राजा पद्मनाभ एक दिन राजसभा में बैठे हुए थे कि कणकदण्ड लिए पिंजर शरीरवान् द्वारपाल ने द्वार पर वनपाल के आने की सूचना दी । राजा ने उसे अन्दर लाने की आज्ञा दी, उसने हाथ जोड़कर प्रणामकर कहा कि आपके सुरभित वन (उद्यान) में श्रीधर नामक मुनिराज पधारे हैं । वे अत्यन्त ज्ञानी-ध्यानी हैं । उनके दर्शन मात्र से प्रसन्नता आ जाती है । वे निर्दोष आचरण, तप और संयम के आरक हैं । उनके गुणों का वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है । उनके प्रभाव से समय के बिना भी बसन्त ऋतु दिखाई देने लगी । वनपालन के इस मनोहारी संदेश को सुनकर राजा पद्मनाभ ने प्रसन्न होकर उसे अपने कीमती आभरण उतारकर दे दिये ।। 1 ।।

(2)

इसके वाद राजा पद्मनाभ हर्ष विभोर होकर सिंहासन से उतरा और जिस दिशा में मुनिराज विराजे थे उस दिशा में सात कदम आगे चलकर प्रणाम किया । अनन्तर नगर में आनन्द भेरी बजवा दी और जनता को मुनिराज के दर्शनार्थ चलने के लिए प्रेरित दिया । इस समाचार को सुनते ही सारा नगर परिकर इकठ्टा हो गया और राजा धर्माचरण पूर्वक मुनिराज की वन्दना के लिए चल पड़ा । उस समय उद्यान की शोभा ही निराली थी । विना वसन्त ऋतु के केसर वृक्ष पुष्पित हो रहे थे मानों मुनिराज को नमस्कार कर रहे हों । स्त्रियों के पादाघात को सहे बिना अशोक वृक्ष प्रफुल्लित हो रहे थे । मौलिसिरी वृक्ष तरुणियों के मद्य कुरलों की अवहेलना कर विकसित हो रहे थे । आम्र वृक्षों में शीघ्र ही मौर लग गये मानों वे मुनि दर्शन के लिए सचेष्ट हो रहे हों । इस प्रकार सारा वातावरण मुनि के दर्शन के लिए रोमांचित-सा हो रहा था । राजा ने सारे राजकीय परिवेश को छोड़कर पैदल ही मुनिराज के दर्शन करने निकल पड़ा । थोड़ी दूर उसने उन्हें वृक्ष के नीचे एक निर्मल शिलाथल पर बैठे हुए देखा ।। 2 ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(3)

फिर पद्मनाभ ने मुनिराज की तीन बार प्रदक्षिणा की और पंचांगों से तीन बार प्रणाम कर स्तुति की। हे मुनिवर ! आपके दर्शन से मेरा जन्म कृतार्थ हो गया। जिन वचन में आस्था और दृढ़ हो गई, मोक्ष मार्ग प्राप्त हो गया, घर भी स्वर्ग जैसा दिखने लगा, कर्म का बन्धन ढीला हो गया, संसरण नष्ट हो गया, संसारी जीवों को जैसे कल्पवृक्ष मिल गया, वे आसन्न भव्य हो गये। और क्या कहूँ, जितने उपमान दिख रहे हैं वे सब तृणवत् व्यर्थ हो रहे हैं। असंख्य किरणों वाला सूर्य आपके तेज के सामने कुछ नहीं, कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि आदि भी आपके सामने निरर्थक हो जाते हैं। आपके दर्शन से तो वस्तुतः रत्नत्रय हाथ आ गया है। तब मुनिवर श्रीधर ने पद्मनाभ को आशीर्वाद दिया और धर्मवृद्धि कही ॥3॥

(4)

इसके बाद पद्मनाभ ने श्रीधर मुनिराज से प्रार्थना की कि उसे धर्म की व्याख्या समझा दें। मुनिराज ने उसके इस निवेदन को स्वीकार किया और समयोचित श्रावकव्रत (सागार-धर्म) का आख्यान किया। उन्होंने कहा कि सर्वप्रथम व्यक्ति को जीवरक्षा (अहिंसा) करनी चाहिए। यह व्रत बहु सुख का कारण है। नरक और तिर्यञ्च गति के द्वार को बन्द करने वाला है, स्वर्ग और मोक्ष के द्वार को उद्घाटित करने वाला है, सकल सुख का कारणभूत तथा मंगलकारी है, विजयदायी है, अशुभ-तिमिर को मिटाने में सूर्य है। दूसरा व्रत है सत्य बोलना। जो भी बोलो, सत्य बोलो। यह व्रत पाप की प्रकर्षता को कम करता है, साधुत्व का कारण है, विजय प्राप्ति का साधन है, सकल लब्धियों का द्वार है, जन्म-ग्रहण की प्रक्रिया के लिए अर्गला है, सकल ज्ञान की उत्पत्ति का कारण है। तृतीय अणुव्रत है अस्तेय (चोरी न करना) जो गुण-रक्षक है, पापकर्मों के रोकने के लिए वज्रदण्ड है, दोष-विषधर को रोकने के लिए करण्डु है। चतुर्थ अणुव्रत है ब्रह्मचर्य अर्थात् शुभ चरित का पालन करना और परस्त्री सेवन से दूर रहना। यह व्रत संसरण से मुक्त होने का कारण है ॥ 4 ॥

(5)

पर स्त्री सेवन नरक गति को कारण है सकल दुष्कर्मों की जड़ है, कलंकों का जनक है, बंधुओं के बीच शत्रुता पैदा करने वाला है, शीलव्रत के लिए कृशकारी है, निर्मल वलिष्ठ देह को शक्तिहीन और निस्तेज करने वाला है, कीर्ति का क्षयकारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है । पंचम अणुव्रत है परिग्रह परमाणुव्रत जो तृष्णा की तरंगों के लिए प्रलयभानु है। संतोष के बिना तृष्णा महासमुद्र है, लोभ रंक के समान है, वह वस्तुतः भुजंग है। जो इन पंचाणुव्रतों का पालन करता है वह मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है।

(6)

इन पंचाणुव्रतों के अतिरिक्त तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों का भी पालन करना चाहिए। दिग्व्रत में देश-विदेश गमन की सीमा कर लेने से अधर्म से बच जाते हैं। द्वितीय गुणव्रत भोगोपभोग परिमाणु तथा तृतीय गुणव्रत अनर्थदण्डव्रत है। चार शिक्षाव्रतों में प्रथम सामायिक है जो प्रातः, दोपहर और सायंकाल की जानी चाहिए। द्वितीय प्रोषध है जो अष्टमी और चतुर्दशी को किया जाना चाहिए। तृतीय शिक्षाव्रत है दान जो सत्पात्र में दिया जाना चाहिए और चतुर्थ है सल्लेखना जिसका शरण मरण काल में लिया जाता है। इन बारह व्रतों का परिपालन निरतिचार पूर्वक किया जाना चाहिए। उन्हें पच्चीस दोषों से मुक्त होना चाहिए। अष्ट मूलगुणों का भी पालन किया जाना चाहिए इन व्रतों के साथ। यह श्रावक क्रिया है जिसके पालने से मुक्ति-पथ प्रशस्त हो जाता है। राजा ने यह उपदेश सावधानतापूर्वक सुना और उसकी अनुशंसा की।

(7)

इसके बाद राजा ने अपने पूर्व भव और भविष्य भव के संदर्भ में जिज्ञासा व्यक्त की। तब मुनिराज ने उसका वर्णन किया—हे राजन्! तीसरे द्वीप का नाम पुष्करार्ध है। उसके पूर्व में मेरु पर्वत है जिसके पश्चिम विदेह में शीतोदा नदी के उत्तरी तट पर एक सुगन्धि नाम का देश है। उसका हर प्रान्त कमलों की गंध से सुगन्धित है। इसलिए उसका नाम सार्थक है। वहां नागवल्ली जैसी सुन्दर लताएँ हैं, फलभार से झुके हुए सुपारी के वृक्ष हैं, थल कमलों की भी अपनी निराली शोभा है।

(8–9)

उस सुगन्धि देश में श्रीपुर नाम का एक नगर है। मणि जटित प्रासादों से वह सुशोभित है, कामिनियों के मुख-चन्द्र से प्रकाशित है, चन्द्रकान्त मणियों से निकलने वाली जलधारा में मानों चन्द्र ही अवभासित होता हो, हर घर के शिखर रंगे हुए है इसलिए वे ऐसे दिखते है जैसे उनके ऊपर रविका कलश लग गया हो। उसी श्रीपुर में श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था। वह क्षत्रियधर्म को पौरुष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का प्रतीक समझता था। दान में कर्ण था। सकल विद्याएँ साक्षात् उसमें एकत्रित हो गई थीं। वह अहंकार से दूर था, समूद्र के समान गंभीर और विशाल था, पर्वत के समान ऊँचा, चन्द्र के समान सुन्दर, बृहस्पति के समान बुद्धिमान था, विरक्त था, इन्द्र की कीर्ति को प्राप्त था, उज्ज्वल गुणों से युक्त था, निर्मल मनोज्ञ शरीरवान था, शत्रु रुपी अन्धकार के लिए सूर्य था, भिक्षार्थियों के लिए कल्पवृक्ष था, कामिनियों के लिए अमृत था। इस प्रकार वह गुणवान राजा अपनी प्रजा का पालन बड़े मनोयोग से कर रहा था।

(10–11)

उस राजा की कीर्ति अमृतरस के समान निर्मल और मुक्ति के समान कल्याणकारी था। उसका एकछत्र राज्य था। श्रीकांता नाम की उसकी महाराज्ञी थी जो अत्यन्त रूपवती थी। राज्ञी का मुख चन्द्र के समान था, स्तन वत्सलता से भरे पीयूष कुंभ थे, कटि भाग पतला था, ऊरु युगल स्थूल थे, सारे अंग रक्त कमल के समान कोमल थे। वह ज्ञान में शक्ति के समान, सुर में कंति के समान, तर्क में युक्ति के समान, सिद्धि में मुक्ति के समान, धर्म में क्षान्ति के समान, शील में शान्ति के समान. दान में कीर्ति के समान, अर्थ में युक्ति के समान थी। एक दिन वह खेद-खिन्न हो गई। जब अन्तःपुर में राजा आया तो उसने देखा कि उसके आंखों से आंसू बह रहे हैं। उसने कहा—प्रिये ! बताओ, किसने तुमसे अपराध किया है, किसने तुम्हारा अपमान किया है। त्रिलोक को जीतने वाले मेरे रहते हुए शक्र भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता। अतः स्पष्ट कहो, किस कारण से तुम दुःखी हो राजा के बार-बार पूछने पर वह लज्जावश कुछ नहीं बोली और सखि की ओर लीला पूर्वक देखने लगी।

(12–13)

सखि बोली—हे स्वामिन् ! आपके रहते हुए इसे विषाद का कारण क्या हो सकता है ! सच तो यह है कि सबके ऊपर कर्म है, भाग्य है। बात यह है कि आज यह मेरे साथ नगर की शोभा देखने छत पर गई थी। वहां से इसने बच्चों को खेलते हुए देखा जो हाथ की थपकी दे देकर गेंद खेल रहे थे। उन्हें देखकर इसका मन विषादमय हो गया और सोचने लगी—पुत्र के बिना भी कोई जिन्दगी है ? शोक का मूल कारण यही है। राजा यह सुनकर चिन्तित हो गया और सोचने लगा कि सब कुछ होते हुए भी पुत्र के बिना जीवन अधूरा है। बिना किरणों के सूर्य की शोभा ही क्या ? पुत्र के बिना राज्य का फल क्या ? पुत्र के बिना पुरुष के बल की सार्थकता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्या ? पुत्र के बिना कुल की गति कैसे हो षकती है ? पुत्र के बिना शोभा ही क्या ? पुत्र के बिना तप भी निर्मल नहीं हो सकता। पर यह सब कर्माधीन है। उसने कहा–प्रिये। पुत्र होना कठिन नहीं है। यदि भाग्य सर्वथा प्रतिकूल न रहा तो तुम्हारी यह इच्छा अवश्य पूरी होगी। तुम्हारा शोक मुझे संतप्त कर रहा है और मेरा संतप्त होना सारी प्रजा और राजाओं के शोक का कारण बन जाता हैं। अतः इस शोक को छोड़ो। अभी तीर्थं सुपार्श्वनाथ के तीर्थ में समस्त पदार्थों को युगपद् देखने वाले मुनिराज विराजमान हैं। उनके पास चलकर कारण पूछेंगे। रानी यह सुनकर प्रसन्न चित्त हो गई। एक दिन वनमाली ने आकर राजा से निवेदन किया।

(14)

हे देव ! वसंत आ गया है। चारों दिशाओं में आम्र मंजरियां सुरभित हो रही हैं, कोयल मधुर स्वर में गा रही हैं, उपवन में मदनराज बैठा हुआ है, मलयानिल बह रही है, हंस पंक्तियाँ आकाश में उड़ रही हैं, अलि पंक्तियाँ भी इधर-उधर दौड़ रही हैं, कामिनियाँ भ्रूवल्लियों रूपी धनुषों को खींचे हुए हैं, उनसे वे तीखे वाण चला रही हैं। वनपाल की यह सूचना पाकर राजा उधान की शोभा का आस्वादन करने चल पड़ा। वहां उसने देखा कि वहुविध पुष्पों से रसाल शोभित हो रहे हैं, भ्रमर पंक्तियाँ चारों ओर घूम रही हैं, कोयल मधुर स्वर से गा रही है और मधुर फल खा रही हैं, शीतल मलयानिल लीला पूर्वक बह रहा है। पंचेन्द्रिय विषयों से सिक्त वसन्त ऋतु की विशेषताओं को देखकर राजा संतुष्ट हुआ और विषाद छोड़कर उद्यान में बिहार करने लगा। इसी वीच दहां चारण ऋद्धिधारी मुनि आ पहुँचे। वे तप के प्रभाव से तेजस्वी और जन्म-मरण से मुक्ति देने वाले थे। अवधि ज्ञानी थे।

(15)

अस्नान परिषह से उनका शरीर मलीन लगता था जैसे ध्यान के प्रभाव से धूम का लेप लगा लिया हो। बारह महाव्रतों के पालन से उनका शरीर कृश हो गया था। वे मुक्ति-नारि से भी विरक्त थे। राजा ने उनके चरणों में प्रणामकर वहु विध भक्ति की और कहा कि मैं आपके दर्शन से पवित्र हो गया हूं, मुझे आपका चरणलाभ हो गया है उसमें निर्मुक्त होकर मैं अवगाहन कर रहा हूँ, फिर भी मेरा मन विरक्त क्यों नहीं हो रहा है ? राजा के ये वचन सुनकर मुनिराज ने उसकी आन्तरिक वेदना को समझा और बोले–राजन ! जब तक तुम्हें पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी तब तक यह चिन्ता मिट नहीं सकती। पुत्र जन्म के प्रतिषेध का कारण क्या है, इसे भी समझ लेना चाहिए। इस कारण का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बन्ध पूर्व जन्म से है। तुम्हारी महाराज्ञी यह श्रीकांता पिछले जन्म में इसी नगर में उत्पन्न हुई थी। उसके पिता देवांगद बड़े धन संपन्न व्यापारी थे। उनकी पत्नी का नाम श्री था जिसकी कुक्षि से सुनन्दा नाम की रूप लावण्य सम्पन्न पुत्री हुई। वह श्रावक व्रतों का परियालन करती थी। सुनन्दा ने एक दिन यौवन के प्रारम्भ में एक गर्भ-भार से पीड़ित महिला को देखा और निदान बांधा कि जन्मान्तर में भी मैं युवावस्था में इस जैसी न होऊँ। निदान बाँध लेने के बाद उसने आजीवन गृहस्थ धर्म का पालन किया और अन्त में मरकर सौधर्म में देव हुई। वहां से च्युत होकर शेष पुण्य के फल से दुर्योधन की पुत्री और आपकी पत्नी हुई।

(16)

आपकी इस पत्नी ने पूर्वभव के निदान के कारण ही अभी तक का अपना नवयौवन बिना सन्तान के व्यतीत किया है। अब थोड़े दिनों बाद ही निदान-दोष के शान्त होते ही अतुल बलशाली पुत्र होगा। बाद में उसे तुम राज्याभिषिक्त करके दिगम्बर दीक्षा ग्रहण कर लोगे और मुक्ति प्राप्त करोगे। राजा यह सब सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। फलतः उसने अतिचार रहित बारह अणुव्रतों के परिपालन का प्रण लिया, छेदन, बन्धन, घात-प्रतिघात आदि से मुक्त हुआ, असत्यवादन, कूटलेख-क्रिया, न्यासापहरण आदि छोड़ दिया, अचौर्यव्रत का पालनकर राजविरुद्ध कर चोरी तथा हीनाधिक मानोन्मान, तदाहृतादान को त्याग दिया। इसी प्रकार पर-विवाहकरण, अनंगक्रीड़ा आदि अतिचारों के साथ परस्त्रीसेवन का वर्जन किया और परिग्रह परमाणुव्रत का पालन किया तथा धन-धान्यादि के अतिक्रमण को छोड़ दिया। इस प्रकार पंचाणुव्रतों का निरतिचार पूर्वक पालन करने लगा।

(17)

ऊर्ध्व; अधो, तिर्यक् दिशा की सीमा का व्यतिक्रमण संख्याकृत क्षेत्र सीमा का विस्मरण (स्मृत्यन्तर्धान), क्षेत्रवृद्धि ये प्रथम गुणव्रत के अतिचार हैं। रागयुक्त असभ्यचचन बोलना, सचेष्ट क्रियाओं सहित असभ्य वचन बोलना, असंबद्ध प्रलाप, बिना विचार के निष्प्रयोजन क्रिया करना (असमीक्ष्याधिकरण), तथा भोग या उपभोग रूप वस्तुओं का जितना प्रमाण किया है उसकी सीमा के भीतर ही, पर आवश्यकता से अधिक संग्रह करना (उपभोगाधिकत्व) ये पांच अतिचार द्वितीय गुणव्रत (अनर्थदण्डव्रत) के हैं। विषयों की इच्छा करना, पूर्वानुभूत विषय भोगों का स्मरण करना, अतिलुब्धता, अतितृष्णा आदि पांच अतिचार भोगोपभोग परिमाण-व्रत के हैं। शिक्षाव्रतों में प्रथम सामायिकव्रत, द्वितीय प्रोषधोपवासव्रत, तृतीय दान-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्रत और चतुर्थ सल्लेखना व्रतों का भी निरतिचार पूर्वक पालन करने का विधान है। राजा ने इनके परिपालन करने की प्रतिज्ञा की।

(18)

राजा का समय सागरधर्माचरण, जिनाभिषेक, जिनपूजा, दान, धर्मध्यान आदि क्रियाओं में बीतने लगा। इसके बाद नंदीश्वर आष्टान्हिक पर्व आया जिसे उसने सोत्साह संपन्न किया। कुछ दिनों बाद रानी गर्भवती हो गई। उसका शरीर सफेद हो गया, स्तनों का अगला भाग काला और शेष भाग सफेद हो गया। इससे उसने चन्द्रमा की शोभा को भी मात कर दिया। जमुहाई चिर सखी की तरह निरन्तर निकटवर्तिनी हो गई। सन्मित्र के समान आलस उसके पास से नहीं भागता, लज्जा के साथ उदर बढ़ गया उसकी तीन बलियों के साथ स्फूर्ति लुप्त हो गई। दोनों नेत्र सफेद हो गये। मुनिवाणी के समान वह निश्चल हो गई। राजा ने उसका दोहद भी पूरा किया। इस तरह शुभ भावों पूर्वक धर्माराधना सहित उसका गर्भकाल परिपक्व होता गया।

(19)

इसके बाद शुभ दिन और, शुभ ग्रहों में श्रीकान्ता ने पुत्र को जन्म दिया। पुत्र तेजस्वी था। सारा अन्तःपुर रोमांचित हो उठा, सभी तरह के वाद्य बज उठे कारागृह से वंदियों नो मुक्त कर दिया, गया, और याचकों को अपने समान धनाढ्य कर दिया गया। इस तरह मांगलिक पुत्रोत्सव मनाया गया और फिर दसवें दिन पुत्र का नाम श्री धर्म रखा गया। पुत्र अहर्निश बढ़ने लगा और समस्त शत्रुओं के मनोरथों को भङ्ग करने लगा। उसने सारी कलाएँ सीखलीं, सारी विद्याए अर्जित कर लीं। इसके बाद उसने राजकन्या शीलवती प्रभावती के साथ विवाह किया। तदनन्तर श्रीषेण ने उसे राज्याभिषिक्त कर दिया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतीय संधि

(1)

एक दिन राजा श्रीषेरण राज्यसुख का पान करता हुआ राजमहल में बैठा था, कामकेलि में मस्त था। उसी समय उसने आकाश से गिरती हुई उल्का देखी। उसकी क्षरणभंगुरता देखकर उसे वैराग्य हो गया। वह सोचने लगा–यह मनुष्य जन्म फेन के समान निस्सार है यदि उसमें धर्म का पालन न किया जाये। बस, शरीर तो फिर मल की उत्पत्ति का कारण है, दुर्गन्ध और दुःख का घर है। यदि ऐसे दुःख दायी नारियों के शरीर में मोहित रहा जाय तो अमृत-सुविधा से व्यक्ति वंचित रह जायेगा। इस शरीर को विविध गंधों से सेवा फिर भी वह अशुचि दुर्गन्धों का घर बना रहा।

(2)

जिस मुंह को चन्द्र की उपमा दी जाती है वह कफ के पिण्ड के अतिरिक्त और क्या है? जिन्हें कामभल्लि कहा गया है वे नितम्ब दूषित मलद्वार हैं, जिन अधरों को अमृत का घर कहा जाता है वे थूक जैसे मल के निधान हैं, जिन स्तनों को अमृत-कुंभ माना जाता है वे मात्र मांस के लोथड़े हैं, जिस दन्त पंक्ति में सौभाग्य देखते हैं उसे वस्तुतः हाथ से कौन स्पर्श करता है? सारी पृथ्वी को जीतने की कोशिश की जाती है जबकि चार हाथ जमीन ही सोने के लिए पर्याप्त है, मोह के कारण व्यक्ति इतना अधिक धान्य पैदा करता है जबकि उसे भरण-पोषण के लिए थोड़े से ही अनाज की आवश्यकता होती है यह सब दूसरे के लिए किया जाता है। तब यह पाप स्वयं क्यों किया जाये? पुत्र-कलत्र आदि भी सभी स्वार्थी तत्व ही हैं। यह सोचकर राजा श्रीषेरण को संसार से वैराग्य हो गया और उसने अपना आगे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का मार्ग तय कर लिया। फिर अपने कुल के आभूषण स्वरूप युवराज को बुलाया।

(3)

युवराज ने तुरन्त आकर प्रणाम किया और खड़ा हो गया। श्रीषेण की दृष्टि में अब मोह नहीं था। उसने कहा–पुत्र ! आज तुम मेरी बात सुनो। जिस प्रकार आंधी फूस की झकझोर डालती है उसी तरह जब तक मेरे इस शरीर को वृद्धावस्था आकर झकझोर नहीं देती, जब तक तिमिर-नेत्र रोग मेरी देखने की शक्ति को नष्ट नहीं कर देते, साधु-श्रवण में और धर्म कथाओं के श्रवण में मेरे कान जब तक काल के प्रभाव से बधिर नहीं होते, तीर्थ यात्रा करने में प्रवीण मेरे पैर जब तक अपने गमन-सामर्थ्य को नहीं छोड़ते, जब तक कार्य अकार्य करने का विवेक समाप्त नहीं होता तब तक मैं सांसारिक बन्धनों को छोड़कर दिगंबर दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। भोगों की मेरी तृष्णा समाप्त हो गई है, रोगों का आना प्रारम्भ हो गया है, अंगों में कंपन आदि भी शुरु हो गया है।

(4)

काम -भोगों की शक्ति समाप्त हो गई है। सूखी हड्डी चबाने में मग्न जिस प्रकार कुत्ता अपने मुंह से निकले खून को पीकर ही संतुष्ट होता है उसी तरह वृद्धावस्था में विषय भोगों की स्थिति होती है। उपभोग करने की शक्ति बचती नहीं, पैर थक कर पंगु हो जाते हैं, सिर गंजा हो जाने के कारण ताम्र पात्र के समान दिखाई देने लगता है, दन्त पंक्ति विकीर्ण हो जाती है, पद संचालन कम हो जाता है जैसे काल ने वह शक्ति हर ली है, जरा-देवी के आने पर आठों अंगों में कंपन प्रारम्भ हो जाता है ऐसा लगने लगता है जैसे कोई अपराध के कारण कंप रहा हो, अंग गलित हो जाते है, शरीर रोगों से आक्रान्त हो जाता है, व्यक्ति निर्लज्ज और कुरूप बन जाता है।"

(5)

अतः अब मैं अपना कार्य शीघ्र संपन्न करता हूँ, अर्थात् दीक्षा लेता हूँ। तुम सप्तांग वाले राज्य का परिपालन भलीभांति करना। आत्मीय जनों का कभी अपमान न करना। दुर्जनों को कभी शरण नहीं देना और सज्जनों के गुणों को कभी छिपाना नहीं। कभी अभिमान नहीं करना। कोई ऐसे काम नहीं करना जिससे अपयश हो। पापियों द्वारा अर्जित सम्पत्ति की भी कभी अकांक्षा नहीं करना। दान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिये बिना कभी लक्ष्मी का उपभोग नहीं करना, सन्मित्र अथवा उपदेष्टा को दूर नहीं छोड़ना। शत्रुओं पर विजय-प्राप्ति को कर्म पर नहीं छोड़ना अर्थात् पुरुषार्थ पूर्वक उन पर विजय पाना। हृदय घातक वाणी नहीं बोलना। किसी पाप-चरित का आचरण नहीं करना। अनुभवी मन्त्रियों की सलाह लिये बिना कोई काम नहीं करना। धर्म को त्याग कर सुख का अनुभव नहीं करना। अर्थ, काम और तृष्णा को कभी सिर नहीं उठाने देना। प्रजा पर करों का बोझ अधिक नहीं डालना। इस प्रकार राज्य करते हुए, पृथ्वी पालते हुए, लक्ष्मी का सुख प्राप्त करते हुए कीर्त्ति का अर्जन करो और पुण्य संपादन करो, मुक्ति को प्राप्त करो। यही सकल मनोरथ सिद्धि के लिए कल्पतरु होगा।

(6)

श्रीषेण ने अपने पुत्र को इस प्रकार शिक्षा देकर उसे राज्य का भ:र सौंप दिया और अपने वृद्ध लोगों से अनुमति लेकर श्रीप्रभ मुनिराज के समक्ष जिन दीक्षा ग्रहण कर ली। कालांतर में दुर्धर तपस्या कर निर्वाण सुख को प्राप्त किया। इधर राजा श्रीधर्म पिता के वियोग से कुछ समय तो शोक विह्वल रहा बाद में मन्त्रियों और परिकर जनों से प्रतिबोधित होने पर उसका शोक दूर हुआ। तदन्तर दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया। चारों प्रकार की दुर्जेय सेना उसके पास थी। उसने संग्राम भेरी बजवा दी। उसकी आवाज सुनकर शत्रुओं के दिल धड़क उठे। प्रस्थान करते समय अनुकूल वायु चल रही थी। ध्वजाएँ लहरा रही थीं। उन ध्वजाओं ने सूर्य के साथ ही शत्रुओं के यश को भी आच्छादित कर लिया। चतुरंगिणी सेना बल से शत्रु कंपित हो उठे और उनका दर्प चूर-चूर हो गया। मार्ग में रत्नादि से भरे थालों से नागरिकों ने भी उसका अभिनन्दन किया।

(7–8)

शत्र वर्ग में श्रीधर्म के दिग्विजय प्रस्थान से एक खलबली मच गई। वे उसी तरह से भयभीत हो उठे जैसे गरुड़ के आने से सर्प हतप्रभ हो जाते हैं। उनमें कुछ स्तम्भित हो गये, कुछ उपहार आदि लेकर उसके समक्ष आ गये, कुछ जंगल में भाग गये, कुछ यममुख में समा गये, कुछ पिता के मरने पर अपने गले में कुठार लगा कर शरण में आ पहुंचे। कुछ दांतों तले अंगुलि दबाने लगे, कुछ पुत्र-कलत्र आदि परिवार को छोड़कर अपने प्राणों को बचाने की दृष्टि से दुर्ग पर चढ़ गये, कुछ ने अपनी सम्पदा को ढोकर दग्ध वृक्षों में रख दी, कुछ ने अपने मुख को गोद में डाल लिया मानो अपने कलंक को छिपा रहे हों, कुछ अपनी आयु को क्षीण मानकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुर्धर तपस्या करने निकल पड़े, कुछ ने यह सोचा कि श्रीधर्म सारे राज्यों का अपहरण नहीं करेंगे इसलिए अपने राज्य समर्पित कर दिये। इस प्रकार शत्रुओं की स्थिति देखकर उनके प्रणाम आदि प्रक्रिया से श्रीधर्म सन्तुष्ट हो गया और क्षत्रियोचित धर्म का उनके साथ आचरण किया।

जैसे ही संग्राम में उसने शत्रुओं का विनाश किया वैसे ही उस राजा का प्रताप और बढ़ गया। इसको देखते ही शत्रुओं की पत्नियां विरहाग्नि में जलने लगती थीं। शत्रु कुल देवता की पूजा से भी निराश हो गये। मुख में तृण दबाकर अपने जीवन की रक्षा करने की आशा करने लगे। उसके अतुल पराक्रम को देखकर कुछ जीवन मुक्त हो गये। कुछ कुहाडक को कंधे पर रखकर युद्ध करने का विचार करने लगे। कुछ वर्म के लगने से संतप्त हो गये, कुछ ने पादांगुलि को दांतों के भीतर डाल ली, कुछ राजा के हाथी के कुंभस्थल को देखकर भयभीत हो गये, कुछ उसकी तलवार देखकर इतने अधिक त्रस्त हो गये कि सुरतिकाल में पत्नी की वेणि को भी देखकर कंपित हो गये। कुछ ने उसके धनुष में इतनी वक्रता देखी कि उस वक्रता का विलास भ्रूलता में नहीं था, तीक्ष्णता को स्त्रियों के कटाक्ष में भी नहीं देखा जा सका। इस प्रकार चारों दिशाओं को जीतकर राजा ने अपने नगर की ओर प्रस्थान किया।

(9)

शत्रुओं से प्राप्त धन को याचकों में वितरित कर दिया गया और सभी राजा गण राजा श्रीधर्म को छोड़कर अपने-अपने नगर लौट गये। दिग्विजयकर लौटे हुए अपने राजा को अपने नगर में पाकर पुरजन अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे अर्घ लेकर उसका आदर-सम्मान करने निकल पड़े। पौरांगनाओं ने उसे लज्जा रूपी अंजुलियों में ग्रहण किया। नगर की शोभा दर्शनीय थी। जिन प्रतिमा को देखकर वह प्रसन्न हुआ। अपने प्रासाद में पहुंचकर वह पंचेन्द्रिय सुखों का उपभोग करने लगा। इसके बाद उसने एक दिन शरत्कालीन मेघ को देखा जो उत्पन्न होते ही नष्ट हो गया था। उसकी यह अवस्था देखकर राजा का वैराग्य हो गया और श्रीकान्त पुत्र को राज्य सौंपकर स्वयं श्रीप्रभ नामक मुनीन्द्र के चरणों में पहुंच गये। वहां उसने दिगम्बर दीक्षा ग्रहण कर तेरह प्रकार के चारित्र का आचरण कर अन्त में सौधर्म स्वर्ग में श्रीधर नाम का देव हुआ। देवांगनाएं उसकी सेवा में उपस्थित रहती थीं। उसकी आयु दो सागर प्रमाण थी। वहां रहते हुए उसने अपार सुख भोगा।

(10)

यहां से श्रीधर्म से सम्बद्ध कथा का प्रारम्भ होता है। धातकी खण्ड नाम का दूसरा द्वीप है। उसकी दक्षिण दिशा में एक पहाड़ है जो इणुकार नाम से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विख्यात है। उसके शिखरों पर देव लोग विचरण करते हैं। उसके पूर्वभाग में **अलका** नाम का देश है। वहां चारों ओर स्थल कमलिनी लगी हुई हैं जिनके मकरन्द से और पके कमलों की सुगन्ध से देश का हर कौना सुवासित हो रहा है। कामुक जन उसका पानकर मानो आसव पान से उन्मत्त हो रहे हैं, उस देश के मध्य में सुन्दर नदियां बहती हैं, जो प्रिय की गोद में बैठी हुई पत्नी के समान प्रतीत होती हैं। उसका मध्य भाग भंवर रूपी नाभि से विशेष अलंकृत है, पत्नी जैसे सुन्दर स्तनों से मनोहारिणी लगा करती है उसी तरह नदियों का जल भी मधुर है, कमल मानों उसके नेत्र हैं, विहगावलि उसकी मेखला की शोभा है। उस देश में **कोशला** नाम की नगरी है जो सभी तरह के के सुख, सौन्दर्य और गुणों से विशिष्ट है। वहां आंगन में रत्नों के फर्श लगे हुए हैं जिनमें रात्रि के समय ग्रह-नक्षत्र आदि प्रतिबिंबित होने लगते हैं। उन्हें देखकर नव वधुएं अपने पतियों के आलिंगन को लज्जावश छोड़ देती हैं। पति उस स्थिति को स्पष्ट करते हैं और हंसकर उसका चुंबन ले लेते हैं। वहाँ अभिसारिकाएं कृष्ण पक्ष की रात्रि में जब संचरण करती हैं तो उन्हीं का मुख-चन्द्र अपनी मुसकान की चांदनी में तुरन्त दिखाई पड़ जाता है। वहां के प्रासादों के शिखरों में लगी जालियों से निकलने वाले कालागरु धूम ले मानों चन्द्रमा में कालापन आ गया। उसी समय से चन्द्रमा में यह कलंक लगा हुआ है। उस नगरी में **अजितंजय** नाम का राजा राज्य करता था ॥10॥

(11)

वह राजा अपने सद्गुणों से प्रसिद्ध था। उन गुणों से ही लोगों को प्रकाश मिला था। "इस संसार में मेरे प्रताप को कौन जीत सकता है" यह सोचकर सूर्य सुबह बड़े गर्व के साथ उदित होता है पर शाम को राजा के प्रताप से लज्जित होकर मानो अस्त हो जाता है और करंडुवत् दिखाई देने लगता है। उसके गम्भीरता गुण से लज्जित होकर ही मानो लवण समुद्र काला पड़ गया और सूर्य अस्त हो गया। मानो उसकी भीषणता सूकर में पहुँच गइ और उसकी भूकुलदेवी उसकी भुजा में प्रविष्ट हो गई। उस राजा अजितंजय की **अजित सेना** नाम की महाराज्ञी थी जो कुल, शील, गुण और सौन्दर्य से समृद्ध थी। उसके रूप से इन्द्राणी का भी रूप हीन पड़ गया था। राजा उसके साथ रति-क्रीड़ा करता हुआ पचेन्द्रिय सुखों का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपभोग करता रहा। श्रीधर देव सौधर्म स्वर्ग से चयकर उनके यहाँ पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ ॥11॥

(12)

पुत्र का नाम अजितसेन रखा गया। वह शत्रुओं रूपी चिड़ों के लिए प्रचण्ड घातक था। बाल्यावस्था में ही उसने गुण रूपी सूर्य के तेज को प्राप्त कर लिया था। बाल्यावस्था में ही उसने समस्त आगमों का ज्ञान पा लिया था। बाल्यावस्था में ही उसने वृद्धों के अनुभव को हासिल कर लिया था और नीति विशेषज्ञ बन चुका था। बाल्यावस्था में ही कुल का भार धारण करने में धीर हो गया था और शत्रुओं के दलन में निपुण बन गया था। बाल्यावस्था में ही धर्म से सुसंस्कारित हो गया था और जनता के लिए शिक्षा देने के योग्य बन गया था। बाद में राजा ने अपने पुत्र की तरुणाई को देखा और उसके गुणों की ओर विचार किया। सोचने लगा—हम धन्य हैं कि इतना गुणवान् पुत्र हमने पाया। यह पुत्र चिरकाल तक हमारे कुल की कीर्ति को बढ़ायेगा। गुणवान और रूपवान पुत्र दुर्लभ होता है। वह बड़े पुण्य से मिलता है। गुणवान पुत्र से जो सुख मिलता है वह अमृत के स्नान से भी नहीं मिल पाता। यह सोचकर अपने वृद्ध मंत्रियों से उसे युवराज पद देने के संदर्भ में विचार-विमर्श किया। बाद में बुधजनों, परिजनों और अन्य मंत्रियों की सलाह के अनुसार मांगलिक विधि से उसे युवराज पद पर अभिषिक्त किया ॥12॥

(13)

इस मांगलिक अवसर पर पुरजन और परिजन अत्यन्त हर्षित हुए। इसके बाद एक दिन की बात है कि राजा अजितंजय युवराज के साथ रत्नाभूषणों से युक्त सिंहासन पर बैठा था। इसी अवसर पर माण्डलीक राजाओं का मण्डल उत्तमोत्तम उपहार लेकर उससे मिलने के लिए वहां आया कि अचानक चण्डरुचि नामक जो पूर्वजन्म का वैरी था, वहां आया और उसे देखने मात्र से वह क्रोधित हो उठा। तुरन्त उसने सारी सभा को संमोहितकर राजकुमार का अपहरण करके ले गया। एक क्षण के लिए उस मोहिनी विद्या के प्रभाव से राजा भी मूर्छित हो गया। उस विद्या की शक्ति जैसे ही कम हुई कि राजा सचेत हो गया। उसने वहां देखा कि सभागार राजकुमार से शून्य है। संभ्रमित होकर चारों ओर उसने गौर से देखा और निःश्वास छोड़कर सोचने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगा—क्या यह मोह है अथवा इन्द्रजाल, स्वप्नदर्शन है अथवा मतिभ्रम कि पास में बैठे हुए भी पुत्र को नहीं देख पा रहा हूँ। यह सोचता हुआ शोक करने लगा—हा दैव ! मेरा मनोरथ बीच में ही टूट गया। हे पुत्र ! तुम जहाँ भी हो, तुरन्त आ जाओ। तुम यह वचन दो कि इस तरह कभी अदृश्य नहीं होओगे। इसे प्रकार विलाप करते हुए, रोते हुए मूर्छित हो गया। परिजन भी हाहाकार करने लगा ।।13।।

(14)

अजितसेन ने राजा को मूर्छित होते हुए देखा हरिचंदन आदि केछिड़कने से, चामर की हवा से राजा की मूर्छा दूर हुई। फिर वह निःश्वास छोड़कर पुनः विलाप करने लगा। हे पुत्र ! तुम्हारे बिना यह जीवन भी क्या ! दैव ने मुझसे मणि छीन लिया और मैं अब बिलकुल भिखारी—सा बन गया हूँ। मुझे अमृत मिला पर अधरों पर लगाते ही पात्र टूट गया। अंधे को आँखें मिलीं पर दैव ने तुरन्त उन्हें फोड़ दिया। इन्द्र ने अपना राज्य दिया पर दैव ने उसे छुड़ाकर भिखारी बना दिया। रत्नत्रय से पापों से मुक्ति मिलती है पर गुणश्रेणि से प्राणी पतित हो जाता है। मुझे कितना भी सुख मिले, पुत्र के बिना उसका कोई महत्व नहीं। पुत्र के बिना कुल अंधेरे में चला जायेगा। कुल को आगे बढ़ाने वाला राजा कौन होगा ? इस प्रकार राजा बार-बार मूर्छित होता रहा। वीर हो या कायर हो, दैव इनमें कोई भेद नहीं करता ।।14।।

(15)

पुरजन और परिजन राजा के साथ शोक मग्न थे ही कि इसी बीच तपोभूषण नामक चारण ऋद्धिधारी मुनि आकाश से उतरते हुए दिखे। वे निर्मल चन्द्रमा के समान दृष्टिगोचर हो रहे थे। सारी सभा गर्दन उठाकर ऊपर देखने लगी। उनका तेज मण्डल आकर्षक था। ऐसा लग रहा था कि कहीं करुणार्द्र होकर सूर्य का बिम्ब तो नहीं उतर रहा हो वे। करुणा से शीतल, मेघबाहु, रत्नत्रयधारी, गुणाधिपति थे। जैसे ही मुनिराज ने पृथ्वी पर पैर रखा कि राजा ने उठकर उनकी चरण वन्दना की। अपने हाथ से आसन बिछायी और सन्तोष व्यक्त किया। हर्षित होकर अस्रु मिश्रित जल से उनके पैर धोये जो सभी के तारक हैं। और अपने हाथ से ऊंचा आसन दिया जिस पर वे बैठ गये। तब राजा ने कहा—हे नाथ ! आप मेरे घर आयेयह बड़े आनन्द की बात है, पर यह समझ में नहीं आया कि आप जानबूझकर यहां आये, हैं या मार्ग भूल गये हैं। जो भी हो, जिस तरह दुर्भाग्यवती विरही स्त्रियों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनके पति के साथ समागम होने से सुरति सुख मिल जाता है उसी तरह आपके दर्शन से मुझे शिव-सुख मिल गया। हमारे दुःख को आपने हर लिया ।।15।।

(16)

राजा के इन स्नेहिल वचनों को सुनकर मुनिराज ने आशीर्वाद दिया और हर्षित होकर कहा कि तुम्हें शोक संतप्त जानकर मैं प्रतिबोधन देने आया हूँ। तुम गुणवान हो और गुणियों पर अनुराग करने का मैं पक्षधर हूँ। तुम्हारे जैसा शुद्ध भाव वाला व्यक्ति कहां मिलेगा? यह सब जानते हुए भी शोक क्यों करते हो? सभी संसारी प्राणियों के इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग समान रूप से लगे हुए हैं। बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे प्रसंगों में बिषाद से खेद-खिन्न नहीं होता। इसलिए तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। तुम्हारे पुत्र को असुर हर ले गया। कुछ दिनों में ही वह चक्रवर्ती बनकर विपुल संपदा के साथ वापिस आ जायेगा। राजा यह सुनकर हर्षित हो गया और पुलकित होकर उसने मुनिराज की वंदना की। मुनिराज भी उठकर अपने इष्ट स्थान की ओर प्रस्थान कर गये। मुनिराज के वचनों पर राजा को विश्वास हो गया और विषाद छोड़कर संतोष पूर्वक रहने लगा ।।16।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चतुर्थ संधि

(1)

इसके बाद **चण्डरुचि** नामक कोपाविष्ट उस असुर ने राजकुमार अजितसेन को दोनों हाथों से चारों ओर घुमाकर फेंक दिया। तब राजकुमार मनोरम नाम के गहन सरोवर में गिरा। वहां गिरते ही मगर-मच्छ आदि जन्तुओं ने उसके ऊपर आक्रमण कर दिया जिसे उसने अपने शक्तिशाली मुक्कों और पैरों से मार-मारकर निरस्त कर दिया और अपने बाहुओं से तैरकर शैवाल को बिलोरता हुआ किनारे पहुंच गया। वहां उसे सामने **परुषा** नामक अटवी दिखी जिसमें सुई जैसा नुकीला कांस लगा हुआ था। सिंहों द्वारा विदारित हाथियों के गण्डस्थलों से निर्गत मुक्ताएँ फैली पड़ी थी जिन पर दृष्टिपात करने से ऐसा लगता था मानों वहां के उन्नत वृक्ष शाखाओं की रगड़ से आकाश से तारामंडल टूटकर बिखरा पड़ा हो। सघनता के कारण निविड अंधकार था मानो चुभने के भय से ही सूर्य अपनी किरण वहां नहीं फेंक पाता हो। कंटक वृक्षों से आच्छादित होने के कारण राजकुमार को प्रारंभ में दिशाभ्रम हो गया, पर थोड़ी ही देर बाद भीलों का एक मार्ग दिखा और उसी मार्ग से निर्भय होकर चल पड़ा। सामने ही उसे तुरन्त एक पहाड़ दिखाई दिया ।।1।।

(2)

पहाड़ के सम्मुख पहुंचते ही उसे मंथर शीतल पवन का सुख मिला और वह ऊपर चढ़ गया। उस अंजनगिरि पर उसे शिखर के समान एक क्रोधाविष्ट पुरुष दिखाई दिया। वह अत्यन्त बलशाली था, उसके नेत्र आमिष पिण्ड के समान लाल थे, रंग मेघ के समान काला था और हाथ में प्रचण्ड मुद्गर को घुमा रहा था। राजकुमार के सामने आकर उसने कठोर वचन कहे—"तूं यहाँ कैसे आ गया? इस उपवन की रक्षा मैं करता हूं। मेरी आज्ञा के बिना यहां देवेन्द्र भी नहीं आ सकता। तूं मेरी आज्ञा के बिना आया है। लगता है, तुझे अपने भुजबल का गर्व है। अब मैं तुझ पर अमरासुर का चूरण करने वाले इस मुद्गर से प्रहार कर तुझे शिक्षा देता हूं।" इस प्रकार की गर्वीली बातें सुनकर राजकुमार ने भ्रकुटि चढ़ाकर क्रोध से स्पष्ट शब्दों में उससे कहा ।।2।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(3)

तुम कौन हो ? यदि तुझ में कोई पौरुष है तो वचनों से भयवीत क्यों करते हो ? मैं सुरों और असुरों को दलन करने वाला योद्धा हूं। यदि तुझमें शक्ति हो तो आगे आओ और प्रहार करो। मैं वज्र मुष्टि के प्रहार से तुम्हें यों ही समाप्त कर दूंगा। यह सुनकर उस असुर ने बड़े क्रोध से मुद्गर से प्रहार किया। राजकुमार ने उसे निरस्त कर बाहुओं से दबोच लिया। दोनों एक दूसरे पर हाथों पैरों से प्रहार करते रहे। दोनों मल्लों में घनघोर युद्ध होता रहा। कोई भी पीछे नहीं हटा। तब राजकुमार ने अपनी भुजाओं से उठाकर उसे नीचे पटक दिया। असुर ने प्रसन्न होकर अपना दिव्य रूप प्रकट किया और प्रणाम कर बोला ॥3॥

(4)

मैं भवनवासी हिरण्य नाम का देव हूं। सुमेरु पर्वत पर जिन मंदिरों की वन्दना करने गया था। वहां से यहां क्रीड़ा करने आ गया। तुम्हें देखकर मैंने कृत्रिम वेश धारण कर तुम्हारी परीक्षा ली है। मैं तुम्हारे साहस से संतुष्ट हूं। हे वीर, मुझे यह कहने का साहस नहीं हो रहा है कि अवसर आने पर तुम मुझे स्मरण कर लेना। जिसने तुम्हारा हरण किया वह तुम्हारा शत्रु है और मैं तुम्हारा चिरकाल से मित्र हूं। मैं तुम्हारे पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाता हूं। पिछले तीसरे जन्म में तुम सुगन्ध नामक देश में श्रीपुर नगर के राजा थे। उस नगर में शशि और सूर्य नाम के दो गृहस्थ रहते थे। एक दिन शशि सूर्य के घर गया और उसकी सारी संपत्ति सेंध लगाकर चुरा ली। वास्तविकता जानकर तुमने शशि को पकड़कर उससे सूर्य की संपत्ति वापिस करा दी और उसे फांसी की सजा दी। वही शशि चण्डरुचि नाम का असुर हुआ और मैं हिरण्य नाम का देव हुआ। यह कहकर हिरण्य अदृश्य हो गया। राजकुमार भी उसके प्रभाव से क्षणभर में ही अटवी से बाहिर हो गया। इसके पश्चात् वह उस देश में पहुंचा जहां ग्राम, नगर लगातार बसे हुए थे। वहां उसने देखा कि लोग भयभीत अवस्था में इधर-उधर भाग रहे हैं। सब कुछ नष्ट हो रहा है। यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ ॥4॥

(5)

राजकुमार ने एक थके-मांदे भयभीत पुरुष से पूछा—सभी लोग यहां से क्यों भाग रहे हैं ? राजकुमार के इस प्रश्न को सुनकर वह पुरुष क्रोधित और दुःखित होकर बोला—क्या तुम्हें यह वृत्तान्त ज्ञात नहीं है जो तुम बार-बार पूछ रहे हो ? यह अरिंजय नामक देश है। इसमें श्री संपन्न **विपुल** नामक नगर है जिसमें **जयवर्मा** नाम का राजा राज्य करता है। उसका विवाह **जयश्री** के साथ हुआ। उनके **शशिप्रभा**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाम की पुत्री हुई जो सर्वांग सुन्दरी है। इसके बाद महेन्द्र नामक राजा ने जयवर्मा से उस कन्या के साथ पाणिग्रहण का प्रस्ताव रखा। पर चूंकि नैमित्तिकों ने महेन्द्र को अल्पायुवान् बताया इसलिये राजा उसे स्वीकार नहीं कर सका। महेन्द्र ने अपनी मनोरथ की सिद्धि न होते देख अपने पक्ष के सभी राजाओं से मिलकर जयवर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और जयवर्मा को मारकर नगर को घेर लिया। नगर के बहुत से प्रदेश उजाड़ दिये। इसलिए भयवीत होकर लोग यहां से भाग रहे हैं। राजकुमार अजितसेन यह सुनकर हंसा और प्रसन्न होकर विपुल नगरी की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में महेन्द्र की सेना ने उसे रोका पर वह आगे बढ़ता ही गया ।।5।।

(6)

सेना द्वारा रोके जाने पर भी राजकुमार को बढ़ते देख सैनिकों ने उससे अपमानजनक शब्द कहे और कहा कि राजा महेन्द्र आज्ञा का उल्लंघन करने वाले अपने पुत्र को भी नहीं छोड़ता। तब राजकुमार ने उसकी चतुरंगिणी सेना को भी तृणवत् मानकर उनमें से किसी एक के हाथ से धनुष छीन लिया। बस, युद्ध प्रारम्भ हो गया ।।6।।

(7)

दोनों ओर से बाण वर्षा प्रारंभ हो गई। कुछ सैनिक हकाल मात्र से गिर गये, कुछ मुष्टिका प्रहार से हत हो गये। वस्तुतः सेना रूपी समुद्र के लिए राजकुमार मंदराचल था, सैनिक रूपी जहरीले फणिकुलों के लिये गरुण था, नभ मण्डल के लिये सूर्य था, तृण समूह के लिए स्फुलिंग था, कुंजरगणों के लिए सिंह था। इस तरह सेना को ध्वस्त कर वह राजा महेन्द्र की ओर दौड़ा। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। अंत में राजकुमार के बाण से उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद राजा जयवर्मा ने जय-दुंदुभि बजवाई, कुमार का आलिंगन किया और वहां से सभी बाहर निकल गये ।।7।।

(8)

तुम मेरे अकारणबन्धु हो गये। निर्मल वंश वाले तुमने मेरी सहायता की। भयंकर दावानल लग जाने पर जिस तरह मेघ आ जाते हैं उसी तरह तुमने मेरा दुःख हरण किया। ठीक ही है—पृथ्वी संसार का संमर्दन सहती है, तरुगण अपने फलों का भार सहते हैं। इनके सारे उद्योग परोपकार के लिए होते हैं। बदले में इन्हें क्या मिलता है? राजकुमार ने कहा—यह सब पुण्य विपाक है। बाद में दोनों कुसुम रथ पर चढ़े और राजपथ पर चलते हुए नगर में प्रवेश किया। नगर खूब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सजाया गया। नगर बन्धुओं की नयन-कमल पंक्तियां लगातार राजकुमार के ऊपर गिरती रहीं, मंगलाचार किये उन्होंने और अपने मन-मंदिर में सहर्ष उसे प्रतिष्ठित किया। राजकुमार जयवर्मा के साथ कुछ दिन वहीं रहा ।।8।।

(9)

एक दिन की बात है, शशिप्रभा की एक सखी जो अंतरंग के भावों को समझने में दक्ष थी, महादेवी के प्रासाद गयी और वहां राजा जयवर्मा से विनम्रता पूर्वक नमस्कार कर कहा—हे राजन्! जब से आपकी पुत्री शशिप्रभा ने महेन्द्र को मारने वाले युवक अजितसेन को देखा तभी से उसके मदन ज्वर के लक्षण दिखाई देने लगे। उसने चन्दन का लेप छोड़ दिया है। मौक्तिक मणिमाला गिर गयी है, भोजन से अरुचि हुई है, अश्रुखण्ड सीने पर गिरकर तत्क्षण खौलने लगते हैं, मुख पर मंडराने वाले भौंरे धुएं से लगने लगे हैं, हिम-पिण्ड भी तप्त लगने लगा है, सारे शीतल उपकरण जलने लगे हैं, "इसने मुख की शोभा से मेरी शोभा चुरा ली है मानो यह सोचकर चन्द्रमा क्रुद्ध हो गया है, कोकिल शब्द भी कष्टकारी हो गये हैं, नीलोत्पल भी दुःखदायी वन गये हैं। सुकुमार राजकुमारी राजकुमार के कारण ही जीवित है। उसी के रूप को चित्राकार करती रहती है। इसलिये इस विषय में यथोचित कार्य कीजिये ।।9।।

(10)

शशिप्रभा की सखी के ये वचन सुनकर राजा जयवर्मा पुलकित हो गया। अजितसेन भी कामाग्नि से दग्ध हो गया। जयवर्मा ने तुरन्त नैमित्तिक को बुलाया और शुभ दिन में वाग्दान (सगाई) कर दिया। अजितसेन भी विवाह के दिन गिनने लगा। इसके बाद एक दूसरी घटना घटी। दक्षिण दिशा में एक विजयार्ध पर्वत है जिस पर रविपुर (आदित्यपुर) नामक एक मनोरम नगर है। उसमें धरणीध्वज नामक राजा राज्य करता था। वह विद्याधरों का स्वामी था। उसने विपक्षी विद्याधर राजाओं को अपने वश में कर लिया था। एक दिन अचानक **प्रियधर्म** नामक ब्रह्मचारी (क्षुल्लक) गगन मार्ग से आये। वे कोपीन वस्त्रधारी थे, उनका शिर मुण्डित था और दिगम्बर साधु के चिन्हों से चिन्हित थे। राजा ने सिंहासन से उठकर उनका पूरा आदर-सत्कार किया। उन ब्रह्मचारी ने कहा—हे राजन! मैं व्रतसेवी हूं, घर-परिवार, बंधुजनों को छोड़कर साधु हुआ हूँ। फिर भी न जाने क्यों, मन में तुम से बहुत अधिक स्नेह है, मोह है। इसलिये सुधर्मा नामक मुनि से तुम्हारे विषय में जो कुछ सुना है उसे तुम्हारे हित में कह देना उचित समझता हूं। अरिंजय नामक देश में एक विपुल नाम का नगर है जिसमें जयवर्मा नामका राजा राज्य करता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसकी शशिप्रभा नाम की एक कन्या है, जो लावण्य से परिपूर्ण है। उसका जो भी पति होगा वह तुम्हें मारकर भारत का चक्रवर्ती होगा। इस बात को सुनकर धरणीध्वज संतप्त हो गया। उसने ब्रह्मचारी को विदाकर अपने सामन्तों को बुलाया और विचार-विमर्श कर विपुल नगरी पहुंच गया ।।10।।

(11)

सारा गगन मार्ग मणिमेखलाओं से भूषित विमानों से आच्छादित हो गया। विद्याधर पति धरणीध्वज ने तब वचनकला में निष्णात उद्धत नामक दूत को बुलाया और सब समझाकर उसे जयवर्मा के पास भेजा। जयवर्मा नृपति के पास पहुंचकर प्रारम्भ में सुन्दर शब्दों में उसकी प्रशंसा की और बाद में अपना मनोभाव व्यक्त किया। उसने कहा—हे राजन्! मैं धरणीध्वज राजा का दूत हूं। उनका सन्देश देने आपके पास आया हूं। आपने अपनी शशिप्रभा नामकी पुत्री को ऐसे व्यक्ति के साथ विवाह करने का निश्चय किया है जिसकी जाति और कुल अज्ञात है, परदेशी है। अतः अपना हठ त्याग कर उसे विद्याधरपति धरणीध्वज के साथ विवाहित कर दें।" जयवर्मा ने दूत के वचन सुनकर कहा—तुम कुशल दूत हो, दूत को मारना उचित नहीं। तुम अपने स्वामी अजितसेन से जाकर कह दो कि निर्णय अपरिवर्तनीय है। उसमें यदि हठात् ग्रहण करने की शक्ति है तो शीघ्र चला आये। विचार क्यों कर रहा है? बाद में यह बात जयवर्मा ने अजितसेन को बता दी ।।11।।

(12)

जयवर्मा को सुनकर दूत अपने स्थान पर चला गया। इधर जयवर्मा ने राजकुमार से कहा कि यह बात तुम्हें अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि तुम्हारे पास भुजबल है जबकि प्रतिपक्षी विद्याओं से बलिष्ठ है। संग्राम में उसे जीतना अत्यन्त कष्टसाध्य है। यह सुनकर अजितसेन ने हिरण्य नामक देव का स्मरण किया। स्मरण करते ही वह देव दिव्यास्त्रों से सज्जित रथ लेकर आ पहुंचा। राजकुमार उसमें सवार हो गया और हिरण्य सारथी बनकर उसमें बैठ गया। हिरण्य ने कहा—आप चिन्ता न करें। वे भले ही विद्याधर हों पर हम उन्हें समाप्त कर देंगे। राजकुमार रथ लेकर प्रचण्ड बाण वर्षा करता हुआ आगे बढ़ता गया। सारे असंख्य विद्याधर बाण, चक्र, भाले आदि अस्त्रों से राजकुमार पर आक्रमण करने लगे। पर राजकुमार की अदृश्य बाण-वर्षा देखकर वे आश्चर्यचकित रह गये ।।12।।

(13–14)

विद्याधर की सेना और राजकुमार अजितसेन के बीच घमासान युद्ध चलता रहा। राजकुमार की तीक्ष्ण बाण वर्षा के सामने कोई टिक नहीं सका। विद्याधर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की सेना लगभग समाप्त हो गई। तब धरणीध्वज कोपाविष्ट होकर युद्ध करने आगे बढ़ा। अपनी सेना को मरते हुए देखकर धरणीध्वज को बड़ी चिन्ता हुई। उसने दिव्यास्त्रों को समेट कर तामस अस्त्र छोड़ा जिससे अन्धकार व्याप्त हो जाता है। उसके निवारणार्थ राजकुमार ने सूर्यास्त्र का प्रयोग किया। इसके बाद अजितसेन ने धरणीध्वज द्वारा प्रयुक्त भुजंगास्त्र को अपने गरुणास्त्र से, आग्नेयास्त्र को मेघास्त्र से, पर्वतास्त्र को वज्रास्त्र से रोका। इस तरह धरणीध्वज के सभी अस्त्र अजितसेन ने व्यर्थ कर दिये। तब उसे तीव्र क्रोध आया और म्यान से तलवार निकालकर अजितसेन की ओर झपटा। अजितसेन ने अमोघास्त्र से उसे निरस्त कर राजा की जीवन-लीला समाप्त कर दी। राजा के मरते ही विद्याधर भाग गये। इसके बाद हिरण्य को विदाई देकर वह विपुलपुर वापिस आ गया। नगरी राजकुमार के स्वागत में खूब सजाई गई, जयध्वनि की गई, चमर ढुलाये गये, मंगलाचार किया गया और फिर उसे नगर में प्रवेश कराया गया। बाद में जयवर्मा ने बड़े धूमधाम के साथ शुभ मुहूर्त में अपनी कन्या शशिप्रभा के साथ राजकुमार का विवाह कर दिया। कुछ दिन वह वहां रहा और बाद में अपनी नगरी को प्रस्थान किया ।।14।।

(15–16)

पुत्रागमन के समाचार सुनकर हर्षित-रोमांचित होकर पिता अपने परिजनों के साथ नगर के बाहर अजितसेन स भेंट करने आया और उत्सव पूर्वक अपने राज्य पर प्रतिष्ठित किया। इसके बाद पूर्व पुण्य कर्म के प्रभाव से चक्रवर्ती अजितसेन के यहां शत्रुओं को दमन करने वाले चौदहरत्न उत्पन्न हुए। उनमें चक्ररत्न आदि रत्न हजारों यक्षों द्वारा रक्षित था, ज्येष्ठ मास के सूर्य के समान तेजवान् था। खड्गरत्न शत्रुओं के लिए महाकाल सर्प था। वह तिमिर विनाशक था, असह्य किरणों वाला था, वस्तु प्रकाशक था और अमोघ था। इसके बाद अजितसेन के यहां विद्युतरत्न प्रगट हुआ जो बारह योजन तक जलधर्म को रोकता है। चर्मरत्न पैदा हुआ जो गंभीर समुद्र जल के तैरने आदि में उपयोगी होता है। चूड़ारत्न पैदा हुआ जो काले और गाढ़े अन्धकार को दूर करने में समर्थ होता हैं। गजरत्न प्रगट हुआ जो सुमेरु जैसा था और जिससे मदजल का प्रवाह बह रहा था। दंतरत्न ऐसा था जिससे हंसने पर मणि जैसी कान्ति स्फुटित होती थी। अश्वरत्न उत्पन्न हुआ जिसका वायु के समान प्रचण्ड वेग था, तेज था। दण्डरत्न कुलिशवत् था और वज्रशिला को भेदने वाला था। फिर वहु विद्याएं उत्पन्न हुई जो सभी तरह के विघ्नों का विनाश करने वाली थीं। सेनापतिरत्न प्रवर पराक्रम और गुणों का परिचायक था। स्त्रीरत्न स्त्री गुणों से भूषित तथा भोगासक्त मनुष्यों को मन भावन था। शिल्पिरत्न प्रासाद निर्माण में दक्ष था। गृहपतिरत्न आय-व्यय रखने में तथा घर के कार्यों में दक्ष था। इस तरह चक्रवर्ती अजितसेन को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौदह रत्नों की प्राप्ति हुई। इसी तरह उन्हें नव निधियां भी उपलब्ध हुई जो यथेच्छ वस्तु प्रदान करती थी ।।16।।

(17)

इन नौ निधियों में पाण्डुक निधि सभी प्रकार के धान्यों की पूर्ति करती थी। पिङ्गल निधि सुन्दर आभूषणों को प्रदान करती थी। काल निधि से छहों ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले फल चक्रवर्ती को यथेच्छ मिला करते थे। शंख निधि के माध्यम से मृदंग, वीणा आदि चारों प्रकार के वाद्य उपलब्ध हो जाते थे। पद्म निधि सभी समयों के अनुकूल सूक्ष्म और सुंदर वस्त्र प्रदान करती थी। महाकाल निधि मणि, स्वर्ण आदि से निर्मित मनोहर वर्तन देती थी। माणव निधि से शत्रुओं का वध करने वाले सभी प्रकार के अस्त्र मिल जाते थे। नैसर्प निधि शयनासन की व्यवस्था करती थी। सर्वरत्न निधि रत्नों और मणियों से आकाश में इन्द्रधनुष की शोभा फैलाया करती थी। इन निधियों से चक्रवर्ती की चिन्ता दूर हो गई। उनकी 96 हजार रानियां थीं। 32 हजार कुशल सामन्त थे जिनसे शुक्र भी भयवीत होता था। 360 सूयार, 3 करोड़ नौकर, 84 लाख हाथी, इससे तिगुने रथ, 18 करोड़ घोड़े, तीन करोड़ गायें और 32 हजार मण्डल थे। इतनी सारी संपत्ति होने के बावजूद चक्रवर्ती में किसी प्रकार का दर्प नहीं था। वह भलीभांति शासन करता रहा ।।17।।

(18–19)

चक्रवर्ती अजितसेन के पिता अजितजय ने राजा-महाराजाओं की उपस्थिति में अपने चक्रवर्ती पुत्र का पट्टाभिषेक किया। सारी प्रजा अत्यन्त हर्षित हुई। इसके बाद अजितंजय पुत्र अजितसेन चक्रवर्ती के साथ बड़े हर्ष पूर्वक स्वर्णप्रभ तीर्थंकर की वन्दना करने चल पड़े। समवशरण में तीर्थंकर जिनेन्द्र को देखकर भक्ति पूर्वक वन्दना की, त्रिप्रदक्षिणा की और पंचांग प्रणाम किया। बाद में हाथ जोड़कर विनय भाव से उसने प्रश्न किया।

हे भगवान्! यह संसारी जीव भीषण भव प्रपंच में पड़ा हुआ है। वह शुद्धावस्था कैसे प्राप्त कर सकता है? जीव कर्म से स्पष्टतः बंध जाता है। तब उसका संगम भिन्न गुणों के साथ कैसे हो जाता हैं? वंध अवस्था में उसे सुख कैसे मिल सकता हैं? विशुद्ध स्थिति कैसे पायी जा सकती हैं? आप परमेष्ठी हैं, सर्वज्ञ हैं। इन संदेहों को कृपया दूर करें। स्वयंप्रभ तीर्थंकर ने कहा। बोलते समय उनका अधर स्पन्दन रहित था और उनकी वाणी एक योजन पर्यन्त सुनाई पड़ रही थी। मिथ्यात्व, अवरति, प्रमाद, कषाय, और योग ये पांच कर्मबन्ध के कारण हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा इनसे जल्दी बंध जाता है। आत्मा मूलतः निर्मल है, विशुद्ध है, पर आश्रव के कारण उसका यह स्वभाव आवृत हो जाता है और वह पीड़ा पाता है ॥19॥

(20)

पच्चीस कषायों में आसक्त यह जीव कर्म से बंध जाता है। चार कषायों (क्रोध, मान, माया, लोभ) तथा पन्द्रह योगों के कारण वह भव भ्रमण करता रहता है। इस प्रकार कर्म से बंधा यह शुद्ध जीव खल्व-विल्व न्याय से बड़ी मुश्किल से नर जन्म पाता है। खल्वाट वेल वृक्ष के नीचे जाय और बेल उसके शिर पर गिरे यह बहुत कम होता है। इसी तरह नर जन्म भी दुर्लभ होता है। उसके भी आर्य खण्ड में जन्म मिलना और फिर शुभ कुल, जाति पाना और भी कठिन है। इसके मिलने पर भी जीव सांसारिक बंधनों में बंधा रहता है। काल-लब्धि आने पर, कर्म ग्रन्थि भेदने पर सम्यक्त्व प्राप्त हो जाने पर शुद्ध अवस्था मिल पाती है। सम्यक्त्व कभी कभार ही मिल पाता है ॥ 20 ॥

(21)

जैसे-जैसे कर्मपाश टूटता चला जाता है आत्मा की विशुद्ध अवस्था वापिस आती जाती है। एक समय ऐसा आता है कि जीव कर्मों से पूर्णतः मुक्त हो जाता है और केवल ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार जीव संसार के दुःखों का नाश कर परम पद प्राप्त करता हैं। स्वयंप्रभ तीर्थंकर का यह उपदेश सुनकर अजितंजय राजा संसार से विरक्त हो गया, पुत्र, कलत्र आदि कामोह छोड़ दिया, मन निर्वेद को प्राप्त हो गया, और उसे यह समझ में आ गया कि संसार के दुःखों से विमुक्त होने का उपाय है जिनेन्द्र भगवान के चरणों में पहुंच जाना। यह सोचकर अजितंजय ने तेरह प्रकार का चरित्र ग्रहण किया. बारह व्रतों और तप प्रकारों का पालन किया। इस प्रकार अजितंजय ने कर्म बन्धनों से मुक्ति पा ली। इधर अजितसेन ने श्रावक के बारह व्रतों को धारण किया और क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया। इसके वाद वे अपने नगर वापिस आ गये ॥ 21 ॥

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचम संधि

(1–2)

इसके बाद अजितसेन चक्रवर्ती समस्त सेना के साथ दिग्विजय के लिए निकल पड़ा। सर्वप्रथम वह पूर्व दिशा की ओर बढ़ा। दुंदुभी के शब्द से सभी भयभीत हो रहे थे। सेना के सबसे आगे चक्ररत्न था। उसके बाद अश्वसेना चल रही थी। बढ़ते-बढ़ते वह समुद्र तट पर पहुंचा। वहां प्रभास देव ने उसका आदर-सत्कार किया। वहां से चौबीस योजन पर मागध देव का शासन था। वहाँ चक्रवर्ती ने बारह योजन में अपनी सेना फैला दी और बारह योजन दूर बाण वर्षा प्रारंभ कर दी। मागध ने नामांकित वाण देखकर भयवीत होकर अपने मंत्रियों से परामर्श किया और विचित्र रत्नों का उपहार देकर स्वागत किया। मागध को विनीतकर फिर चक्रवर्ती दक्षिण दिशा में गया जहां वरतनु देव ने उसकी उपासना की। इसके बाद अजितसेन ने पश्चिम और वायव्य दिशाओं में भी दिग्विजय प्राप्त की। वहां के विद्याधरों और देवों को वश में किया। उनकी सेना को प्राप्त कर उसने अपना बल और बढ़ा लिया। सारे आर्य और म्लेच्छ खण्ड को जीत लिया जिसमें उसकी सेना को कोई हानि नहीं उठानी पड़ी। इसके बाद वह अपने नगर अयोध्या वापिस आ गया ॥ 1–2॥

(3)

इस तरह पांच म्लेच्छ खण्ड और एक आर्य खण्ड अर्थात् छः खण्ड वाले भरतक्षेत्र को जीतकर अजितसेन ने चक्रवर्ती पद पाया और जयश्री प्राप्त की। इस बीच वसंत ऋतु आ गई जो विरहिणियों के हृदय को विदीर्ण करने वाली थी। हिम दग्ध सकल उपवनों में हेमन्त ऋतु का प्रभाव भी होने लगा। सर्वत्र मदन के वाणों की वर्षा होने लगी। सरोवर में सुंदर कमल विकसित हो गये, निश्चल हो गये। आम्र मचरियों को देखकर विरही जन मरणोन्मुख हो गये। कोयल की कूक सुनकर मानिनी दुस्सह काम की शक्ति को समझ गई। सर्वत्र मलयानिल का संचरण हो गया। स्त्री के पाद-प्रहार से अशोक विकसित होता है पर कामिणियों ने सभी को शोक रहित कर दिया और अशोक यों ही विकसित हो गया। बकुल वृक्ष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्त्री के गण्डूष से पुष्पित होता है पर इस समय उसने भी उस नियम का पालन नहीं किया। सर्वत्र मधुमास ने विषमी जनों को संतप्त कर दिया। चारों ओर पुष्प प्रफुल्लित हो उठे और भ्रमर गुञ्जित होने लगे ।।3।।

(4–5)

इसके बाद राजा केलिवन में चला गया। वहां देखा कि कुछ स्त्रियां अपने पदरज से वन को धवलित कर रही हैं, कुछ वनमाला को अपने वक्षस्थल पर डाल रही हैं मानों काम प्रवेश के लिए तोरण द्वार बना रही हों। जैसे ही कामाग्नि से पीड़ा हुई कि मानियों का मान भग्न शीघ्र होने लगा। कुछ स्त्रियां चंपकमाला को शिर पर लगाये हुए थीं मानों काम ताप से वह जल गया हो। इस प्रकार वन में विहार करते हुए केलि करते हुए राजा बड़ा आनन्दित हुआ। बाद में वह सरोवर के पास पहुंचा जहां मधु मलया-निल बह रही थी। वहां घनसेल के भार से कुछ अवलाजन पथ पर चलते हुए खीझने लगीं। कुछ की रसना रास्ते में चलते हुए बीच में ही ढीली हो गई जिसे ठीक करने के लिए उन्हें खड़ा होना पड़ा। पहले जो अंदर नग्नावस्था में थी उसने दौड़कर पति का आलिंगन किया। जैसे ही उन्होंने वहां पुरुष को देखा कि वे विचलित हो उठीं। जल में उनके स्तन-कुम्भों का विस्तार देख कर चक्र-युगल जल छोड़ कर बाहर निकल पड़े। उनकी सलील गति देखकर हंसों ने सरोवर छोड दिया। बहुधनसेल से वह सरोवर सुगंधित हो गया। वहां फेन ऐसा दिखा जैसे हास ही बिखेर रहा हो। उन्होंने जल से नयनों का अंजन धोया जो ऐसा लगा जैसे कमल मानों अपनी कांति छोड़ रहे हों। उनके चलने पर पैर से महावर धरती पर लग गया जो ऐसा लगा जैसे रक्तकमल सौरभ लिए उठ खड़ा हो। इस तरह नारियों के साथ जल-क्रीड़ा करते हुए राजा का समूचा दिन निकल गया और सूर्य अस्त हो गया ।।4–5।।

(6)

इसके बाद जल-क्रीड़ा से निवृत्त होकर राजा प्रासाद में गया जहाँ उसे कामिनियों ने घेर लिया। प्रतापी सूर्य को भी जब अस्त हो जाना पड़ता है तो फिर गर्व करना निरी मूर्खता है। रवि-रथ का तुरंग प्रस्थान करते ही रात्रि का मुख खुलने लगा। नभ तल पर रुधिर-सा आच्छादित हो गया जिसे संध्या कहा जाता है। सूर्य समुद्र में छिप गया। तुरन्त नारायण प्रकट हो गये। मानो विविध उपकारों का स्मरण कर दिन सूर्य के साथ ही अस्त हो गया हो। चक्रवाक पक्षियों के जोड़े दुःखी होने लगे। चन्द्र की धवलता से भयवीत होकर अन्धकार छिप गया। दीपक ने मानो अन्धकार को पीकर अपने हृदय में छिपा लिया हो और उसे कज्जल के बहाने धीरे-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धीरे छोड़ रहा हो । अपने प्रिय के विरह से कमलों ने नेत्र बन्द कर लिए । हृदय में कामाग्नि का संताप बढ़ने से स्वैरिणी अपने प्रिय के घर सुविधा पूर्वक जाने लगीं ॥6॥

(7)

पहले जिस नायिका ने अपने प्रिय से गाढालिंगन किया वही बाद में किसी प्रसंग पर कोपाविष्ट होकर आलिंगन मुक्त हो गई। शशि कामियों की ईर्ष्या को जान कर ही मानो नभ-तल से जल में संचरण करने लगा । निर्मल चन्द्र ने नभ का भक्षण कर हृदय में छिपा लिया जो उसके लांछन के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है । चन्द्र नारियों के मुख से मधु उडेलता है यही सोचकर अन्धकार ने उसे आच्छादित कर लिया । कामाग्नि से संतप्त होने पर नायिका जब अचेत हो गई तो उसकी मूर्छा दूर करने के लिए उसकी पीठ पर चन्दन का लेप लगाया गया । चन्द्रमा ने यह देखकर कुसुम के छल से किरणें बिखेर दीं । उद्यान में भ्रमर भुनभुन आवाज करते हैं । चन्द्र मानो अपने अन्धकार रूपी बन्धु के नष्ट होने पर रुदन कर रहा है । सकल भुवन में चन्द की धवल किरणें फैली हुई है । लगता है, हर्षित होकर मदन अपना हास बिखेर रहा हो । कटाक्षों से निकले तीखे बाणों को चन्द्र ने मानों अमृत कुम्भ में भर लिया हो । किरणों के माध्यम से उसका अमृत झर रहा है । स्त्री के मान रूपी पर्वत को चन्द्र ने वज्रानल से चूर्ण-चूर्ण कर दिया । इस प्रकार चन्द्र को विविध आयामों से देखकर आनंदित होकर कामिनियों ने अपने प्रियतम के मन को वेध डाला ॥7॥

(8)

कोई नायिकाएं हरिचंदन से अंग लेप कर रही थीं मानो अमृत ने प्रवेश कर लिया हो। कोई हारावली को अपने गले में डाल रही थी लगता था, मुख चन्द्र तार-पंक्ति को ग्रहण कर रहा हो । कोई कर्णयुगल में कुण्डल धारण कर रही थी मानो मदन के मुखरथ में चक्र लगा रही हो। कुछ कमर में मेखला को धारण कर रही थीं मानो काम के मंदिर में तुंगसाल लगा रही हों । कुछ स्वच्छ वस्त्र पहने हुए थीं जिनसे शरीर सुरभित हो रहा था । कहीं कालागुरु धूप जल रही थी उसके धूम के छल से, लगता था, विरह के दुःख से मृत नायिक को ज्ञापित किया जा रहा हो । राजा नायिकाओं के इस विलास को देखकर प्रफुल्लित हो गया । बाद में वह घर गया और शशिप्रभा के साथ सभोग किया । इस तरह सारे समय काम वासनाओं की तृप्ति करते-करते वृद्धावस्था आ गई । बाल पक गये फिर भी पंचेन्द्रिय सुखों के उपभोग को उसने नहीं छोड़ा। सुरति का आनंद लेते हुए राजा को गहरी नींद आ गई और बाद में दीपक को कंपित करने वाला शिशिरानल प्रवाहित होने लगा ॥8॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(9)

प्रभात होते ही मांगलिक वाद्य बजे और फिर स्तुति पाठकों ने शीघ्र ही अन्दर प्रवेश कर राजा को रात्रि समाप्त होने की सूचना इस प्रकार दी। हे राजन्। अपनी प्रिया के बाहुपाश से निकलकर शय्या को छोड़ो। बाहर झांककर देखो – जो भौंरे रात्रि में बंद हो गये थे, छिप गये थे वे उन कमलों से दुःख त्याग करते हुए बाहर आ रहे है मानों अन्धकार को वेध कर रहे हों। मुर्गे की आवाज सुनकर ऐसा लग रहा है जैसे वह कह रहे है कि चित्त की कलुषता छोड़ो और कोमलता धारण करो। नल रूपी तस्करको नष्ट कर पूर्वांचल में सूर्य की किरणें निकलने लगीं। वन के विद्रुम ऐसे लग रहे हैं जैसे सूर्य-बिम्ब के पके फलों को ही वे धारण कर रहे हों। रतिघर के गवाक्षों से सूर्य की किरणें प्रवेश करने लगीं मानो संतप्त मदन क्रोधित हो रहा हो। घर का हर भाग सूर्य के प्रकाश से जगमगा उठा। उसी समय मंगल वाद्यों से राजा की निद्रा टूटी और वह जाग उठा। दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर उसने जिन पूजा की और दानमयी सिंहासन पर जा बैठा। तब लोगों को ऐसा लगा जैसे मण्डप में चन्द्र आ गया हो। उसी समय सामन्तों, मंत्रियों, आदि ने आकर प्रणाम किया और सुमधुर वचनों से वंदनाकर सर्वात्रसर नामक सभा मण्डप में बैठ गये ।।9।।

(10)

तदनन्तर अजितसेन ने अपनी सेवा के निमित्त आये एक गजराज को देखा। वह गजराज अत्यन्त बलवान था। राजा ने उससे क्रीड़ा करने के लिए अपने वीरों को संकेत किया। राजा की आज्ञानुसार एक ने उस गजराज की सूंड पर मुक्के का कठोर प्रहार किया, दूसरे ने दूसरी ओर से आरी चुभा दी, किसी ने लोढा मार दिया। इस तरह ये वीर पुरुष उस गजराज को युद्ध की शिक्षा दे रहे थे। गजराज क्रुद्ध हो उठा था। इसी बीच एक व्यक्ति बीच में आ गया। हाथी ने आगे सूड़ फैलाकर उसे पकड़ लिया और धरती पर पटक दिया। गिरते ही उसके अंग प्रत्यंग चूर-चूर हो गये, हड्डियां टूट-टूटकर बिखर गई ।।10।।

(11)

उस पुरुष को मृत्यु-मुख में जाते हुए देखकर राजा संतप्त हो गया और वैराग्यभाव से सोचने लगा—यह संसार-समुद्र बड़ा भीषण है। यहां कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है। मरण अवश्यम्भावी है। जो उत्पन्न होता है वह मरता अवश्य है और फिर भव-भ्रमण करता है। संसारी व्यक्ति इस क्षण भंगुर देह को भी अपना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानकर उसमें आसक्त रहता है। नारी के रूप-सौन्दर्य को देखकर काम बाण से विद्ध होता है और उसका संयोग पाकर अपने आपको सुखी मानता है। इसलिए अब मैं संसरण के सभी मूल कारणों को समाप्त करूंगा। यह सोचकर विचार करने लगा और कषायों का उपशम करने लगा। इसी बीच द्वारपाल ने सूचना दी ॥11॥

(12)

हे देवाधिदेव ! ख्याति संपन्न गुणप्रभ नामक मुनिराज अपने संघ सहित शिवंकर नामक उद्यान में पधारे हुए हैं। वे पंचमहाव्रतों को धारण करने वाले हैं। उन्होंने पंचेन्द्रिय विषय-द्वारों का संवर किया है। उनके पंच ज्ञानों से मानों दिनकर प्रकाशित हो रहा है। पंच निर्गन्थों में वे श्रेष्ठ हैं। पंच परमेष्ठियों की आराधना करने में व्यस्त हैं। पंच प्रकार के शरीरों को धारण करने वाले हैं। पांचों भवों के स्वरूप को उन्होंने अच्छी तरह जान लिया है। पाँचों मिथ्यात्वों का उन्होंने विनाश कर दिया पंच स्वाध्यायों का वे परिपोषण कर रहे हैं। पंच समितियों का परिपालन कर रहे हैं। पचास्तिकायों का उन्हें अच्छा ज्ञान है। पांचों जीवसमासों का वे रक्षण करते हैं। पंचाश्रवों के स्वरूप को जानकर चिंतन करते हैं। पांचों आचरणों का पालन करते हैं। पांचों वाणों का संहार करते हैं। पंचमेरुओं की वंदना करते है। पंचम गति को सुख रस कह अनुभव करते हैं। पंच अनुत्तर वासियों द्वारा पूजित हैं। पंच मिथ्यात्वों से वर्जित है। पंच स्थावर से जीवों पर दया करते हैं और पंच निद्राओं को उन्होंने जीत लिया हैं। राजा ने उसकी इस बात को सुनकर प्रसन्नतापूर्वक वनमाली को सम्मानित किया ॥12॥

(13)

राजा उद्यान में पहुंचा और वहां मुनिवृंद को देखा कि वे राग-द्वेष से मुक्त थे, गुणों से महान थे, अन्तर-बाहर से निर्मल थे, बाह्य अभ्यंतर तप से उनका गात्र कृश हो गया था, पुण्य-पाप बंधों से मुक्त थे सविपाक-अविपाक निर्जरा से कर्मों की निर्जरा की थी, इन्द्रिय-प्राण संयम के माध्यम से परम धर्म का पालन कर रहे थे, नरक तिर्यञ्च गतियों से मुक्त थे, उच्च-नीचगोत्र कर्म को भी उन्होंने नष्ट कर दिया था, स्कन्ध-परमाणु के भेद से पुद्गल के स्वरूप को जानते थे, सकल-निकल सिद्धों की वंदना करते थे, साता-असाता वेदनीय कर्मों का उन्होंने क्षय कर लिया था, वे आत्म स्वभाव को भलीभांति जानते थे, सम्यक्त्व को भी पहचानते थे, मन-वचन-काय संवर से दृढ़ थे, स्त्री-पुं-नपुंसक वेदों से दूर हो गये थे, त्रिगुप्तियों का परिपालन करते थे, त्रिमूढ़ताओं से दूर थे, तीनों गुणव्रतों से युक्त थे, तीनों कालों और लोकों का प्रत्याख्यान कर दिया था, रस-ऋद्धि-तप की गौरव छाया से मुक्त थे, तीनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शल्यों को भी उन्होंने छोड़ दिया था, तीनों दंडों से भी वे मुक्त थे और तीनों शुद्धियों से उन्होंने आत्मस्वभाव को शुद्ध किया था। इस प्रकार मुनिवर को देखकर उनके गुणों से आकृष्ट होकर राजा ने उनकी चरणवंदना की और आत्मस्वभाव का भावन किया, पापों से मुक्त हुआ और गुण-श्रेणी चढ़ गया ॥13॥

(14)

राजा ने निवेदन किया-हे मुनिवर ! हमारे पापकर्मों का विनाश कीजिए। हमारे नेत्रों को सफल बनाइए और मनोरथ पूर्ण कीजिए। आज हमारे मनुष्य जन्म को सफल बनाइए, हमारे घोर कर्मों का विनाश कीजिए, हमने आज जो चिंतामणि पाया है वह व्यर्थ न चला जाये। इसलिए हे स्वामिन ! इस संसार-सागर के दुःखों से मुक्त कीजिए और जिनदीक्षा देकर प्रसन्न होइए। आप करुणा सागर और गुणमहान् हैं। राजा की यह बात सुनकर मुनिवर ने राजा के मन की परीक्षा करने की दृष्टि से पूछा-हे राजन् ! कमल पत्र किसी तरह का कठोर भार नहीं सह सकता। तम्हारा शरीर सुकुमाल है। अभी तक तुमने कभी कंकड़-मिट्टी को नहीं सहा है। शिरष कुसुम-सा यह तुम्हारा सुकुमाल देह जिनदीक्षा जैसे दुःखद और कठोर तप को कैसे सहन कर सकेगा ! जो शरीर हरि चंदन का लेप लेता रहा हो वह रज का भार कैसे ग्रहण कर सकेगा ? जो हंस-तूल के पलंग पर सोया हो उसका चित कठोर तल पर कैसे लगेगा ? अभी तक तुमने सुस्वादु भोजन किया, उसी में सुख माना अब दुःखों का घर, देखने में असुंदर जिनदीक्षा को क्यों ग्रहण करने की इच्छा कर रहे हो ? ॥14॥

(15)

राजा ने मुनिवर की बातें सुनकर कहा कि हे मुनिवर ! इस जैनेन्द्री कठोर तप का आचरण करने के लिए मैं कटिबद्ध हूं। मैंने अभी तक सकल सुखों का उपभोग किया है पर नरक के दुःख भी भोगे हैं। कभी चंदन का लेप किया तो कभी दुर्गंध में अवगाहन किया, कभी चामर ढुले तो कभी तप्त मुदगर पडे, कभी रत्नासन पर बैठे तो कभी हाथी का सूल देखा, कभी हरिणनेत्रियों का आलिंगन किया तो कभी डायनों से पाला पड़ा, कभी हाथी पर चढ़ा तो कभी गधे की सवारी की, कभी सुकवियों के प्रशंसा वाक्य सुने तो कभी हाहाकर भी सुना, कभी रूप से अनंग को जीता तो कभी कुष्ठ रोग से अग सड़े-गले। इस प्रकार विविध रूपों से संसार में भ्रमण किया और कर्मबंधनों से जकड़ा जाता रहा। इस प्रकार कहकर राजा ने अपने कंठ से हार उतारा और राज्य-भार पुत्र को सोंपा। केशों का लुंचन किया, आभरण और वस्त्र, छोड़कर तप और आचरण को स्वीकार किया। इसके बाद मुनिवर द्वारा प्रदत्त शिक्षा को विनय पूर्वक ग्रहण किया ॥15।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(16)

फिर राजा ने बारह प्रकार का दुर्धर तप किया, बारह अविरति से दूर रहा, बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतन किया, बारह प्रायश्चित्तों का मंथन किया, बारह अंगों का अध्ययन किया, बारह सिद्धान्तानुपयोग का पठन किया, बारह उपयोगों को मन में धारण किया, श्रावक के बारह व्रतों को छोड़कर महाव्रतों को अंगीकार किया, तेरह प्रकार के निर्मल चरित्र को ग्रहण किया, तेरह कषायों को दूर किया, चौदह पूर्वों और प्रकीर्णकों का ज्ञान प्राप्त किया, चौदह प्रकार के परिग्रहों को छोड़ा, पिण्डेषणा को मन में धारण किया, चोदह मलों का विसर्जन किया और चौदह गुण-श्रेणियों पर क्रमशः चढ़ता गया। इस प्रकार बहुत काल तक तपस्या कर अच्युत स्वर्ग में इन्द्र हुआ। बाईस सागर तक वहां के दिव्य सुख भोगे ॥16॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षष्ठ संधि

(1)

आयु समाप्त कर तुम अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर रत्नसंचयपुर में कनकप्रभ राजा के घर अवतरित हुए और पद्मनाभ राजा के नाम से विश्रुत हुए। इस प्रकार मुनि ने पद्मनाभ के पूर्व भावान्तरों का वर्णन किया जिसे राजा ने अंजुलि भाव से ग्रहण किया। उसे सुनकर उसका मन पुलकित हो गया और हर्ष विभोर होकर मुनिराज से कहा—हे मुनिवर ! आपने मेरी पूर्वजन्म कथा तो बता दी। अब आप कोई ऐसी विश्वासजनक बात बतायें जिससे मेरी संशय बुद्धि दूर हो सके। यह सुन कर मुनिराज ने पुनः कहा—आज से ठीक दसवें दिन एक मदोन्मत्त हाथी—वनकेलि अपने झुण्ड को छोड़कर तुम्हारे नगर में आयेगा। उसे देखकर तुम्हें मेरी कही हुई सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी। यह सुनकर राजा को संतोष हुआ और वह मुनिराज को प्रणाम कर अपने नगर वापस आ गया। घर पहुंचकर राजा ने सुख-साता पूर्वक काल यापन किया और मुनिराज द्वारा निर्दिष्ट दिनों की गणना करता रहा। ठीक दसवें दिन पुरजन एक हाथी का पीछा करते हुए सुनाई पड़े। दूत ने आकर पद्मनाभ से कहा।

(2)

हे राजन ! कहीं से एक हाथी आ धमका है मानों वह प्रलयमेघ हो। उसके गण्डस्थल से मदजल बह रहा है, सभी लोगों को वह नष्ट कर रहा है। अपने कर-सीकर से सिंचित सूर्य-चन्द्र भी पल भर में नीचे आते-से दिख रहे हैं। प्रत्यक्ष रूप में आप देखिये वह प्रलय काल ही है। राजा यह सुनकर उठा और तुरन्त गजराज के सामने पहुंच गया। गजराज अपनी सूंड उठाकर प्रचण्ड वेग से प्रलय दण्ड सा लेकर राजा की ओर दौड़ा। राजा ने सामने दौड़ते हुए उस हाथी के मुख पर हथिनी की पेशाब से सिञ्चित कपड़ा फेंक दिया। हाथी उस कपड़े में जैसे ही आसक्त हुआ, पद्मनाभ ने उसकी बगल में जाकर डण्डे का प्रहार किया। उस प्रहार से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे ही वह उस ओर मुड़ा कि राजा दूसरी ओर हो गया। इसी तरह वह उसके चारों ओर घूमता रहा। हाथी जब बिलकुल पस्त पड़ गया तो पद्मनाभ उसके कुम्भस्थल पर चढ़ गया। इस तरह उस अतुल पराक्रम वाले हाथी को राजा पद्मनाभ ने अपने वश में कर लिया और फिर वह अपने स्थान वापिस आ गया। इसके पश्चात् एक दिन की बात है कि राजा पद्मनाभ जब सभागार में बैठा हुआ था कि एक दूत पृथ्वीपाल का संदेश लेकर आ पहुंचा।

(3)

हाथ जोड़कर उस दूत ने कहा—हे राजन ! आपका विनय व्यवहार सर्वत्र प्रसिद्ध है। परन्तु मेरे राजा पृथ्वीपाल ने यह कहा है कि आपने उनके प्रति बड़ी अभद्रता, अविनयता का प्रदर्शन किया है। मेरा हाथी वनकेलि आपके नगर में आया और उसे आपने पकड़कर अपने अधिकार में कर लिया। यह अविनम्रता, धृष्ठता कौन सह सकेगा ? पृथ्वीपाल का कहना है कि उसे आप शीघ्र ही वापिस कर दें और राजा की भक्ति करें। असत् भी उसकी दासता स्वीकार करते हैं। गृहचक्र भी दीर्घश्वास लेकर उसके चारों ओर संक्रमण करते हैं। दुर्निमित्त भी उसके साथ मित्रता किये हुए हैं। जो अवसर को पहचानते हैं वे लोक में वाञ्छित फल प्राप्त करते हैं। लोक में जो भी कोई दुष्ट है वे सब उसकी दासता स्वीकार करते हैं : इसलिए आप राजा पृथ्वीपाल का हाथी वापिस कर दें और उसकी चरण बन्दना कर उससे स्वयं मिल लें। यह सुनकर राजा ने युवराज सुवर्णनाभ को बोलने के लिए संकेत किया।

(4)

युवराज स्वर्णनाभ ने कहा—हे दूत ! तुम्हें जीवत रहना है या टुकड़े-टुकड़े होना है। राजा पद्मनाभ के कारण तुम जीवित हो फिरभी तुम्हारा विनय भंग असहनीय है। गजराज जैसी वस्तु पुण्यवान को ही प्राप्त होती है। गजराज स्वयं यहां आया है। उसे बलात् कोई छीन ले, यह कैसे हो सकता है ? यदि वह कृपा पूर्वक हमसे हाथी की याचना करना चाहता है तो वह ले सकता है पर भय दिखाकर नहीं ? अविनय प्रदर्शन से जीवित रहना भी कठिन होगा। तम्हारा राजा पृथ्वीपाल जो निष्कंटक राज्य भोग रहा है वह राजा पद्मनाभ की कृपा से भोग रहा है। अब तुम यदि अपना भला चाहते हो तो यहां से चले जाओ अन्यथा अपने मुण्ड रूपी कमलों से संग्राम भूमि की अर्चना करनी पड़ेगी। दूत यह सुनकर कुपित हो गया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और पुनः कुछ अपमान जनक बातें कहीं जिन्हें सुनकर राज दरबार के योद्धा संतप्त हो गये और कोप से कंपित हो गये।

(5)

राजा पद्मनाभ ने युवराज तथा सारी सभा को समझाया कि दूत से कुपित होना व्यर्थ है। वह तो अपने स्वामी की बात को ही दुहराता है। जो जिसका खायेगा वह उसका भंजायेगा ही। फिर दूत से कहा कि तुम ने इसका फल जाने बिना ही यह सब कह डाला। तुम दूत हो इस लिए क्षमा किया जाता है। अब तुम जाओ। इसका निर्णय संग्राम में ही होगा। राजा की बात सुन कर दूत अपने नगर वापिस आया। इधर पद्मनाभ सभी सभासदों के साथ मन्त्रणा घर में पहुंचा। जो वृद्ध अनुभवी और नीतिकुशल मन्त्री थे, शास्त्रज्ञ और संग्राम के धीर वीर योद्धा थे, विवेकवान थे, उन सभी से विचार-विमर्श किया। युवराज स्वर्णनाभ भी वहीं था।

(6)

सभासदों में ज्येष्ठ मन्त्री पुरुभूति बोला—हे स्वामिन्! आप विशेष नीतिज्ञ हैं। आपके आगे मैं क्या बोलूं। फिर भी—साहस कर रहा हूं। जो सूर मात्र भाव से संतप्त होते हैं, नीति मार्गज्ञ नहीं होते, जैसे सिंह आदि, वे भी शिकारियों द्वारा समाप्त कर दिये जाते हैं। इसलिये नयहीन पराक्रम सफलतादायक नहीं होता। पतंग के साथ दीपक भी निष्कारण बुझ जाता है उसी तरह क्रोध में व्यक्ति छिन्न-भिन्न हो जाता है। भस्म (धूलि) भी दण्ड से कुरेदे जाने पर शिर पर लगती है। जैसे अबोध शिशु जलते हुए काष्ठ को अपनी ओर खींचने पर जल जाता है उसी तरह नीति से अनभिज्ञ व्यक्ति स्वयं दुःखी हो जाता है। अतएव साम से ही काम किया जाना चाहिए। वही सुख का स्थान है। साम से ही तिर्यञ्च भी अनुकूल हो जाते हैं। पर यदि उन्हें दण्ड का भय दिखाया जाये तो वे क्रोधित होकर प्राणलेवा बन जाते हैं। हे राजन! अमृत के समान साम के रस का पान करने वाला देवों द्वारा भी वंदनीय होता है। इसके बाद युवराज सुवर्णनाभ जोशीले शब्दों में बोला।

(7)

दुष्ट व्यक्ति के साथ साम नीति का पालन कैसे संभव है? दूसरों की वृद्धि देखकर ईर्ष्या करने वालों के साथ साम कैसा? साम का प्रयोग उसके योग्य व्यक्ति के साथ ही किया जा सकता है। वज्र से तोड़ने योग्य पहाड़ पर लोहे का हथियार काम नहीं कर सकता। तप्त लोहे पर शीतल जल डाला जायेगा तो वह और उद्दीप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो जायेगा। दुष्ट का भी यही स्वभाव होता है। जिसने सारे गांव को भयकंपित कर दिया है। ऐसे सिंह के साथ साम का व्यवहार कैसा ? गुरु व्रती जैसे व्यक्तियों के साथ तो विनय वृत्ति ठीक है पर दुष्ट के साथ उसका प्रयोग विपरीत ही होगा। यह सुनकर पुरुभूति मन्त्री (अन्यत्र भवभूति मन्त्री) पुनः बोला— राजन ! यदि युद्ध करना है तो पहले गुप्तचरों के माध्यम से उसकी स्थिति का पता लगा लेना चाहिए। बिना गुप्तचरों से उसकी वास्तविक शक्ति आदि का पता लगाये युद्ध करना उचित नहीं होगा। पुरुभूति की बात सुनकर पद्मनाभ ने कहा—हाँ, पुरुभूति का का कथन ठीक है। गुप्तचरों से उसके बल का पता लगाया जाय। पश्चात् युद्ध के विषय में निश्चय किया जाये। इस तरह मन्त्रणाकर गुप्तचरों का उपयोग कर पृथ्वीपाल के बल की स्थिति को समझा और फिर सामन्तों तथा मित्र राजाओं के साथ पृथ्वीपाल से युद्ध करने का निश्चय कर लिया।

(8–9)

राजा ने नगर में युद्ध भेरी बजवा दी और शुभ दिवस में युद्ध करने चल पड़ा, मानो शत्रु के लिए प्रलय-काल ही हो। लोग हाथी पर सवार राजा की वंदना करते चले जा रहे थे। उसकी गज, अश्व, रथ और पदाति सेना ने चारों ओर धूम मचा दी। घोड़ों की टापों से उत्थित धूलि से आकाश आच्छादित हो गया। डिण्डिम की आवाज सुनकर लोग रास्ते से हटते चले जा रहे थे। राजा पद्मनाभ की शोभा देखने के लिए लोग कौतूहलवश अपने घरों से निकल पड़े। जिस मार्ग से लोग चल रहे थे उस पर कोलाहल बढ़ रहा था जिसे सुनकर कुछ लोग भयभीत हो रहे थे। हाथी को देखकर ऊंट डर गया और बोझ गिराकर ऐसा भागा कि लोग ठहाका मार कर हंसने लगे। हाथी की सूंड से निकले 'फू' शब्द को सुनकर बैल डर गये और उनके भागने से गाड़ियां टूट गईं जिनमें रखा हुआ सामान गिर गया। एक ग्वालिन इतनी घबड़ा गई कि उसके सिर पर रखा दही का घड़ा गिर गया। कुछ समय वह शोक करती रही, बाद में लौट कर अपने घर चली गई। 'हटो, रास्ता छोड़ो' की आवाज से लोग भयभीत-से हो रहे थे। इस तरह राजा ने सेना के साथ नगर से प्रयाण किया और जलवाहिनी नदी के किनारे पहुंचा।

(10–11)

इसके बाद राजा पद्मनाभ मणिकूर नामक पर्वत पर पहुंचा और वहाँ सेना को ठहरा दिया। उस पर्वत की गुफाओं में देवलोग अपनी देवियों के साथ क्रीडा करते थे। मेघ उन गुफाओं में सूर्य-चन्द्र की किरणों को जाने से रोक देते थे पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्युत्प्रभा से उन देवियों की मुख-श्री अंधकार में भी दिख जाती थी। मेघ पर्वत के चारों ओर संचरण करते थे जिससे वन-विचरण रोमांचक हो रहा था। कहीं साधु भूमितल पर लोट रहे थे, कहीं प्रकृति की शोभा से पर्वत की शोभा द्विगुणित हो रही थी। इतने सुंदर पर्वत पर सामन्तों ने भी डेरा डाल लिया। इस बीच सूर्यास्त हो गया। इसके बाद उनमें रंगरेलियां प्रारंभ हो गई। जोड़े बाहुबद्ध हो गये। किसी ने सप्तकर्ण पुष्प को तोड़कर उसे प्रिया का कुण्डल बना दिया, किसी ने मदजल से प्रिया को शीतल किया। इस तरह विविध कामकेलिआं करते हुए रात बीत गई ॥10–11॥

(12)

प्रात:काल हुआ और सूर्य ने अपना प्रकाश फैलाया। सैनिकों ने अपने बाहुदण्ड पसारे। युद्ध की तैयारी प्रारंभ हो गई। युद्ध के उत्साह में किसी का शरीर रोमांचित हो गया और फलतः दूसरा कवच फैल गया। किसी ने शिर में वीरपट बांधा वह ऐसा लगा मानो शत्रु के शिर में रक्तघट बांध रहा हो। किसी के नेत्र शत्रुओं के प्रति क्रोध से लाल हो रहे थे जिससे उसका कवच भी लाल दिखने लगा। कोई संग्राम में पृथ्वीपाल के प्राण हरण की प्रतिज्ञा कर रहा था। इस तरह योद्धा संग्राम में जाने की तैयारी करने लगे। उस समय ऐसा लग रहा था जैसे शत्रु पृथ्वीपाल का मृत्यु-काल आ गया है ॥12॥

(13)

राजा पद्मनाभ रणभेरी बजवाकर युद्ध के लिए चल पड़ा मानों समुद्र के लिए क्षुब्ध कर दिया हो। काक, खर, उलूक आदि पक्षी वायें होकर मधुरवाणी का उच्चारण करने लगे। हाथी मदोन्मत्त हो गये। सारंग, नकुल दायीं ओर से चलने लगे। वायु का प्रवाह अनुकूल हो गया। राजा की दायीं भुजा फड़कने लगी। पद्मनाभ के लिए ये शत्रु शकुन थे। पद्मनाभ की यह तैयारी सुनकर पृथ्वीपाल भी युद्ध के लिए निकल पड़ा। उसके निकलते ही सांप रास्ता काट गया, हाथ से तलवार गिर पड़ी, वायां हाथ फड़क उठा, बार-बार छींकें आने लगीं, आग लग गई। पृथ्वीपाल के क्रोध ने इन अपशकुनों की अवमानना कर सेना को आगे बढ़ने के आदेश दिये और वह पद्मनाभ की छावनी के पास अपनी सेना के साथ पहुंच गया। तूर बज उठे। योद्धा इधर-उधर दौड़ पड़े। ऐसा लगा जैसे प्रलय आ गया हो और दो समुद्र भिड़ गये हों ॥13॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(14–15)

धूलि से सारा गगन आच्छादित हो गया मानों काल-रात्रि आ गई हो और सूर्य नष्ट हो गया हो। धनुष की टंकार से युद्ध का पता चलता था। घोड़े हिनहिना रहे थे, हाथी चिंघाड़ रहे थे, रथचक्र चिक्कार रहे थे, योद्धा एक दूसरे के बल को तौल रहे थे, आकाश बाणों से अच्छादित हो गया, सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ गया, योद्धा परस्पर वचन-युद्ध कर रहे थे, कोई अपने कृपाण से शत्रु का शिर काट रहा था, किसी का शिर कृपाण से कट जाने पर ऊपर उछलता जिसे धरती पर गिरने के पूर्व ही पक्षी कुतर डालते थे। कोई स्वामी का कार्य मानकर दांया हाथ कट जाने पर बायें हाथ से शत्रु के शिर को काट रहा था। योद्धा अस्त्रों के समाप्त हो जाने पर हाथों-पैरों से युद्ध करते थे। इस प्रकार दोनों सेनाएँ युद्ध में जुटी-हुई थीं ॥14–15॥

(16)

दुर्धर बाण वर्षा जब योद्धा मरने लगे तो पृथ्वीपाल विषधर के समान आगे बढ़ा। वह प्रतिपक्षी योद्धाओं को समाप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ था। यह देख पद्मनाभ भी अपने हाथी पर सवार होकर उसकी ओर बढ़ा। दोनों में घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। पृथ्वीपाल कोपाविष्ट होकर निश्वास छोड़कर पद्मनाभ से कहता है कि मैं अभी अपने बाणों से तुम्हारा दर्प चूर-चूर किये देता हूं। पद्मनाभ ने कहा-क्यों व्यर्थ में प्रलाप कर रहे हो। तुम्हारी सेना तो पहले ही बहुत कुछ समाप्त हो गई। अब तुम क्या करोगे मैं अभी तुम्हें मृत्यु लोक में पहुंचाता हूं। यह सुनकर पृथ्वीपाल राजा प्रलयकाल जैसा युद्ध में जुट गया। परन्तु पद्मनाभ ने उसकी बाण वर्षा को निष्फल कर दिया। दोनों योद्धा गिरिवर के समान थे। उनका अपरिमाण बल था। दोनों समुद्र के समान गंभीर थे, योद्धा था। दोनों के लिए विजयश्री मानों कुछ अन्तर से खड़ी हुई थे। तब पद्मनाभ ने धनुष को सम्हाला और क्रोधानल से दग्ध होते हुए पृथ्वीपाल की ओर बढ़ा। पृथ्वीपाल के बाण लक्ष्य तक पहुंचने के पहले ही पद्मनाभ उन्हें बीच में ही अर्ध चन्द्राकार बाणों से काट डालता था ॥16॥

(17)

पद्मनाभ ने बाणवर्षा से पृथ्वीपाल को अधिक समय तक नहीं टिकने दिया पृथ्वीपाल ने बाद में चक्र, शक्ति और परशु का भी उपयोग किया जिन्हें पद्मनाभ ने क्रमशः मुद्गर, गदा तथा वज्रमुष्टि का प्रयोग कर उन्हें निरस्त्र कर दिया। बाद में पद्मनाभ ने अपने चक्र से पृथ्वीपाल का शिर काट दिया। फलतः विजयश्री पद्मनाभ के हाथ लगी। पृथ्वीपाल का पतन देखकर उसकी सेना भाग खड़ी हुई। जय दुन्दुभी बज उठी। मृत योद्धाओं का दाह संस्कार किया गया। बाद में किसी सेवक ने पृथ्वीपाल का कटा शिर पद्मनाभ के सामने रख दिया जिसे देखकर उसके मन में वैराग्य पैदा हो गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वह सोचने लगा कि मोह कितना प्रबल रहता है। यह शरीर मल-मूत्र जैसे अशुचि तत्वों का घर है फिर भी व्यक्ति उसमें आसक्त रहता है। बाणों की वर्षा से प्रतिपक्षी का मस्तक काट देता है। जो हाथी पर सवार होकर युद्ध करने निकलते हैं वे रणस्थल में ही मार दिये जाते हैं ॥17॥

(18)

आज जिसे मैंने क्रोध से मार डाला अगले जन्म में वह मुझे मारेगा। इन चर्मचक्षुओं के विषयों से कौन बंधना चाहेगा जो जन्म-जन्मान्तर तक नरक के दुःखों का कारण बनें। कोप से ही हमने पापकर्म संचित किये और कोप से ही सारा धर्म नष्ट किया। कोप के कारण ही हमने गुण नष्ट किये। कोप से ही चारों वर्गों का क्षय हुआ, कोप से ही चिरकाल से किया गया तप समाप्त हो गया। कोप से ही लोग अपनी कीर्ति ध्वस्त कर देते हैं, नारी के समान धैर्य खो देते हैं, विवेक विलीन हो जाता है, आसन से पतन हो जाताहै , स्नेह-बन्धन टूट जाता है, संपत्ति नष्ट हो जाती है, कोप हर तरह की निन्दा का कारण बनता है, कोप से ही गुण धूल में मिल जाते हैं, व्यक्ति आत्मघात कर लेता है, निगोद में जन्म ग्रहण करता है, कोप के समान और कोई दूसरा भीषण शत्रु नहीं है। कोपाग्नि से प्रदीप्त व्यक्ति शम, दम से दूर हटकर कृष्णलेश्या के रंग में रंग जाता है, स्वयं दुःख भोगता है, कभी सुख नहीं पाता और विषय कषायों में बंधा रहता है ॥18।

(19)

मान कषाय एक पिशाच है जो कहीं नमता नहीं भले ही शूल पर चढ़ना पसन्द कर लेगा। मानी व्यक्ति स्वयं निर्गुण रहते हुए भी गुणवानों की निन्दा करेगा, स्वयं पापी रहते हुए भी महान लोगों के पापों को खोजता रहेगा। उन पर रोष व्यक्त कर स्वयं को गुणवन्त मानेगा। यानी किसी से भी शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता। वह वस्तुतः लोक में उपहास का पात्र बन जाता है। मानियों के गुण नष्ट हो जाते हैं और मित्र भी शत्रु बन जाते हैं अथवा घर भी नरक बन जाता है, सभी के अनादर का कारण बनते हैं। मान पाप की वेल है, क्रोध का कारण है, सभी के हृदय का सूल है, मिथ्यात्व का बीज है, माया सर्पिणी है, दंभ का कारण है, जिसके हृदय में वह रहेगी उसे नष्ट कर देगी और उसके धर्म का शुभ फल भी समाप्त हो जायेगा ॥19॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(20)

माया शीलव्रत का पाश है, दुष्कृत कर्मों का घर है, दुःख जनक है, गुण रूपी पर्वत के लिये वज्राघात है, संसार समुद्र रूपी सर्प का अमृतग्रास है, दुष्कीर्ति का जनक है, तिर्यञ्च गति का मार्ग है, यश-वल्ली के लिए कृपाण स्वरूप है, शुभ गति के लिए किवाड़ है। मानी प्रथमतः स्वयं की वञ्चना करता है। बाद में बांधव, प्रियजनों व माता-पिता की वंचना करता है। वह दोषों का पिण्ड है, अशुचि का घर है, गूढ स्वभावी होता है, नीरस होता है, सुधर्म को छोड़ने वाला होता है। इसी तरह लोभ भी मोह का विस्तारक है, हम जैसे लोगों को संसार बांधने वाला है, संसार-सागर में गिराने वाला है, बहु दुःख देने वाला है ॥20॥

(21)

लोभ सकल कुकर्मों का निधान है, पापों की उत्पत्ति का कारण है, सभी दोषों का घर है, अविरति रूपी पहाड़ी नदी के लिए मेघ है, कुमुदों के लिए सूर्य है, दुर्भाग्य का जनक है, अपाप का कारण है, लज्जा और चातुर्य का विनाशक है, माया का स्थान है, भोगेच्छाओं का वर्धक है, नरक का मार्ग है। इस प्रकार इन मूल कषायों से प्रमाद उत्पन्न हुआ जिससे हम चतुर्गतियों में भ्रमण करते रहे। इसलिए अब सांसारिक सुखों को छोड़कर जिनेन्द्र द्वारा प्रोक्त तप और आचरण का पालन करना चाहिए ॥21॥

(22)

इस प्रकार राजा पद्मनाभ ने संसार की दुर्दशा पर विचार कर युवराज **सुवर्णनाभ** को बुलाया और उसे राज्याभिषिक्त कर दिया। साथ ही पृथ्वीपाल के शोकाकुल पुत्र धर्मपाल को उसी के राज्य पर प्रतिष्ठित कर यह कहा कि अब तुम सुवर्णनाभ की आज्ञा का पालन करते रहो। चरणों में झुके हुए शोकाकुल सामन्तों को भी घर जाने की अनुमति दी और स्वयं जहां श्रीधर मुनिराज थे वहां पहुंचे। तपोतेज से उनका शरीर दीप्त था, कर्म रूपी सुभट के निर्दलन में अद्भुत वीर थे, संसार-समुद्र के लिए मानों अगस्त्य ऋषि थे, गुण-श्रेणी पर आरूढ़ थे, निर्मल शील के आवास रूप थे, भोगों को अनिष्टकारी मानकर उन्होंने उन्हें छोड़ दिया था, सुर मंदिर के मूलदेव थे, क्षान्ति संपन्न थे, मोह-शत्रु को नष्ट करने में जुटे हुए थे, मिथ्यात्व रूपी भयंकर वन को पार करने वाले थे, प्रत्यक्ष रूप में शुद्ध ज्ञानी थे। ऐसे उन ज्ञानी-ध्यानी श्रीधर महाराज के चरणों में प्रणाम कर नतमस्तक होकर राजा पद्मनाभ ने कहा—हे मुनिवर। मेरे कर्म-मल का विनाश कीजिए ॥22॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(23)

आप प्राणियों को शिव-सुख प्रदाता हैं, दुःख रूपी दावानल के विनाशक हैं, संसार से भयभीत रहने वाले लोगों के लिए अकारण बंधु हैं, पाप-लिप्त लोगों के लिए निर्मल सागर हैं, चिंतामणियों में चिंतामणि हैं, कामधेनुओं में कामधेनु हैं, कल्पवृक्षों में कल्पवृक्ष हैं, मनोरथों का फल देने वाले हैं, संसार रूप कानन में अमृत कुण्ड हैं, गुणरत्नों के रत्नाकर हैं, चिंता-तृण के लिए प्रलयाग्नि हैं, ज्ञान-लक्ष्मी संपन्न हैं, आशा-कील को निकाल फेंकने वाले हैं, मान विरहित हैं, इच्छा रहित हैं। लोगों को आपका पादमूल मिला है पर आप जंगल में रहते हैं। आप करुणार्द्र हैं। इसलिए आप कृपया मुझे जिनदीक्षा प्रदान कीजिए। इस प्रकार कहकर रहस्य को प्रकाशित कर राजा ने केश लुञ्चन किया और जिनदीक्षा ले ली ॥23॥

(24)

वस्त्रालंकरण उतार कर जिनदीक्षा ग्रहण करते ही पद्मनाभ को तीर्थंकर नामकर्म का बंध हो गया। उन्होंने सोलह कारण भावनाएँ भाना प्रारंभ किया–(1) शंका आदि पच्चीस दोषों से विरहित सम्यक्त्व की विशुद्धि दर्शन विशुद्धि है। (2) गुरु, तप, परमागम के विषय में विनय रखना विनयसम्पन्नता है, (3) अहिंसा आदि व्रतों और क्रोध आदि परित्याग रूप शीलों को निरतिचार पूर्वक पालन करना शीलव्रतानतिचार है। (4) निरन्तर ज्ञानाभ्यास करना अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है। (5) संसार के घनघोर दुःखों से भयभीत होना संवेग है। (6) अभयदान आदि प्रमुख दानों का यथाशक्ति दान करना शक्तितस्त्याग है। (7) यथाशक्ति बारह व्रतों का तप करना, जीवों की रक्षा करना शक्तितस्तप है। (8) रत्नत्रय की रक्षा करना साधु समाधि है।(9) गुणी पुरुषों की सेवा-सुषश्रूा करना वैयावृत्य है, (10–13) अरिहंतों, आचार्यों, बहुश्रुत विद्वानों अर्थात उपाध्याय परमेष्ठियों तथा श्रुत-प्रवचन के विषय में वात्सल्य रखना, अर्हंद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुत भक्ति और प्रवचन भक्ति है। (14) अप्रमादी होकर षडावश्यक क्रियाओं का पालन करना आवश्यका-परिहाणि है। (15) ज्ञान और तप आदि विविध गुणों के कारणों से सन्मार्ग की प्रभावना करना मार्गप्रभावना है। (16) सधर्मा से स्नेह रखना प्रवचन वात्सल्य है। इस प्रकार सोलह कारण भावनाओं को भाते हुए पद्मनाभ ने तीर्थंकर प्रकृति कर्म का बंध कर लिया ॥24॥

(25–26)

इस प्रकार पद्मनाभ ने दुर्धर तप किया, इन्द्रियबल से कर्म निर्जरा की, हृदय से शल्य को निकाल फेंका, मोह रूपी महाभट को जीता, क्रोधादि कषायों का विनाश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया, आर्त-रौद्रध्यान से मुक्त होकर शुक्लध्यान को मन में स्थिर किया, कठोर परिषहों को सहा, अपने संघ से क्षमापना की, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और तप की आराधना की, गुरु द्वारा प्रदत्त शिक्षा को मन में धारण किया, सांसारिक दुःखों से उन्मुक्त हुआ, अपनी अन्तरंग-शिला पर अर्हन्त अक्षरों को उकेरा, शुद्ध स्वरूप का आचरण किया, कल्पश्रुत का भावन किया, शुद्धात्म रसायन को प्रसृत किया, शिव सुख की छाया रूप फल को धारण किया और निश्चल पण्डित मरण से मरण प्राप्त किया। इस प्रकार राजा शुभयोग प्राप्त कर, पापों से मुक्त होकर अनुत्तर वैजयन्त नामक स्वर्ग चले गये। सोलह स्वर्ग, नवग्रैवेयक और नव अनुदिशों के ऊपर पांच अनुत्तर विमान हैं। वैजयन्त उन्हीं में से एक है जिसे पद्मनाभ ने प्राप्त किया। वहां पद्मनाभ ने निरुपम तेजस्विता को प्राप्त किया, निरुपम देवावधि को प्राप्त किया, निरुपम सांसारिक सुखों को पूर्ण किया, निरुपम शुक्ल-लेश्या को प्राप्त किया, और उपशान्तभाव पाया, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया, और अहमिन्द्र हुआ। उसकी आयु तेतीस सागर प्रमाण थी। पुण्य कर्मों के प्रताप से दिव्य भोगों को भोगने लगा और संतोषामृत रस में मज्जन करने लगा ॥25–26॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सप्तम संधि

(1–2)

चंद्रप्रभ स्वामी के पूर्वभव का वर्णन करने के बाद अब उनके गर्भादिक कल्याणकों का निरूपण किया जावेगा। भरत क्षेत्र जहां गंगा, सिन्धु जैसी पवित्र जलवाली नदियां हैं, में एक सर्वोत्तम पूर्वदेश है। वहां धान्य और इक्षु के खेतों से समीर सुरभित हो रहा है, जिसके पर्वतों के नीचे सुन्दर खेत लहलहा रहे हैं, गोपाल बालक गीत गा रहे हैं, स्वर्ग के समान वह शोभा से आपूर है, सुन्दर ग्रामों और नगरों से भरपूर है, सुखों का घर है, जहां दुःखों का उपशमन हो गया है, जहां के भव्य जीव समवशरण में पहुंचते हैं, दुखदायी कर्मों का उपशमन करने के लिए जिनोक्त चर्चा का आचरण करते हैं, जिनराज के चरणों में जाते हैं, जो संसार रूपी वल्ली के लिए कठोर किवाड़ है, जहां धर्म रूपी पुरुष के लिए सुरभित वसंत खिला है, रोग, शोकादि के विनाश के उपक्रम चलते- रहते हैं, सभी प्रकार के सुख विद्यमान हैं उस देश में चन्दपुरी नामक मनोहर नगरी है ।।1–2।।

(3–4)

वहां के खेतों में धान्य की मनोहारी फसल होती है, समुद्र के बहाने परिखा विद्यमान है, जो पद्मराज मणियों का घर है, जहां के उच्च प्रासादों में सूर्य भी अपना मार्ग खोजता है, जहां के रत्नों से बने घरों के शिखरों से नभ-मण्डल आच्छादित हो गया है, जहां चन्द्रकान्त मणियों के कारण घरों में रात्रि में पूर आ जाता है, जहां नीलमणियों के शिखरों से निकलने वाली किरणों के कारण गंगा नदी का जल भी नीला दिखाई देने लगा है, जहां के रत्नगेहों के दीर्घ शिखरों से स्वर्ग भी उद्भासित हो गया है, जो भोग-भूमि के सुखों से व्याप्त है, धर्म-अर्थ-काम का निधान है, अनुपम भवसुखों का स्थान है, हेमगिरि को भी लज्जित करने वाला है, जिसके गर्भ में अमृत कुण्ड भरे पड़े हैं, जो कल्पवृक्षों का घर है, चन्द्र-सूर्य की शोभा को भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिरस्कृत करने वाला है ऐसे उस मनोहर चन्द्रपुरी नगरी में महासेन नामक राजा राज्य करता था ॥3–4॥

(5–6)

वह प्रतापी ग्रौर यशस्वी था । जयश्री उसके बाहुदण्ड में निवास करती थी, राजा उसके चरणों में नतमस्तक था, कृपाण नीलोत्पल का मानों खण्ड था, विविध ग्राभूषणों से उसका शरीर सुसज्जित था, प्रतिपक्षी निर्बल हो चुके थे, शरीर की कान्ति लावण्यभरी थी, दैत्य भी उससे दूर रहा करते थे, मंगल भी उसकी सेवा करता था, महिमा भी उसकी छाया में रहकर ग्रपने को कृतकृत्य मानती थी, कल्याण भी उसकी संगति में रहने की इच्छा करता था, सुख भी उसके मन के रंग की इच्छा करता था, ग्राशीर्वाद भी उसकी सेवा की ग्रभिलाषा करता था, वरदान भी उसे 'देवदेव' कहकर पुकारता था, सुदास भी दासता को प्राप्त करता था, गुणगौरव भी चेटभक्त बन गया था, लक्ष्मी भी उसकी लक्ष्मी से शोभित होती थी, श्रुतदेवी भी उससे शिक्षा लेती थी, विवेक, सत्य, उदारता, सिद्धि, बुद्धि, ज्ञान, ध्यान, शक्ति ग्रादि गुणों ने उसी के ग्राश्रय से वास्तविकता पाई थी । रूप, बल ग्रौर शील में भी वह राजा बेजोड़ था ॥5–6॥

(7—8)

राजा महासेन की **लक्ष्मणा** नाम की पट्टरानी थी जो गुण, शील ग्रौर रूप में ग्रनुपम थी । जैसे धनुष की सुषमा श्रेष्ठ बांस से होती है वैसे ही वह श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न हुई थी, उसके गुणों में कभी वक्रता नहीं थी, मुनि की वाणी के समान उसकी वाणी सुन्दर वर्णों से युक्त थी, सुन्दर वर्ण-रंग से मुक्त थी, बहु गुणों की लीला मंदिर थी, कंदर्प का दर्प भी वहां बंध गया था, लावण्य का समुद्र था, तारुण्य ने वहां परम सिद्धि पाई थी, रूप ने वहां परम रिद्धि प्राप्त की थी, ग्रनुराग ने पट्टबंध बांधा था, । उसमें मलय का सौरभ ग्रौर चन्द्र का ग्रमृत था, हेम की किरणों से वह उज्ज्वल थी, लावण्य में वह चन्द्र ग्रौर कमल से भी ग्रागे थी, गंभीरता में सागर जैसी थी, हंस जैसी ग्रलस चाल थी, मुनिनाथ जैसा निर्मल शील था, करि कुंभ के समान पृथुल स्तन थे, कंदर्प के बाणों के लिए सुंदर ग्रायास रूप था, सारे रसों का सार थी । ब्रह्मा ने इतना ग्रच्छा रूप बनाया कि सारे उपमान ग्रपना स्वरूप छोड़ चुके थे । उसका रूप ग्रनुपम था ॥7–8॥

(9–10)

दोनों, महासेन ग्रौर लक्ष्मणा स्नेहसिक्त होकर धर्म, ग्रर्थ काम का उपयोग करते रहे । पुण्य के प्रताप से इन्द्र की प्रेरणा से उनके घर कुबेर ने छह माह तक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिदिन बारह करोड़ निर्मल रत्नों की । वर्षा की पुण्य के प्रभाव से क्या नहीं होता ? रत्नाकर भी जलविरहित-सा दिखने लगा । महासेन को बड़ा आश्चर्य हुआ । इसी बीच आकाश से एक दिव्य तेज पृथ्वी पर गिरता हुआ दिखाई दिया । राजा के मन में अनेक वितर्क उठे । क्या कोई पुष्पयन्त्र तो नहीं आ गया, सूर्य से कुछ गिरा तो नहीं, दिन में तारा तो नहीं स्फुटित हुआ, कोई विद्युतपात तो नहीं हुआ ? इस प्रकार से राजा के मन में विविध संशय उठ खड़े हुए । धीरे धीरे यह स्पष्ट होने लगा । अप्सराएं आयीं । उनके स्थूल स्तनों का भार कम था । मुंह की सुगन्ध से आकृष्ट होकर भ्रमर दौड़ने लगे । मंदारमाला मकरन्द से लिप्त हो गई । हरि चंदन से दशों दिशाएं सुरभित हो गईं । सारा नगर दिव्य कुसुमों की गंध से सुवासित हो गया । नूपुर बनने लगे । श्री, कांति, कीर्ति, धृति, बुद्धि, आदि लक्ष्मियां प्रगट हुईं, अपने अपने बाहनों से देव लोग आये, शक्र आया और राजा की जय जयकार की । इन्द्र की आज्ञा से आठों दिक्कुमारियाँ महासेन नरेश के अन्तःपुर में पहुंची । राजा ने पूछा-तुम लोगों ने स्वर्ग से धरा पर क्यों अवतरण किया ? ।।9–10।।

(11)

उत्तर में उन्होंने कहा-हे राजन् ! आप धन्य हैं । आपके घर अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ जन्म ले रहे हैं । इसीलिए छह माह से रत्नों की वर्षा हो रही है । यहां रहकर हम लोग महारानी की सेवा करेंगे और गर्भ की सुरक्षा रखेंगे । फिर वे महारानी के पास पहुंची । वहां देखा कि बहुत-सी राजमहिषी उनकी शुश्रूषा कर रही हैं । महारानी लक्ष्मणा का रूप देखकर उन्होंने अपना रूपमद छोड़ दिया । इतना सौन्दर्य उन्होंने कभी देखा नहीं था । महारानी के सौन्दर्य को देखकर इन्द्राणी भी दासी हो जायेगी । उसके सामने चन्द्रबिम्ब, अमृतकुण्ड, मदनदर्प, कमल खण्ड आदि की कोई गणना नहीं । रति विलास, चंदन, कुसुमवास, स्वर्ग सुख आदि का भी कोई महत्व नहीं ।।11।।

(12–13)

अपने आगमन का कारण बताकर दिक्कुमारियां महारानी की प्रारम्भिक सेवा में जुट गईं । कोई क्षीरोदधि से जल लाकर स्नान कराने लगी, कोई सुर चन्दन लगाने लगी और सुगंधित तेल से मालिस करने लगी । किसी ने अंगलेप किया, किसी ने पारिजात मंदारमाला को शिर में बांधा, किसी ने हार पहनाया, किसी ने किरीट लगाया, किसी ने केयूर पहनाया, और किसी ने कुण्डल पहनाये, किसी ने नूपुर और मुद्रिका पहनाई, किसी ने अन्य आभरण पहनाये, किसी ने वस्त्र पहनाये, किसी ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अगरु धूप दी, कोई भोजन व्यंजन ले आया, कोई दण्ड लेकर प्रतिहारी बनी, किसी ने महारानी के शिर पर धवल छत्र लगाया, किसी ने चमर डुराये, किसी ने उपानह पहनाये, कोई अंगरक्षक बनी, कोई नाचने-गाने लगीं, किसी ने चाटुकारिता की, किसी ने मंडल रास किया, किसी ने छह भाषाओं में काव्य किया, किसी ने इन्द्रजाल दिखाया, किसी ने देवी के शरीर का संवाहन किया। इस प्रकार अनेक रूप से देवियों ने जिनमाता की सेवा की और गर्भ-शोधन किया ॥12–13॥

(14)

इसके बाद लक्ष्मणा देवी निश्चिंत होकर सो गई। रात्रि के पिछले भाग में उसने सोलह स्वप्न देखे–(1) उन्नत शुभ्र ऐरावत हाथी, (2) गर्जना करता हुआ श्रेष्ठ बैल, (3) गजराजों के झुण्ड को भगाता हुआ सिंह, (4) हाथ में लीला कमल लिए लक्ष्मी, (4) दो मंदार मालाएँ जिनके आसयास भौंरें गूंजार रहे थे, (6) सघन ज्योत्सना से युक्त पूर्णमासी का चन्द्रमा, (7) अपने प्रकाश से सारी दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ सूर्य, (8) एक दूसरे से किलोल करता हुआ मीना युगल, (9) कमलों से ढके हुए और जल से भरे हुए दो मंगल कलश, (10) जल में लहलहाते हुए सफेद कमलों से अलंकृत सरोवर, (11) आकाश को छूने वाली उत्ताल तरंगों से युक्त समुद्र, (12) सिंहों पर आश्रित सिंहासन, (13) देवों से सेवित दिव्य विमान, (14) नाग कन्याओं से सुन्दर नागभवन, (15) फैलते हुए तेजोमण्डल से युक्त रत्नराशि, और (16) धूमरहित होने से उज्ज्वल अग्नि। इन सोलह स्वप्नों को देखने के बाद जाग जाने पर उसने इन स्वप्नों का फल जानना चाहा ॥14॥

(15)

इसके बाद प्रभातकालीन नित्यकर्म करके और अन्य साधु धर्म संपादित करके शीघ्र ही अपने पतिदेव महासेन के पास पहुंची और स्वप्न बताये। राजा ने उन्हें सुनकर उनका फल बताया। हे देवी! ऐरावत हाथी तेरे पुत्र को तीनों लोकों में मुख्य बतला रहा है, बैल उसे गम्भीर, सिंह जैसा महान् पराक्रमी निर्भय और तेज संपन्न, और लक्ष्मी-इन्द्रों द्वारा अभिषेक करने योग्य सूचित कर रहा है, दो मालाओं को देखने से वह अनन्त कीर्ति वाला होगा, चन्द्रमा देखने से प्रजा की तृप्तिका हेतु, सूर्य देखने से मोह रूप अंधकार को मिटाने वाला और मत्स्य युगल को देखने से वह सभी प्रकार के शोक से मुक्त होगा अर्थात् मुक्ति पायेगा, कलश देखने से उसके दिव्य देह में शुभलक्षण होंगे, सरोवर देखने से तृष्णा रूपी अग्नि को शान्त करने वाला होगा समुद्र देखने से विमल ज्ञान धारी होगा, अर्थात् केवली होगा। और स्वर्ण सिंहासन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखने से मुक्ति पाने वाला होगा, देवों का विमान देखनेसे वह स्वर्ग से अवतरित होगा, नाग भवन देखने से धर्म तीर्थ का प्रवर्तक होगा, रत्नों की राशि देखने से समस्त गुणों का क्रीड़ापर्वत होगा और अग्नि देखने से उग्र कर्मों के जंगल को जलाने वाला होगा। तुम्हारे पुण्य के प्रताप से शक्र भी दास हो जायेगा। लक्ष्मणा स्वप्नों के फल को सुनकर रोमांचित हो गई ।।15।।

(16)

इसके पश्चात् आयु के समाप्त होते ही उस अहमिन्द्र ने वैजयन्त नामक अनुत्तर विमान से अवतरित होकर चैत्र मास के कृष्ण पक्ष के पंचमी दिन को लक्ष्मणा के गर्भ में प्रवेश किया। ऐसा लगा जैसे चन्द्र ने जल में प्रवेश किया हो या जल-विन्दु ने सीप में प्रवेश किया हो, चन्द्र सरोवर में प्रतिविम्वित हो रहा हो, कमल दल तल पर खड़ा हो, सिद्ध-बुद्ध होकर मोक्ष में प्रवेश किया हो, परमात्मा को अपने अन्तरात्मा में छिपाया हो, सिद्धत्व को आत्मा में संजोया हो, जिनागम में द्रव्यज्ञान रखा हो, सम्यक् चारित्र में परम धर्मोदय हुआ हो, मुणिगणों के मुख में सत्य वचन निहित हो, व्यक्ति में सज्जनता प्रतिपन्न हुई हो, धर्मात्मा में सुख प्रतिष्ठित हुआ हो, गुणी-दानी में कीर्ति का प्रसार हुआ हो। भगवान सुख पूर्वक यथासमय तक गर्भ में रहे। देवों ने दुन्दुभि वजाई, सारे त्रिभुवन में उसकी आवाज पहुंची, देवगण हर्षित हुए और अपने अपने परिवार के साथ नगर की ओर उन्होंने प्रस्थान किया ।।16।।

(17)

- कल्पामर के चौबीस इन्द्र, व्यंतरों के वतीस स्वामी, भवनवासी देवों के चालीस इन्द्र, ज्योतिषी देवों के रवि-चन्द्र, ये सभी अपने-अपने वाहनों से भगवान के दर्शन करने हर्ष विभोर होते हुए आये। कोड़ाकोड़ी अप्सराएँ अपनी ऋद्धि सहित आयीं, वैक्रियक देव आये, बारह करोड़ तूरों के शब्द फैले, गंधोदक और पुष्पों की वृद्धि हुई। सभी देवों ने आकर तीन प्रदक्षिणा की, लक्ष्मणा देवी की चरण वंदना की, रत्नों से पूजा की, संस्तुति की। महासेन की भी हाथ जोड़कर स्तुति की। और कहा कि आप दोनों ही त्रिलोक के शोकापहारी हैं, अपने ही संसारियों के लिए नरक का द्वार बंद कर दिया है। इत्यादि प्रकार से उनकी स्तुति कर गर्भस्थित जिन की स्तुति की और हर्षित होते, नाचते, पुलकित होते हुए सुरलोक को वापिस चले गये ।।17।।

— —

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अष्टम संधि

(1–2)

जैसे-जैसे भगवान का देह परिपूर्ण होता गया वैसे-वैसे नयी किरणों ने घर में प्रवेश किया। देवी लक्ष्मणा फलों से घटित होती रही, निर्मल पुण्य कार्यों से परिचारित रही, गर्भ की धवल किरणों से कलित हुई। उसके उदर की त्रिवलियां भग्न हो गई। कर्म के साथ उसके स्तन-युगल भी कृश हो गये, मोह के साथ उद्यम मन्द हो गया, क्रोध के साथ चरण कंपित होने लगे अर्थात् भारी हो गये, मान के साथ स्वर क्षीण हो गया, संसार के साथ भोजन की मात्रा भी कम हो गई, कर्म के साथ व्यसन नष्ट हो गया. निद्रा के साथ त्रिजग का पुण्य आ गया, धर्म के साथ स्तनभाग ऊंचे हो गये, लोक के साथ अंग निर्मल हो गये, अंग के साथ सारा संसार निर्मल हो गया। इस प्रकार वह लक्ष्मणा गर्भालस लिए जिन पद की पूजा करती रही और शक्तितः धर्म पालन करती रही। उसे दोहद भाव उत्पन्न हुआ। क्षीरोदधि के जल से उसे देवियों ने नहलाया, देवों ने प्रणाम किया। त्रिभुवन को उज्ज्वलित करने की उसकी अभिलाषा हुई। उसे लगा जैसे उसने कर्मभार को कम कर दिया हो, कामबाण को छोड़ दिया हो और पंच ज्ञानों में अवगाहन किया हो। लक्ष्मणा ने जो भी मनोरथ किया, सुरपति ने उसकी पूर्ति की। वह भी जिनभक्ति पूर्वक समय यापन करने लगी ॥1–2॥

(3–4)

नव माह व्यतीत होने के बाद पौष-कृष्णा एकादशी के दिन देवी लक्ष्मणा ने शुभ लक्षण संपन्न धवल वर्ण वाले बालक को जन्म दिया। वह बालक समचतुरस्र संस्थान से युक्त था, प्रथम संहनन से उसका शरीर युक्त था। शरीर से निर्गत सौरभ फैल रही थीं, उसका शोणित दुग्ध जैसा धवल था, मल से वह वर्जित था, अतुल पराक्रम संपन्न था, रूपवान् था, संसारियों के लिए उसकी वाणी प्रिय और हितकारी थी, उससे सूर्य प्रकाशित हो रहा था। और फिर तत्काल सारा संसार भी उल्लसित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो गया। ऐसा लगा मानो बाल सूर्य का उदय हुआ हो, अरणि से अग्नि-स्फुलिंग निकल रहा हो, धर्म का शुभ फल हो। वह प्राणियों के लिए परमदानी था, ज्ञान से कर्मों का उपशमन करने वाला था, शिव-सुख का दायक था, निज रस के स्वभाव से आपूरित था,। त्रिभुवन उसके समागम से प्रसन्न था, देव गण हर्ष से विभोर होकर नृत्य कर रहे थे। पृथ्वी से मणि ऊपर निकल पड़े, छहों ऋतुओं के पुष्प पुष्पित हो उठे, शीतल मलय पवन चलने लगी, गंधोदक की वृष्टि होने लगी, गगन मार्ग निर्मल हो गया, दसों दिशाएं धवल हो गईं, दिव्य पुष्पों की वर्षा होने लगी, इन्द्र का सिंहासन कम्पित हो उठा, कल्पवासी देवों की सभा में घण्टियां बिना हाथ लगाये ही बजने लगीं, ज्योतिषी देवों के घरों में सिंहनाद होने लगा, व्यंतर देवों के घरों में बिना बजाये ही दुन्दुभी बजने लगे और उनकी प्रतिध्वनि गूंज उठी, भवनवासी देवों के घरों में गंभीर शंख समूहों की ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। पुण्य प्रताप से क्या-क्या नहीं होता ? ।।3–4।।

(5–6)

इन सब कारणों से सभी देवों को जिन भगवान के उत्पन्न होने का ज्ञान हो गया। फलतः सुरपति आदि सभी देव भक्ति सिक्त हो गये। अपने-अपने आसनों से उठकर मणि जटित आभूषणों से युक्त होकर उस दिशा में प्रस्थान किया जिस दिशा में भगवान का जन्म हुआ था। उस दिशा के भूतल को प्रणाम किया, दुन्दुभी बजवायी, देवियाँ निश्चल मन से आ गईं। सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने मन में ही भक्ति की और मेरु पर्वत पर भगवान को अभिषेक के लिये ले जाने का निश्चय किया। मेरु पर्वत एक लाख योजन ऊंचा है। उसपर स्थित सरोवरों और कमलवृन्दों ने उसकी शोभा में चार चांद लगा दिये। वह मेरु पर्वत सभी पर्वतों में प्रधान है उसका कोई उपमान नहीं। एरावत हाथी पर सवार होकर वह सपरिकर चल पड़ा ।।5–6।।

(7–8)

परिकर की संख्या अपार थी। सभी हर्ष और भक्ति से आपूर थे, सभी कल्पवासी देव जिन भगवान की सेवा में चल पड़े, ज्योतिषी देवों ने भी प्रस्थान किया। व्यंतरगण दर्पहीन होकर निकल पड़े, भवनवासी देवों ने भी उसी समय प्रयाण किया। विद्याधर भी दौड़ पड़े। सभी वेग से आगे बढ़ रहे थे। कभी कभी उनके रथ परस्पर संघर्षित हो जाते थे। कभी कभी हाथी अपना मार्ग छोड़ देते थे। सभी देवों आदि के हाथों में पूजा पात्र और मंगल द्रव्य थे जिसे वे भक्तिवश भगवान के पास ले जा रहे थे। सारा आकाश छत्रों के कारण धवल वर्ण लगने लगा था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा लगता था मानों वह कोटा-कोटि चन्द्रमाओं के द्वारा आच्छादित हो। ध्वज-पताकाएं मांगलिकता सर्वत्र बिखेर रही थीं, नीलोत्पलों का समूह उत्पन्न हो गया था, इन्द्राणी का क्रीड़ा-स्थल बन गया था, स्वर्ण कुम्भों से सूर्य समूह को संकट उत्पन्न हो गया था, मरकत मणियों से यमुना नदी को संकट उत्पन्न हो गया था, चन्द्रकान्त मणियों से चन्द्र क्षेत्र को तथा वैडूर्य मणियों से हरितगुप्त को तिरस्कृत किया था, विद्रुभ मणियों का समूह संध्याकाल का भ्रम पैदा कर रहा था, मालाओं से नभ मण्डल आच्छादित हो गया था, दिव्य कुसुम मालाओं तथा उनकी सुरभि से सारा क्षेत्र सुसज्जित तथा सुरभित हो रहा था, दुन्दुभी के शब्दों की पृथुल स्थिरता से गीति की लहरें उठ रही थीं, सभी लोग हर्ष विभोर होकर नृत्य कर रहे थे, चारों निकायों के देव एकत्रित हो गये थे, वाहनदेवों के द्वारा मानों सूर्य का मार्ग अवरुद्ध हो गया था ।।7–8।।

(9–10)

कोई कह रहा था-शीघ्र ही मार्ग दो, मेरे सिंह से अपने हाथी को दूर हटाओ, कोई कह रहा था अपने सिंह को हटाओ अन्यथा वह अष्टापदों द्वारा मार दिया जायेगा, कोई कह रहा था अपने हरिण को मेरे पास मत आने दो, मेरा दुष्ट बाघ उसे नष्ट कर देगा, कोई कह रहा था हाथी को दूर रखो, अष्टापद उसे समाप्त कर देगा, कोई कह रहा था बैल को चित्रक से दूर रखो, सर्प को नेवले से दूर रखो, गरुड़ से दूर रखो, हंस को मार्जार और मयूर को कुत्तों से अलग रखो। इस तरह से कहते हुए सुर-असुर अपने-अपने वाहनों से जिन भगवान के दर्शन करने दौड़ रहे थे। जैसे ही चन्द्रपुरी नगरी आई कि उन्होंने अपने वाहनों की गति धीमी की तथा गन्धोदक, पुष्प और रत्नों की वृष्टि की, दुन्दुभी बजाई, तूर वाद्य बजाया। बाद में इन्द्राणी ने स्वयं उतरकर अपने करणीय कार्य को ध्यान में रखा। उसने प्रसूतिगृह में बड़े भक्ति भाव से प्रवेश किया, अपने हाथ से मंगल किया और देखा कि लक्ष्मणा देवी अपने पुत्र के साथ लेटी हुई है। परमेश्वर त्रिभुवननाथ के दर्शन किये। उनका वर्ण कर्पूर के समान धवल था। उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया। हृदय हर्ष से इतना पुलकित हो गया कि नेत्रों से आंसू बह उठे। उसे इस बात का खेद हुआ कि काश उसके यदि हजार नेत्र होते तो वह भगवान के रूप को अधिक अच्छी तरह से देख पाती। इन्द्राणी ने फिर जिन माता की प्रशंसा की और मायोत्पन्न एक बालक को जो आकार-प्रकार में जिन भगवान के समान था उसकी गोद में रखकर जिन भगवान को उठा लाई ।।9–10।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(11)

सब देवों ने मिलकर भगवान की स्तुति की, जय-जयकार किया, हाथ जोड़कर तीर्थंकर की वन्दना की। संसार में जिन दर्शन दुर्लभ होता है। देवों ने इन्द्र से कहा आपका सौभाग्य है कि आप अपने हजार नेत्रों से भगवान के दर्शन कर रहे हैं, धरणेन्द्र ने भी खूब जिनदर्शन किये फिर भी उसकी तृप्ति नहीं हुई। शक्र भगवान के लक्षणों को अनिमेष नेत्रों से देखते-देखते पूरी तरह थक गये। उन्होंने भगवान के गात्र को कोमल वस्त्रों से ढंका, ईसाण ने धवल छत्र लगाया, सानत्कुमार-माहेन्द्र ने चमर ढुराये, और जो अन्य छोटे-मोटे देवता थे वे हाथ जोड़े भगवान की सेवा में खड़े थे। इसके बाद इन्द्र ने भगवान को ऐरावत हाथी पर बैठाकर आकाश मार्ग से मेरु की ओर प्रस्थान किया ॥11॥

(12)

नभ पथ से देवों के चलने पर भूमण्डल ढक गया। गगन भी दिखाई नहीं दे रहा था। पृथ्वीतल से 180 योजन ऊपर ताराओं के विमान हैं, उनसे दस योजन ऊपर सूर्य का, उससे 80 योजन ऊपर चन्द्रमा का, उससे तीन योजन ऊपर नक्षत्रों का विमान, उससे भी तीन योजन ऊपर बुध का विमान, उससे तीन योजन ऊपर शुक्र का विमान, उससे तीन योजन ऊपर वृहस्पति का विमान, उससे भी चार योजन ऊपर मंगल का विमान और उससे भी चार योजन ऊपर शनि का विमान है। इस प्रकार सम्पूर्ण ज्योतिर्गण की ऊँचाई एक सौ दस योजन है। उसके आगे शुद्ध गगन प्रदेश है। इस गगन प्रदेश का विचरण करते हुए देवगण ने उसे पार किया और उसके बाद उन्हें मेरु पर्वत के दर्शन हुए ॥12॥

(13–14)

यह मेरु पर्वत माणिक्य दीप्ति से दीप्त था। मणि शिलाओं के सिंहासन उसके पाय थे, चमरी पूछ से चमर डुलाती थी, वृक्ष वायु से आंदोलित हो रहे थे मानो इसी वहाने वे झुक रहे हों, स्थल कमल नीचे सुशोभित थे, हाथी के द्वारा भग्न चंदन के रस से वह सिञ्चित था, कल्पद्रुम वृक्षों को चीर के रूप में धारण किये हुए था, मदन वृक्षों की सुगन्ध से सुवासित था, कोयल की मधुर आवाज से गुंजित था, वायु की आवाज बांसों से पूरित होकर शब्द करती थी, दुन्दुभी की प्रतिध्वनि करके मेरु मानों प्रतिहार का काम करता था। मेरु को देखकर सभी देव रोमाञ्चित हो गये। वह ऐसा लगता था जैसे मंजरी का मध्यवर्ती प्रदेश हो जहां भ्रमर रुककर संतोष का अनुभव करते हैं भवन का शोभावर्धक कनक कुंभ हो, आकाश गंगा का पूजापट्ट हो,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्म रूपी हाथी का स्वर्ण स्तंभ हो, जहां रवि और शशि निर्व्याज अथवा निर्मद होकर चमर ढो रहे हों, मानों कह रहे हों कि हमें मोक्षमार्ग दो अथवा स्वर्गारोहण के लिए सोपान हो, क्योंकि गोरोचन पिण्ड के समान इसकी मध्यवर्ती त्रसनाली देख ली है, आकाश और पृथ्वी के पंजर में यह सुमेरु चक्रवाक के समान लगता है, अथवा कील के समान प्रतीत होता है, जिन भगवान के स्नान का सुवर्णपीठ अथवा स्वर्णपीढ है जो विविध मुक्तामणियों के रंगों से युक्त है, कटिसूत्र का कनक खेल हो जहां तारागण के रूप में रत्न जड़े हुए हैं अथवा दस-दिशाओं में पिंगल वर्णवाली गेंद है। इत्यादि प्रकार से देवों ने उस सुमेरू को देखकर उसके विषय में कल्पनाएँ कीं। इसके बाद वे जिन भगवान के स्नान के लिये सुगन्धित जल ले आये ॥13–14॥

(15–16)

सुमेरू पर्वत के ऊपर पांच सौ योजन विशाल एक **पाण्डुकवन** है जिसकी चारों दिशाओं में चार शिलाएँ हैं। उनमें पाण्डुक शिला ईशान में है जो अर्ध चन्द्र के समान पीत वर्ण वाली है, सौ योजन लम्बी और पचास योजन चौड़ी है। उस पर जिन भगवान का मणिमय सिंहासन लगाया गया जो पांच पांच धनुष लम्बा चौड़ा था। उस पर जिनेन्द्र देव को विस्तारा गया, सभी देवों ने स्तुति की, दुन्दुभी बजायी और पूर्व जिनाभिषेक विधि से अभिषेक करने की योजना बनाई। वायुकुमार आदि सभी सपरिवार एकत्रित हो गये और हर्षित होकर अभिषेक की तैयारी में जुट गये। मेघकुमार ने गंधोदक की वृष्टि की, भक्ति से कुकुम रस का लेप किया, वनदेवी ने पुष्प खिला दिये और उनमें रंगावलियाँ भर दीं। इसके बाद इन्द्र ने ऐरावत हाथी से जिनेन्द्र देव को उतारा मानों अकलंक चन्द्र ही हो, सूक्ष्म वस्त्र को अलग किया, सिंहासन के दायीं ओर इन्द्र खड़े हुए, वायीं ओर ईशान इन्द्र खड़े हुए, कल्पवासी आदि अन्य देवों ने भगवान के ऊपर, छत्र, चमर आदि धारण किये वीणादिक वाद्य तथा विविध संगीत प्रारम्भ किया, भगवान के चरण-कमलों के पास बैठकर। कोई-दिग्पालों ने प्रतिहार का काम किया, हाथ में स्वर्णदण्ड लेकर खड़े रहे, देवांगनाओं ने मंगल गीत गाये जो चारों दिशाओं में प्रस्फुटित हो गये। अगुरु धूप के धुंएँ से सारा क्षेत्र व्याप्त हो गया। और जो अन्य देवता थे वे पंक्तिबद्ध खड़े रहे। फिर उन्होंने सुमेरु पर्वत से लेकर क्षीर सागर तक दो पंक्तियां खड़ी करके क्षीर सागर का जल मंगाया। इस प्रकार इन्द्रों ने मिलकर बड़े आनन्द और भक्तिभाव से जिनाभिषेक की तैयारी की ॥15–16॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(17)

इसके बाद देवों ने स्वर्णकुंभ हाथ में लिए और हाथों हाथ क्षीरोदधि जल से भगवज्जिनेन्द्र का अभिषेक किया। दायीं श्रेणी में सौधर्म इन्द्र खड़े हुए थे और बायीं श्रेणी में ईशान इन्द्र। दोनों कल्पेश्वरों ने बड़े भक्ति भाव से अपने हाथ से एक लाख कलश से जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक किया। क्षीरोदधि का जल क्षीर के समान था। उसमें जिनेन्द्र की कान्ति मिल जाने पर और तेजमय हो गया। उससे कैलाश पर्वत जैसा वह मेरु धवलवर्ण हो गया। ऐसा लगा कि सारा हिमाचल पर्वत मिलकर हिमवान् हो गया हो अथवा सारे संसार के मुक्ताफल एकत्रित हो गये हों। अथवा कर्पूर इकट्ठा हो गया हो अथवा चन्द्रकान्त मणियों से जड़ दिया गया हो अथवा पारे से स्वर्ण-पिण्ड लिप्त हो गया हो अथवा यश के खण्ड एकत्रित हो गये हों। सारा पर्वत निर्मल चन्द्र की ज्योत्सना से आवृत-रत्न हो गया और दीप्तिमय जिनपाद पुण्य से वह परियंकित हो गया हो ॥17॥

(18)

देवों ने जय-जयकार किया और शुभ मन से गंधोदक लगाया जो सकल संसार-ताप को नष्ट करने वाला है, चिर-काल के जन्म-जन्मान्तर से लगे आये पाप-मैल को धोने वाला है, संचित रज-पटल को समाप्त करने वाला है, सारे संसार का राज्य अभिषेक बराबर है, महासुख को देने वाला है, सकल लावण्य का कारण है, सकल विजय स्थान का केतु रूप है, धर्म रूपी लता को पल्लवित करने के लिए मेघ है, निर्मल गुण समूह का केलिगृह है, स्वर्ग-लक्ष्मी के उपभोग का रत्नधन है, सकल धर्मों का दयास्थल है, सभी प्राणियों के साथ दयाभाव रखने के लिए विवेक स्वरूप है, सकल विवेक का जनक है, मिथ्यात्व विनाशक है, सुदृढ़ कर्मों का छेदक है, कर्मों की ग्रन्थि का भेदक है। ग्रन्थि भेद से काललब्धि होती है और काललब्धि से द्रव्यशुद्धि, है द्रव्यशुद्धि से भावशुद्धि और भावशुद्धि से आत्मशुद्धि होती है। इस तरह देवगण ने सुमेरु पर्वत पर जिनाभिषेक किया और गन्धोदक लगाकर कर्मनिर्जरा की। सभी आनन्दित हुए। उस समय अनेक अतिशय भी हुए ॥18॥

(19-20)

इसके बाद इन्द्र ने वज्रसूची से जिन भगवान के दोनों कानों का छेदन किया। उनमें मणिमय कुण्डल पहनाये इससे ऐसा लगा मानों शशि और रवि दोनों स्वयं अवगुंठित हो गये हों। शिर पर रत्न जटित मुकुट बांधा मानों त्रिभुवन की समृद्धि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक ही स्थान पर समेट दी हो। वक्षस्थल पर मणिमाला पहनाई मानो यज्ञोपवीत ही प्रतिबिम्बित हो रहा हो, । करधनी में मणि किंकिड़ियां लगादीं मानो मंदिर में गृहपंक्ति खड़ी हो गई हो। बाहु युगल में बाजूबन्द बांध दिया, अंगुलियों में अंगूठी पहना दी, पैरों में नूपुर बांध दिये। इन आभूषणों से जिनेन्द्र की शोभा अपूर्व हो गई। दिव्य वस्त्रों और पुष्पों से भी भगवान को विभूषित किया। इस तरह देवों ने जिनेन्द्र देव की विविध प्रकार से अर्चा की। ठीक ही है, भूषण भूषणों से हीं भूषित होता है, सौरभ सौरभों से ही सुरभित होता है, छत्र छत्र से ही धारण किया जाता है। इसी तरह इन आभूषणों आदि से भगवान विभूषित हुए। देवों ने उनकी संस्तुति की ।।19–20।।

(21)

हे परमेश्वर सिद्ध, बुद्ध, आपकी जय हो, आप परमात्मा हैं, परम शुद्ध हैं, स्वभाव को प्राप्त कर लिया है, निर्मल स्वभाव को जान लिया है, आप अप्रमेय हैं, सप्तभंगियों के ज्ञाता हैं, परम बोधरूप हैं, समरस हैं, निजरसज्ञाता हैं, अमल हैं, अकलंक देहवाले हैं, सकल कलाविद् हैं, अजय हैं, अजर हैं, अमर हैं, परम कला विशेषज्ञ हैं, अभय हैं, अभावरूप हैं, अभेद रूप हैं, द्रव्यस्थित स्वरूपज्ञ हैं, निरंजन हैं, योगीनाथ हैं, संसार के दुःखों को जलाने वाले हैं। हे परमब्रह्म ! आपकी जय हो, आप ब्रह्मों के ब्रह्म हैं, मोहविजयी हैं, परम नित्य हैं, जीवाजीव तत्व को प्रगट करने वाले हैं, विश्वरूपज्ञ हैं, शुद्धाचार के ज्ञाता हैं, कारणातीतज्ञ हैं, रत्नत्रय के निधान हैं, परमतेजस्वी हैं, मिथ्यात्व भेदक हैं, परम ध्यानी हैं, मुक्तिदर्शक हैं, करुणा सागर हैं, महान् गुणवान् हैं, संसार के स्वामी हैं, और सहज संत हैं। इस प्रकार देवों ने जिनेन्द्र भगवान की स्तुति की ।।21।।

(22–24)

सौधर्मेन्द्र ने भगवान को अपने ऐरावत पर बैठाया। हर्षित होकर सभी देव देवेन्द्र नृत्य कर रहे थे। परस्पर एक दूसरे के हाथ पकड़े हुए चले जा रहे थे। इन्द्र बीच में था और सभी नृत्य करने वाले देव उसके चारों ओर। चन्द्रपुरी जाते समय उन्होंने इस तरह दिशाओं का लंघन किया। दिग्गज वगैरह ने भी विविध प्रकार से हर्ष व्यक्त किया। क्षीरोदधि निर्जल हो गया, मलयाचल पर्वत सेवा करने लगा, नंदनवन डालशेष हो गया, अगुरुवन का क्षय हो गया, कर्पूर की भी यही गति हुई। ये सभी नामशेष रह गये। यह देखकर देवों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। उनका मन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हर्षित हो गया। हर्ष कम और भक्तिभाव अधिक था। भक्तिभाव से विभ्रम हुआ। विभ्रम कम था और जिन गुण अनन्त थे जिसके लिए वे तृष्णालु हो गये। इस तरह हर्ष विभोर होते हुए उन्होंने चन्द्रपुरी नगरी में प्रवेश किया। बाद में सौधर्मेन्द्र ने भगवान को ऐरावत हाथी से उतारकर उनके माता-पिता को सौंपा और अपने-अपने स्थान पर उत्सव मनाकर वापिस हो गये। भगवान चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त हैं इसलिए उनका नाम इन्द्रों ने चन्द्रप्रभ रखा। भगवान चन्द्रप्रभ अहर्निश वृद्धिगत होते गये। वे अपने हाथ की अंगुलियों को मुख से चूसा करते थे जिनमें इन्द्रों ने अमृत का लेप कर दिया था। अतएव उन्हें अपनी मां के दूध की क्या आवश्यकता थी? सुरेन्द्र दास जैसे रहकर उनकी सेवा कर रहे थे। निष्कलंक प्रतिपत चन्द्र के समान वे बढ़ रहे थे। ज्ञान कमल भी विकसित हो रहा था। इस प्रकार जिनेन्द्र चन्द्रप्रभ ने त्रिभुवन को अपने गुणों से मुग्ध कर दिया ॥22–24॥

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवम संधि

(1)

अनेक देवकुमार शिशु चन्द्रप्रभ के पास आकर उन्हें गेंद आदि से विविध मनोरंजक खेल खिलाया करते थे। धीरे-धीरे उन्होंने चलना प्रारम्भ किया। कभी-कभी कंपकर गिर जाते थे। जिससे पृथ्वी कंप-सी जाती थी। उससे ऐसा लगता था कि अति भार से शेषनाग कंपित हो रहा है या धरणेन्द्र को कोई शंका हो रही है। कभी लीला पूर्वक गेंद खेलते थे। कभी हाथी घोड़ों की सवारी करते थे। कभी जल-क्रीडा करते थे और अपनी छाया का अनुसरण करते थे। इस तरह वे दिव्य भोगों को भोगते हुए कभी थके नहीं। धीरे-धीरे जिनेन्द्र की बाल्यावस्था व्यतीत हुई और विद्यार्जन काल आया। सभी ने यह अनुभव किया जैसे ओंकारादि अक्षर सभी शब्दागमों से वे परिचित हों। प्रथमानुयोगादि चारों अनुयोग ग्रन्थों में वे पारंगत थे। इस प्रकार वे तरुणावस्था में पहुंचे ॥ 1 ॥

(2)

जिनेन्द्र देव का रूप अद्‌भुत था। उनके कुंतल केशों ने मानों अज्ञान रूपी अंधभार को बांध लिया था। उनका ललाट चित्त के समान विस्तृत था, नेत्र सिद्ध के समान निर्मल थे, नासिका बुद्धि के समान सरल-सीधी थी, मुख सौरभ से युक्त था, भ्रूवल्ली ने मानों माया की वक्रता को जीत लिया था, दन्तपंक्ति निर्मल बुद्धि के समान थी अथवा चन्द्रकिरणों के समान थी, विद्याधरों की ऐसी शोभा थी जिससे लगता था कि हृदय से दीनभाव निकल गया हो। बाहुदण्ड मानों धर्मदण्ड थे अथवा नरक-द्वार के लिए परिध थे, वक्षस्थल केवलज्ञान के समान विस्तृत था अथवा आत्मा के समान था, अगाध नाभि ऐसी लगती थी जैसे संसार उसमें क्षीण हो गया हो, पृथुल नितम्व ऐसे लगते थे जैसे उनमें उनका यश भर गया हो, ऊरु ऐसे लगते थे जैसे वे उनके कोमल परिणाम के प्रतीक हों। चरण कमलश्री को लिए हुए थे। उसकी कांति से शोभा ही मंद हो गई। इस तरह भगवान के रूप लावण्य की महिमा थी ॥ 2 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(3)

राजा ने अपने पुत्र के निरुपम लावण्य को देखकर कमलप्रभा नाम की सुन्दर राजकन्या के साथ विवाह संबंध कर दिया। ऐसा लगता था, मानों चन्द्र ने अपनी कांति उन्हें छोड़ दी हो, काम ने अपनी बाण पंक्ति अर्पित कर दी हो, आगम से क्षान्ति गुण आ गया हो, ज्ञान से निर्मल शान्ति आ गई हो, धर्म से जीवन रक्षा का भाव आया हो, विनय से उत्तम शिक्षा मिली हो, तर्क से युक्ति आई हो। सूर्य से निर्मल बुद्धि प्राप्त की हो और सिद्ध से अचल अथवा शरीर रहित सिद्धि (मुक्ति) की भावना आई हो। इसके बाद पिता महासेन ने सभी राजाओं के सामने सहर्ष चन्द्रप्रभ को सिंहासन पर बैठा कर उनका पट्टबंध करने का उपक्रम किया ॥ 3 ॥

(4)

राजा स्वयं ही हर्ष विभोर होकर पट्टबंध उत्सव में सम्मिलित हुए। स्वर्ण-कुम्भ से स्नान कराया गया, मंगल वाद्य बजाये गये, गगन से गंधोदक तथा पुष्पवृष्टि हुई, आकाश निर्मल हो गया, चारों प्रकार के वाद्यों के शब्दों से राजागण गुञ्जित हो गया, राजाओं ने स्वयं कनकदण्ड लेकर गर्वशून्य होकर प्रणाम किया, कुल मंत्रियों ने चमरछत्र लगाए, इस प्रकार सभी राज सेवकों ने राजकुमार की सेवा की। और भी जो दूसरे थे उन सभीने हाथ जोड़कर अभिवादन किया। अन्य नागरिकों ने अपने हाथों से लाजाञ्जलि छोड़ीं, सधवा स्त्रियों ने गायन और नृत्य किये ॥ 4 ॥

(5)

इसके बाद चन्द्रप्रभ के शासनकाल में पृथ्वी पर होने वाले सारे दोष समाप्त हो गये, सभी सुखी रहे और संतुष्ट हुए, मेघ की अमृत वर्षा हुई, वायु ने अत्यन्त मन्द गति से संचार किया, सूर्य ने अपनी मन्द किरणों की प्रखरता को कम कर दिया, चन्द्र ने भी अपनी किरणें चारों ओर फैला दीं, हिमकाल ने किसी को कष्ट नहीं दिया, सभी को सुख का अनुभव होता रहा, राज्य में कहीं अकालमरण नहीं हुआ, दुष्काल नहीं पड़ा, रोग नहीं फैला. अनेक आश्चर्य हुए, प्रजा ने तृष्णा नहीं की विषाद नहीं था, विषयचाह नहीं थी, धर्म के प्रति अभिरुचि थी, पाप का भाव नहीं था, शोक गलित हो गया था, लोग दरिद्रता, दुःख और चिंता से मुक्त हो गये थे। तथा जिनेन्द्र के गुणों से अनुरंजित थे ॥ 6 ॥

(6)

इस प्रकार परमेश्वर चन्द्रप्रभ अपनी पृथ्वी का पालन करने लगे। इसके बाद सौधर्मेन्द्र ने मन में सोचा—जिनेन्द्रदेव ने इतने पूर्व लक्ष काल तक कुमार काल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिताया, राज्य सुख भोगा, फिर भी अभी उन्हें वैराग्य जाग्रत नहीं हुआ। अब उन्हें वैराग्य का कारण प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिससे वे तप और अचरण की ओर अपना चित्त लगा सकें। यह सोचकर शशिरुचि नामक देव को बुलाया और अपना भाव व्यक्त किया। शशिरुचि ने भी जिनेन्द्र को तदनुसार प्रतिबुद्ध करने का संकल्प किया ।। 6 ।।

(7)

इसके बाद शशिरुचि राज द्वार में पहुँचा और भेष बदलकर अति वृद्ध का भेष धारण किया। उसके हाथ में लाठी थी, वस्त्र जीर्ण-शीर्ण थे। धीरे-धीरे वह चन्द्रप्रभ की सभा में पहुंचा और जोर-जोर से पुकारने लगा—हे स्वामी! मेरी रक्षा कीजिए रक्षा कीजिए, आज रात्रि में मुझे मृत्यु अपना भक्षण बना लेगी। राजा ने उसकी आवाज सुनकर कहा—आप आइए यहाँ, कहिए क्या कहना चाहते हैं? दुःख है, बताएं। आकर समीप में उसने पुनः कहा—आप संसार के दृष्टा हैं, जरा ने मेरे अंगों को शिथिल कर दिया है, अनेक रोग रूपी चोरों के द्वारा वे अंग पीड़ित हैं, यम रूपी व्याघ्र अब प्राण-हरण करने आ रहा है, आप यदि जग रक्षक हैं तो मुझे बचाइए। यह कहकर वह अदृश्य हो गया। उसकी बात सुनकर राजा विचारने लगा, मृत्यु से कौन बचा सकता है? वृद्धावस्था आने पर अंगो से रोग कैसे दूर किये जा सकते हैं? जग में कोई किसी की रक्षा करने वाला नहीं है। काल सभी को लेकर जायेगा ही। एक-एक कर वह बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतन करने लगा ।। 7 ।।

(8)

चराचर जगत में जो भी वस्तु रूप है वह सब क्षण भंगुर है। धन, यौवन, जीवन, तनु आदि सारा प्रपंच है और वह जल बुद्‌बुद के समान क्षण भंगुर तथा अनित्य है। दिन में जिसके शिर पर राजपट्ट बंधा है, रात में उसी के शिर पर मरण घट रखा जाता है, दिन में जिसे मंगल-गीत सुनाया जाता है, रात में वही स्त्रियों द्वारा आरोपित होता है, दिन में जो गजपर पर बैठता है रात में वही चोरों द्वारा बांध दिया जाता है। दिन में जो धनिक लगता है, रात में वह क्षीण दिखाई देता है, दिन में जो स्नेह सिक्त दिखता है, तुरन्त ही वही शत्रु के समान हन्ता का रूप लिए खड़ा हो जाता है, जो पुद्‌गल चिरकाल से सुख-भाव देने आये हैं वे तत्क्षण दुखदायी बन जाते हैं, जिन परमाणुओं से पिण्ड बनता है उसी पिण्ड से परमाणु खण्ड-खण्ड होने लगते हैं। यह मनुष्य-जन्म फेन के समान निस्सार है। क्षण भर में नष्ट होने वाला है। क्षण भर में धर्म भाव पैदा होता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षण भर में क्षय होता है, क्षण भर में स्नेह होता है तो क्षण भर में वैर हो जाता है। प्रिय पुत्र, सुत, जननी, जनक, मित्र आदि हैं वे सभी अनित्य हैं। जल बुद-बुद के समान उनका जीवन अनित्य है। सभी विनष्ट होने वाले हैं, यह वचन पूर्णतः सत्य है। तीनों भुवनो में कोई शरण दिखाई नहीं देती, मृत्यु सभी के लिए समान है, उससे कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता। यह **अनित्यानुप्रेक्षा** है ॥ 8 ॥

(9)

कोई भी स्त्री-पुरुष ऐसा नहीं जो मृत्यु को लांघ सका हो। मृत्यु के आने पर इन्द्र भी हाहाकार करता है, दिक्पाल की भी वही गति होती है और जो कोई भी शक्ति संपन्न होते हैं, वे सभी निःशरण होकर प्राण छोड़ देते हैं। नर और कीटों की तो बात छोड़िये, शक्र भी यम के रूठ जाने पर बच नहीं पाता। ये मूढ अज्ञानी जीव मृत्यु के समीप पहुँच जाने पर भी अपने आपको मृत्यु मुख में क्षिप्त नहीं मानते। यदि कोई न कोई उसकी सूचना दे भी देता है तो वह मोह ग्रस्त हो जाता है। जो दिन में जन्म लेता है वह रात में मर जाता है। जब यम की आवाज सुनाई नहीं देती तो उससे बचने के लिए मणि मन्त्र आदि का उपयोग होने लगता है। यम को दूर मानकर लोग अपना मनोरथ सिद्ध करने में लग जाते है, श्वासोच्छ्वास के छल से जीवन चलता है क्षण-क्षण में वह क्षीण होता चला जाता है मूढ उसे समझ नहीं पाता। एक दिन जर्जरित होकर वह मृत्यु मुख में समा जाता हैं। संसार सागर में और भी अनेक दुःख हैं जिन्हें यह जीव भोगता है पर दुःख के कारणों की ओर विचार नहीं करता। यह **अशरणानुप्रेक्षा** है ॥ 9 ॥

(10)

भवजलधि के बीच चारों भीषण गतियों में यह जीव परिभ्रमण करता है और दुःख भोगता रहता है। यहां शक्र भी मरकर मल का क्रीड़ा होता है और मल का क्रीड़ा भी शक्र हो जाता है, ब्राह्मण भी चाण्डाल जाति में पैदा होता है और चाण्डाल भी ब्राह्मण हो जाता है, मित्र भी शत्रु हो जाता है और शत्रु भी अचल मित्र बन जाता है, माता भी कांता बन जाती है और कांता भी माता-पिता हो जाती है, पिता पुत्र और पुत्र पिता हो जाता है। यह भवनाली बड़ी विशाल है। जहां जीव अनंतकाल से घूम रहा है। मनुष्य योनि मिलने पर भी वह भोग विलास में ही लगा रहता है। वालाभ्यास से तरुणी स्त्री सूनों का स्पर्श करती है। पदार्थ विचार पांच प्रकार से होता है—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव। ये सभी ज्ञेय हैं। अतीत काल में अनन्त काल से इन्हें भोगते आए हैं और महान दुःख सहते आये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह सब अकेले किया है। अकेले ही कर्मफल को भोगा है और अकेले ही चतुर्गतियों में भ्रमण किया है। यह **संसारानुप्रेक्षा** है ।। 10 ।।

(11)

यह जीवन अकेला ही विविध कर्म बांधता है, अकेला ही परमसुख का भोग करता है, अकेला ही वैतरिणी का जल पीता है और अकेले ही देवलोक के सुखों का उपभोग करता है, अकेले ही तिर्यञ्च गति के दुःखों को सहता है और अकेले ही पृथ्वी के राज्य सुख को भोगता है, अकेले ही परदत्त पीड़ा को झेलता है और अकेले हीं रमणीय रसों को पान करता है, परिवार के कारण पापों का बंध करता है और अकेले ही उसका स्वाद लेता हैं, अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही भवसागर में संसरण करता है, इहलोक में अकेले ही सुख-दुःख भोगता है और परलोक में भी अकेले ही सुख-दुःख भोगेगा। जिस प्रकार रात्रि में पक्षी एक वृक्ष के नीचे मिल जाते हैं उसी प्रकार परिवार के लोग भी कुछ समय के लिए एक हो जाते हैं फिर भी यह मूढ जीव आत्मचिंतन नहीं करता। पर को अपना मानना है। निज परम भाव ही तो स्वभाव है। यह जीवन अकेले ही कर्मपाश काटता है और अकेले ही शिव सुख पाता है। इस प्रकार देह और जीव भिन्न-भिन्न हैं। जीव का शुद्ध स्वरूप स्पष्ट है। फिर भी वह जीव द्रव्य को अपना मानकर स्वयं का हनन करता है। यह **एकत्वानुप्रेक्षा** है ।। 11 ।।

(12)

जीव और देह पृथक्-पृथक् है। आत्मा अचल, अमूर्त और अनिन्द्रिय है जबकि देह समूर्त, सचल और इन्द्रियवान् है। जिस प्रकार जल और जलत्व में अनन्य भाव है उसी प्रकार जीव और देह में पर स्वभाव है, अन्य स्वभाव है। जब देह और जीव अलग है तो उनमें एकात्मता कैसे हो सकती है ? जन्म जन्मान्तर से यह जीव पुत्र मित्र आदि से मोह करता चला आया है जबकि वे बिल्कुल अलग हैं प्रियजनों के वियोग से पहले भी वह संतप्त हुआ है। इस जन्म में भी संतप्त हो रहा है। चिरभवों की यह बात अज्ञानी जीव भूल गया है और इस जन्म में मोह करने लगा है। यह जीव संसार रूपी घोर अटवी में भ्रमण करता फिरता है इसी अज्ञानता के कारण यह देह अशुचि और दुर्गन्ध का घर है। नव द्वारों से इसमें मल झरता है। फिर भी जीव इसमें विमोहित हो जाता है। यहां उसे जीव और देह की भिन्नता पर विचार करना चाहिए। यह **अन्यत्वानुप्रेक्षा** है ।। 12 ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(13)

यह मानव देह मल का बीज है। गर्भाशय मल का घर है। यह देह सभी मलों और दुर्गन्धों का योनि-स्थल है। देह से अधिक घिनोना और कोई दूसरा पदार्थ नहीं है। कुंकुम, कस्तूरी आदि द्रव्य उसे सुगन्धित बनाने के लिए लगाते हैं पर वस्तुतः वे स्वयं मलिन द्रव्य हैं। यदि यह देह चर्म से ढका हुआ न हो तो उसे कौन अपनाता है। यह सभी रोगों का घर है और इसके नव द्वारों से मल प्रवाहित होता रहता है। सारे पाप इसी देह से होते हैं, देह के कारण होते हैं। चिंतन करने पर यह समझ में आता है कि देह का यह स्वभाव है। नारी का शरीर सौन्दर्य का घर मान लिया जाता है पर उसमें जितनी अपवित्रता है, वह अन्यत्र नहीं दिखाई देगी। परन्तु मिथ्या बुद्धि के कारण यह जीव उसमें रमण करता है। ऐसा चिंतन करना अशुचित्वानुप्रेक्षा है ।। 13 ।।

(14)

कर्मों के आने के मार्ग को आश्रव कहते हैं जैसे नाव में छेद से पानी आ जाता है। इसी आश्रव के कारण जीव संसार में जन्म लेता है। उसके दो भेद हैं—शुभ योग और अशुभयोग। शुभ कर्मों से शुभोपयोग होता है। इससे हेयोपादेय ज्ञान रूप विवेक प्रगट होता है। इससे उपशम और वैराग्य भाव की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत अशुभयोग योग है जो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग से उत्पन्न होता है इन अभावों के कारणों पर त्रितन करना आश्रवानुप्रेक्षा है और इन आश्रवों को कैसे दूर किया जाये। यह संवरानुप्रेक्षा से स्पष्ट होगा ।। 14 ।।

(15)

आश्रव के निरोध को संवर कहते हैं। उसके दो भेद हैं—द्रव्य संवर और भावसंवर। दान आदि से कर्म पुद्गलों का जो संवर होता है वह द्रव्यसंवर है और सुख का कारण है। जो भव के कारणों को दूर करता है वह भावसंवर है। जो संयमधारी होते हैं उनके ऊपर आश्रव के वाण निष्फल हो जाते हैं। जिसका जो शस्त्र होता है वह उसी से मरता है। संवर के कुछ शस्त्र हैं जिनसे आश्रव का निरोध किया जाता है। उदाहरणतः क्षमा से क्रोध का, मार्दव से मान का, ऋजुता से माया का, धीरता से मन की चपलता का, परिग्रह के त्याग से लोभ का, जिन प्रोक्त धर्मध्यान से मोह का, सम भाव से राग-द्वेष का, निर्ममता से स्नेह का, सम्यग्दर्शन से मिथ्यात्व का, मुक्ति चिंतन से भवभाव का, तत्वचिंतन से मदन का, नरकचिंतन से परीषह का, निरोध किया जाता है। इसी तरह के और भी जो विपरीत भाव हैं उनका निरोध संवरानुप्रेक्षा से होता है। और इसी से से फिर निर्जरानुप्रेक्षा का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(16)

आत्मा के साथ लगे हुए पौद्गलिक कर्मों के आंशिक क्षय को निर्जरा कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं—अकामनिर्जरा या अबुद्धिपूर्वक निर्जरा और सकाम निर्जरा अथवा कुशल मूलनिर्जरा। आत्मा के साथ बंधे हुए कर्म अपनी स्थिति को पूर्ण करके आत्मा से संबंध स्वयं ही छोड़ देते हैं। इसके लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। यह अकामनिर्जरा है। दूसरी जो सकाम निर्जरा है उसमें दुर्धर तप आदि करने पड़ते हैं। तप करने और परीषहों के जीतने से कर्मों की स्थिति पूर्ण होने के पहले ही निर्जरा हो जाती है। अतएव इसके निमित्त से जीव मोक्ष के मार्ग में अग्रसर हो जाता है। अकामनिर्जरा से चतुर्गतियों में दुःख भोगना पड़ते हैं क्योंकि कर्म विपाक होने पर ही वे फल दे पाते हैं। मुनिगण सकामनिर्जरा किया करते हैं। बारह महाव्रतों का पालन भलीभांति कर बाईस परीषहों को सहन कर और उत्तर-गुणों को पालकर कर्मों की निर्जरा कर डालते हैं इससे आत्मा की पवित्रता प्रगट हो जाती है। यही निर्जरानुप्रेक्षा है। इसी से फिर लोकानुप्रेक्षा पर चिंतन किया जाता है ॥ 16 ॥

(17)

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और आकाश ये पांच अस्तिकाय जिसमें रहते हैं वह लोक है। उसकी कुल ऊंचाई चौदह राजू मानी जाती है। उसका आकार उसी प्रकार का है जिस प्रकार कमर पर दोनों हाथ रखकर पैर फैलाये पुरुष का आकार होता है। अधो लोक सात राजू प्रमाण नीचे है, एक राजू पृथ्वी का विस्तार, पांच राजू प्रमाण स्वर्ग स्थान और एक राजू प्रमाण उसके ऊपर का भाग है। अधोलोक में सात नारकीय भूमियाँ अवस्थित हैं। यह समूची पृथ्वी घनोदधि, घनवात और तनु वातवलय के आधार पर टिकी हुई है। मध्य लोक में असंख्यात द्वीप-समुद्र हैं। उनके बीच जम्बू द्वीप है फिर घातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीप। इसी को अढ़ाई द्वीप कहते हैं। मनुष्य यहीं तक पहुंच सकता है। जन्म-मरण भी यहीं होता है। जम्बू द्वीप के बीच में मेरु पर्वत है जिसके ऊपर ऊर्ध्वलोक है जिसमें 16 स्वर्ग हैं जिनमें रहने वाले देव कल्पोपपन्न कहे जाते हैं। उनके ऊपर 9 कल्पातीत विमान (ग्रैवेयक) होते हैं और फिर 5 अनुत्तर विमान (सर्वार्थ सिद्धि) होते हैं। उनके ऊपर सिद्धशिला है जहां मुक्तात्माएँ अनन्त काल तक रहती हैं। जिसके बाद अलोकाकाश आरम्भ हो जाता है। इसका चिन्तन करना लोकानुप्रेक्षा है इससे बोधिदुर्लभ भावना की भूमिका बन जाती है ॥ 17 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(18)

धर्म के उत्तम क्षमा मार्दव आदि दस लक्षण बताये गये हैं जिनका पालन कर जीव भव-सागर के पार पहुँच जाता है। जिन धर्म वस्तुत: कल्पवृक्ष है। वह यथार्थ सुख देने वाला है, सकल दु:खों का विनाशक है, रक्षण करने में समर्थ है, अमृत सदृश है, मेघ वर्षा भी धर्म से होती है और धर्म से ही घर में संपत्ति आती है और रत्नवृष्टि होती है, स्वर्ग प्राप्त होता है, तीर्थंकरपद मिलता है, इन्द्रपद मिलता है, अतिशय गुण उत्पन्न होते हैं, सर्वत्र विजय होती है, सकल कार्य सिद्धि होती है; और अनुपम मोक्ष प्राप्ति होती है, इस प्रकार धर्म से प्राप्त होने वाले लाभों का चिन्तन करते हुए निर्मल बोधिरत्न प्राप्त कर जीवन सफल बनाना चाहिए। यही **बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा है ।। 18 ।।**

(19)

अनेक बार यह जीव स्थावर हुआ भव-सागर में भ्रमण किया, लाखों योनियों में भटका, पंचेन्द्रिय विषय भोगों का उपभोग किया। अत्यन्त दुर्लभता पूर्वक मनुज जन्म पाया, उसमें भी जिनधर्म पालने का अवसर मिला। बोधि प्राप्ति में भी बहुत विघ्न होते हैं। सुभट रूपी कर्मों ने संपराय किया, मनुज जन्म में यदि लम्बी आयु मिल भी गई तो धर्म का मिलना कठिन होता है, फिर निरोगता की प्राप्ति और कठिन होती है, उससे भी कठिन होता है जिनधर्म की प्राप्ति। जिनधर्म की प्राप्ति हो भी गई तो चित्त का शांत होना कठिन होता है, उसमें भी मुनि के प्रति भक्ति और कठिन होती है। भक्ति होने पर वैराग्य हो और वह भी चिरकाल तक रहे यह और भी कठिन होता है। कभी बोधि मिल भी जाती है। पर वह छूट भी जाती है, मोक्ष में प्रवेश कर निकल भी जाती है, दु:ख इस बात का है कि समुद्र से प्राप्त यह चिन्तामणि समुद्र में ही फेंक दिया जाता है। ऐसे जीव अमृत से वस्त्र धोते हैं। हा! प्राप्त बोधि हाथ से चली जाती है। इसकी किससे उपमा दी जाये। इस तरह से बहुत से अविनीत पाखण्डी जग में भ्रमण करते रहते हैं। वे परमात्मा का चिन्तन नहीं करते, दुर्लभ बोधि धर्म को प्राप्त नहीं करते ।। 19 ।।

(20)

इस प्रकार बारह भावनाओं को भाते हुए चन्द्रप्रभ ने अपने पुत्र को राज्य देकर दुर्धर तप करने का निश्चय किया। इतने में लौकान्तिक देव आये और उन्होंने भक्ति पूर्वक निवेदन किया कि हे त्रिजगदीप! इन भव्य जीवों का उद्धार कीजिए। ये भव समुद्र में पड़े हुए हैं, अपार दु:ख भोग रहे हैं, मोहान्धकार से ग्रसित हैं. सम्यग्दर्शन के प्रति रुचि नष्ट हो गई है। हे ज्ञान दिवाकर! कर्म की अवधारणा को स्पष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कीजिए। आप ही इस जग का उद्धार कर सकते हैं। शिव नगर के द्वारों को उद्घाटित कीजिए, तीर्थरत्न को प्रस्फुटित कीजिए, सकल लोक में धर्मामृत की वर्षा कीजिए। इस तरह ब्रह्म देव ने बड़े विनय भाव से अर्चना की और दुन्दुभी बजाई। दसों दिशाओं में उसकी आवाज फैल गयी। फलतः हर्षित होकर देवगण वहां एकत्रित हो गये ॥ 20 ॥

(21–22)

इसके उपरान्त इन्द्र वहां आया और बड़ी भक्ति पूर्वक स्तुति कर 'विमला' नाम की शिविका (पालकी) में बैठाकर भगवान को सकलर्तु नामक वन में ले गये। उस शिविका में सौधर्मेन्द्र ने अपना कंधा दिया। शिविका के आगे चन्द्रसूर्य थे। सभी देवगण पालकी के चारों ओर नाच रहे थे। दिव्य पुष्प वृष्टि हो रही थी, गीत गा रहे थे, सुर वीणा बज रही थी, दिव्य वस्त्र ला रहे थे, मंगल मालाएँ लिए देवांगनाएँ हाथी पर सवार थीं। इस तरह भक्ति भावपूर्वक सभी सकलर्तु वन पहुँचे। वहां के समय असमय के सारे पुष्प और फल पुष्पित-फलित हो गये। किंशुक, करवीर, कंकोल, कास, कपास, खजूर, चंपक, चंदन, अभ्र, जूही, ताम्रालि, दाडिम, णारंग, लवंग आदि सभी वृक्ष खिल उठे ॥ 21–22 ॥

(23–24)

सकलर्तु वन पहुँचने पर भगवान को शिविका से उतारा और निर्मल शिलाताल पर बैठाया। वहां वरचन्द्र नामक अपने पुत्र को राज्य देकर सिद्ध परमेष्ठी को नमनकर पौष कृष्णा एकादशी के दिन अपने संसार का अन्त करने के उद्देश्य से पंच मुष्टियों से केशों का लुञ्चन किया। इन्द्र ने उन केशों को भक्ति भाव पूर्वक मणि-पात्र में रखकर क्षीर समुद्र में प्रवाहित कर दिया। फिर रत्नदीप्त कुण्डल उतारा मानों काम रथ का चक्र छोड़ दिया हो, कंठ से मणिहार उतारा मानों मोहपाश काटा हो, केयूर उतारा मानों कर मुद्रा छोड़ी हो, कटि सूत्र तोड़ा मानों काम धनुष की प्रत्यंचा सूत्र हो। इसी तरह नूपुर, सूक्ष्म वस्त्र आदि अन्य आभरण भी त्यागे जो भवबंधन के परिचायक थे और इस तरह जैनेन्द्र दीक्षा ग्रहण की। सभी देव गण हर्षित और पुलकित हुए। परिवार के लोग भी यद्यपि संतप्त थे पर उन्हें भी प्रसन्नता हुई। अन्तः पुर वियोग से तप्त हो गया, शोकमग्न हो गया, पुत्र भी शोक संतप्त हो गया। सभी ने उन्हें सान्त्वना दी बाद में देवों ने भगवान की पूजा भक्ति की, स्तुति की और अपने-अपने स्थान चले गये ॥ 23–24 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशम संधि

(1)

चन्द्रप्रभ ने पंच महाव्रत और पंच समितियों का परिपालन किया, पंचेन्द्रिय द्वारों का संवर किया, षडावश्यकों का पालन करते हुए परीषहों को सहा, अचेलकता से मन चपल नहीं हुआ, अस्नान और दंतधावन को छोड़ दिया, खड़े होकर भोजन करने लगे, मूल गुणों और उत्तर गुणों की भावना की, बारह प्रकार का तप किया। इस प्रकार उनका निर्मल और निश्चल चरित्र था। शत्रु और मित्र के प्रति समता भाव था, शक्र और रंक तथा सुख और दुःख के प्रति समभाव था, पाप और पुण्य, रज्जु और चरण, भिखारी और धनी, संसारी और मुक्त सभी उनकी दृष्टि में बराबर थे। इस प्रकार भावन करते हुए दो उपवासों का नियम ले लिया ॥1॥

(2–4)

जिनवर ने एषणा शुद्धि का विचार किया, संयम परिपालन में बुद्धि लगाई, चौदह मल दोषों और बत्तीस अंतराय दोषों (कुल 46 दोषों) से मुक्त आहार किया। पाणिपात्र में आहार लेते थे रसनेन्द्रिय लोलुपी नहीं थे। इनके अतिरिक्त और भी जो नियम पूर्वाचार्यों नें चर्या के संदर्भ में बनाये थे उन सबका भलीभांति पालन करते हुए मुनिवर ने दुर्धर तप किया। बाद में उन्होंने वह वन प्रदेश छोड़ दिया। बिहार करते हुए नलिनपुर नगर आये। आहार चर्या के लिए वे घर-घर घूमते रहे। उनके आगे-पीछे लोग भी घूमते रहे। बाद में वे राजगृह पहुँचे जहां राजा सोमदत्त ने बड़े भक्तिभाव से पड़गाकर उन्हें आहार देने का संकल्प व्यक्त किया। उसने प्रासुक जल से सिंहासन आदि को धोया। भगवान ने यथोचित आहार व्यवस्था देखकर पारणा ली। आकाश में दुन्दुभी बज उठी, सर्वत्र साधुवाद की आवाज गूंज उठी, गगन से रत्नवृष्टि, गंधोदक वृष्टि और पुष्प वृष्टि होने लगी। त्रिभुवन पुलकित हो गया। भोजन कर भगवान ने जल-ग्रहण किया। भगवान का आहार देखकर लोगों को आहारविधि समझ में आई। राजा सोमदत्त ने भगवान की पूजा की, अष्टांगविधि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से भक्ति की, गंधोदक लगाया, अक्षत चढ़ाये, पुष्प-पूजा की, नैवेद्य चढ़ाया, दीपक से आरती की, अज्ञान रूप तम का विनाश हो यह मानकर धूप खेई, पुष्पाञ्जलि की। इस प्रकार भगवान की चरणपूजा और भक्ति कर राजा ने अपना कर्मक्षय किया ॥2–4॥

(5)

हे भगवान् ! आप त्रिजगपति हैं, परोपकार के लिए आपने शरीर धारण किया है, तीनों लोकों को प्रवृत्त किया है, धन्य किया है, विशेषत: मैं शोक-दु:ख से मुक्त हो गया हूं। आपने सप्ततत्वों को समझा दिया है, भव्यों के कर्म-पंक को धो दिया है, दोषों को दूर करने वाला नय-रथ प्रदान किया है, आपकी जो साधना भूमि है उसमें लोग अपने पापों को छोड़ देते हैं इसलिए उसे तीर्थ कहा जाता है। उसमें अवगाहन करने से साधकों को स्वर्ग और मोक्ष की उपलब्धि होती हैं। आप परमात्मा हैं, निर्मल हैं, कल्पवृक्ष हैं, सुखदाता हैं, दु:खभंजक हैं। आपके गुणों की स्तुति कौन कर सकता है ? इन्द्र भी इसमें समर्थ नहीं हैं। इस प्रकार राजा ने स्तुति की ॥5॥

(6)

वाद में जिनेन्द्र वहां से धीरे-धीरे आगे बढ़े और निरालस होकर ईर्यासमिति का पालन करते रहे। बिहार करते हुए वे उसी सकलतुं वन में पहुँचे जहाँ उन्होंने दीक्षा ली थी। बाईस परीषहों को सहन करते हुए और बारह तपों का आचरण करते हुए वे एक वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठ गये। घनघोर वर्षा होने लगी रात का सान्द्र अन्धकार चारों ओर फैल गया, डांस-मच्छरों ने शरीर को चीथ डाला, कानों के परदों को फाड़ने वाली मेघ गर्जना होने लगी, बिजली चमकने लगी, शरीर को कंपित करने वाली घनवात चलने लगी, कठोर हिमवात बहने लगी जिससे वृक्ष भी प्रभावित होने लगे। ग्रीष्मकाल आने पर सूर्य की प्रखर किरणें प्रलय काल का दृश्य उपस्थित करने लगीं, दावानल में जंगल जलने लगे. गिरि तटों पर आतापन दु:खदायी हो गया। ऐसी विषमावस्था में जिनेन्द्र देव आत्मध्यान में लीन रहे, शुभ रस का पान करते रहे। उन्हें किञ्चित् भी दु:ख की वेदना नहीं हुई और वे वैराग्य में लीन रहे। इस तरह तप का आचरण करते हुए शुभ ध्यान में लीन रहे ॥6॥

(7)

इसके बाद वे नागवृक्ष के नीचे वज्रासन लगाकर शिलातल पर बैठ गये और शुक्ल ध्यान में लीन हो गये जो मोह-महातम के लिए प्रलय भानु है, वज्र-वृषभनाराच-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संहनन रूप है पूर्वधरों के लिए सिद्धि-दायक रहा है, मोह को शीघ्र ही नष्ट करने वाला और शुक्ल ध्यान को शीघ्र ही प्रस्फुटित करने वाला है। उस शुक्ल ध्यान के चार भेद हैं—पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रिया-निवृत्ति। जिन जीवों के मन-वचन-काय में तीनों योग रहते हैं उनके पहला शुक्ल-ध्यान पृथक्त्व वितर्क हो सकता है और जिन जीवों के इन तीनों में से एक ही योग पाया जाता है उनके दूसरा शुक्लध्यान एकत्ववितर्क हो सकता है। जो तीनों में से केवल कामयोग को ही धारण करने वाले हैं उनके तीसरा शुक्लध्यान होता है और जो तीनों ही योगों से रहित हैं उनके चौथा शुक्लध्यान हुआ करता है। पहला और दूसरा ध्यान सवितर्क होता है। पहला ध्यान विचार सहित भी होता है। दूसरा ध्यान वितर्क सहित पर विचार रहित होता है। ये दोनों ध्यान श्रुतकेवली के ही हुआ करते हैं। शेष दोनों अंतिम ध्यान केवली के होते हैं। यहां सभी की साधना में भगवान ने प्रथम दो ध्यान पा लिये ॥7॥

(8)

इसके बाद उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ जिसमें वस्तुतत्व हस्तामलकवत् दिखाई देने लगता है। यह ज्ञान निष्कलंक है, निष्कारण है, महान है, नित्य और निरंजन है, अनंत गुणवान् है, सर्वज्ञेय प्रकाशक है, छेद विवर्जक है, परम सुखदाता है, परमात्म भाव से प्राप्त होने वाला है, भवभाव का विनाशक है। रत्नत्रय के परिणामों का प्रसारक है, युगपत् सर्व पदार्थों का अवभासक है, तीनों कालों तक उसकी पहुंच है, त्रिकालवर्ती पदार्थों के गुण-पर्यायों को एक साथ प्रत्यक्ष रूप से जानने वाला है ॥8॥

(9)

इसके बाद इन्द्र का आसन कंपित हुआ, घंटों से आवाज निकली जिसे सुनकर सुरगण आश्चर्यान्वित हो गये। ज्योतिषी देवों के घर सिंहनाद हुआ। दिग्गजों ने कहा—आदेश दीजिए। व्यंतर देवों के घरों में पटहनाद हुआ जिससे वे स्वयं विस्मित हो गये। भवनवासी देवों के घरों में असंख्य वाद्य बजे जिससे वे भी आश्चर्यचकित हो गये। इसके बाद सौधर्म इन्द्र (कुबेर) को ज्ञान हुआ कि चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र को केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। वह अत्यन्त हर्षित होकर तुरन्त हाथ जोड़कर शक्र के पास-पहुंचा और आदेश की याचना की। शक्र ने कहा—धर्मकार्य करो और जैनधर्म का उद्योतन करो। भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है। उनके पास जाकर उनके समवशरण की रचना करो। कुबेर ने तुरन्त ही विनम्रतापूर्वक आदेश को स्वीकार किया और सपरिकर भगवान की सेवा में पहुंच गया ॥9॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(10)

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने सपरिकर जाकर समवशरण की रचना की। वह समवशरण साढ़े आठ योजन प्रमाण विस्तृत था। उसमें पंच वर्णों के मणि लगे थे, तल भाग नीले रंग का था। समवशरण के चारों ओर वलयाकार गोल धूलीसाल (पांचरंगों के रत्नों की धूलिसे बना हुआ प्राकार था। उसमें कहीं मरकतमणि, कहीं पद्मराजमणि, कहीं चन्द्रकांत मणि और कहीं कर्कराग लगे हुए थे। इस प्रकार धूलिसाल (चहारदीवारी) की शोभा मनोहारी थी। उसमें चार द्वार थे जो मणिमय तोरणों से सजे हुए थे। उनके बाहर मणि निर्मित बावड़ी थी जो निर्मल जल से आपूर थी। दिशाओं में चार ऊंचे मान स्तंभ थे जो त्रिभुवन के मान दलन करने के प्रतीक थे। उनमें चारों दिशाओं में जिन प्रतिमा रखी हुई थी। उनके आगे पुष्पों से आच्छादित निर्मल जल से भरी परिखा थी ।।10।।

(11–13)

परिखा के तट पर अनेक प्रकार के फूलों से अलंकृत विशाल फुलवाड़ी थी, उसका चार दरवाजों से युक्त अत्यन्त ऊंचा शोभा सम्पन्न प्राकार था। उसके आगे एक बड़ा उपवन था जो विविध वृक्षों से भरा हुआ था, उसके आगे रतनसार वेदी फिर प्राकार उसके आगे देववृक्ष, फिर शाल वृक्ष, फिर रत्नसार और उनके ऊपर अशोक वृक्ष बनाये गये। उनके नीचे मणि जटित सिंहासन, गंध कुटि और अनेक प्रकार की मालाओं से उनको शोभित किया गया। उनके बाद अनेक प्रकार के सभा मण्डप थे। उनमें पांच वेदियाँ और उनसे मण्डित मणि-रचित समवशरण था। उस मण्डप का हर पोल मणि तोरण से सज्जित था। चारों दिशाओं में बीस हजार सोपान थे। प्रथम पोल व्यन्तरों द्वारा और द्वितीय पोल नाग सुरेश्वर द्वारा रक्षित था। वहीं मणिदीप्त नवनिधान मंगल द्रव्यनिधियां आदि थी। प्राकार के भीतर दोनों भागों में दो-दो नृत्य शालाएं थीं जिनके आगे देवों से व्याप्त चार वन थे। उन वनों में जिनबिम्बों से विराजित जिनप्रतिमा सहित चार चैत्य वृक्ष थे, मणिनिर्मित तटों से युक्त तीन-तीन वापिकाए थीं अनेक प्रकार के सभा मण्डप थे जो अनेक क्रीड़ा पर्वतों से विभूपित थे। ये क्रीड़ा पर्वत जल की धारा वहाने वाले यन्त्रों तथा भौंरों से व्याप्त लतामण्डपों से विभूपित थे। प्राकारों के भीतर विशाल बारह कोठे थे जिनके आगे मणि रचित चार तोरणों से विभूपित धवलावर्ण की वेदी थी। उसके आगे तीन पीढ थे जो अनेक प्रकार के रत्नों से विभूपित थे। प्रथम पीढ पर भी धर्मचक्र था जो एक हजार आरों से युक्त था, द्वितीय पीढ पर श्री अष्टकेतु और तृतीय पीढ पर श्री देवश्रेष्ठ विराजित थे। उसके बाद रत्नजटित सिंहासन और उसके ऊपर तीन छत्र शोभित थे। उसके नीचे निरवलम्ब परमेश्वर थे। वहीं भवनवासी 20, व्यंतर 16, कल्पवासी 24, सूर्य और चन्द्र इस तरह 64 देव चमर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ढुला रहे थे। सिंहासन के बाहर गंधगेह (गंधकुटी) थे जो अनेक प्रकार के पुष्पों से सज्जित थे वहां सारी पृथ्वी चदंन से सिञ्चित थी, सुवासित थी, सर्वत्र कुसुम वृष्टि हो रही थी, रंगावलियां छोड़ी जा रही थीं। और भी इसी तरह की अन्य वस्तुएं लाने में यक्ष जुटे हुए थे। इसके बाद दुन्दुभी बजाई गई, चारों निकायों के देव जय जयकार करते हुए चल पड़े।

(14)

सुरेन्द्र ऐरावत पर आरूढ था, दिग्पाल भी सपरिवार चल रहे थे। आकाश में दुन्दुभी का शब्द गर्जित हुआ जिससे समुद्र की लहरों जैसी तेज आवाज आई। धवल वर्ण के विमान समुद्र के फेन जैसे लग रहे थे जिसमें सुरवाहन जलचर का संदेह पैदा कर रहे थे। वहीं छत्र, कमल, विद्रुम, मुक्ता फल, धूम मण्डल की भी अनुपम शोभा थी। वहीं शंख श्वेत पक्ष जैसे लग रहे थे। वाडवाग्नि ऐरावत जैसी प्रतीत हो रही थी। अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे। इस प्रकार बड़ी धूमधाम से नृत्य करते हुए देवगण केवली भगवान के पास पहुंचे।

(15)

सिंहासन के बीच भगवान चन्द्र के समान विराजमान थे। वे चार घातिया कर्मों के क्षय होने के कारण अतिशय और प्रातिहार्यों से युक्त थे। जहां-जहां वे विहार करते थे वहां-वहां सौ-सौ योजन तक दुर्भिक्ष नहीं रहता था। गगन विहारी जीव निर्भय होकर विहार करते थे। किसी को कोई उपसर्ग नहीं होता था। भगवान का चतुर्मुखी रूप छाया विहीन था, लोचन निष्पंद था, सकल विद्याएं मानों सनाथ हो गई केशवृद्धि रुक गई। इत्यादि दस अतिशय हुए संसार में उनका तीर्थरथ चला सर्वत्र जीवों में मैत्री जागृत हुई, वृक्ष, पुष्पों और फलों से आच्छादित हो गये, पृथ्वी निर्मल दर्पण के समान निर्दोष दिखी, शीतल समीर प्रवाहित होने लगा। गगन मण्डल निर्मल हो गया, आठ मंगल और धर्मचक्र प्रगट हुए। मागधी भाषा में दिव्यध्वनि खिरी, देवों ने स्तुति की। इस तरह दिव्य अतिशयों और निधियों से युक्त केवली भगवान चन्द्रप्रभ की आराधना करते हुए देवगण समवशरण में यथा स्थान बैठ गये।

(16)

देवों ने बड़ी भक्ति और विनम्रता पूर्वक हाथ जोड़कर भगवान से प्रार्थना की कि हे भगवान! हमारे चतुर्गतियों के संसारभ्रमण को नष्ट कीजिए। हे परमेश्वर! आप आत्मरूप हो, रत्नत्रय स्वरूप हो, आपने आत्म स्वरूप को प्राप्त कर लिया है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतः अब पर द्रव्यों से हमारे भावों को मुक्त कीजिए। आपने ज्ञानामृत स्वभाव को पा लिया है, अतः अब संसार में जन्म-मरण कराने वाली कषायों को छुड़ाइए। आप परमात्मा हैं, आप समस्त पदार्थों के दृष्टा हैं, एक रूप हैं, रूपनिर्मुक्त हैं, शीतल हैं, शिवप्राप्ति में सहायक हैं, कर्ता, कर्म, क्रिया आदि कारकों से आपका चित्त उन्मुक्त है, अब और कौनसा परिग्रह हैं जो आपको छोडना है। जो पर्यायमुक्त द्रव्य समूह है उसे आपने अपने निर्मल आत्मज्ञान से जान लिया है। जो त्रिभुवन के भव्य जीव आपके संपर्क से शुद्ध हुए हैं। आपकी जितनी भी स्तुति की जाये, थोड़ी है। अंगुलि पर गणनीय है। जो मन-वचन से आपकी स्तुति करता है वह केवलज्ञान को प्राप्त कर लेता है। आपको जो थोड़ा भी जान लेता है उसके दुःख दूर हो जाते हैं। इस प्रकार सुरेश्वर द्वारा स्तुति करने के बाद सभी देवगण उपशम भाव से अपने-अपने कोठे में बैठ गये।

(17)

प्रथम कोठे में मुनिराज, दूसरे में कल्पवासिनी देवियाँ, तीसरे में आर्यिकाएँ, चौथे में ज्योतिषी देवियां, पांचवें में व्यंतर देवियाँ, छठे में भवनवासिनी देवियां, सातवें में भवनवासी देव, आठवें में व्यंतर देव, नौवें में ज्योतिष्क देव, दसवें में कल्पवासी देव, ग्यारहवें में सुशील मनुष्य और बारहवें में अतामस तिर्यञ्च बैठे। अपने चिरकालीन वैरभाव को छोड़कर प्राणी समता भाव को प्राप्त हुए। व्याघ्र शावक गाय का स्तन-पान करने लगा, मूषक मार्जार के बच्चे के साथ खेलने लगा, नेवला सर्प का मुंह चुंबन करने लगा। सिंह और हाथी अपना दर्प छोड़कर मिलने लगे। उस समय न किसी का जन्म-मरण हुआ, न कोई भूख और तृष्णा से पीड़ित हुआ और न किसी ने क्रूरकर्म किये। किसी को निद्रा, रोग, कंदर्पमान, पीड़ा, भय, दुष्ट भाव आदि भी नहीं हुए।

इस प्रकार भव्यजन निर्मल मन होकर बारहों कोठों में यथास्थान बैठ गये और बाद में हाथ जोड़कर धर्मोपदेश के लिए प्रार्थना की।

यहां मैंने (अनुवादक ने) विषय का यथावश्यक विस्तार कर दिया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्यारहवी संधि

(1)

इसके बाद अमृतस्वभावी दिव्यध्वनि खिरी। जिसे मागधवाणी कहा गया है। उसे सभी संसारी जीवों ने अपनी-अपनी भाषा में समझ लिया। गणधर ने उसका विस्तार किया। परमेश्वर ने सप्त तत्वों का व्याख्यान किया। उन्होने कहा–प्रत्येक द्रव्य में तीन तत्त्व रहते हैं–उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। तत्त्व सात हैं–जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इन सप्त तत्वों की विशद व्याख्या लोगों के संदेहों को दूर करने वाली होती है। जीव द्रव्य के दो भेद हैं–संसारी और सिद्ध। संसारी जीव के भी दो भेद हैं–त्रस और स्थावर। त्रस जीवों के चार और स्थावर जीवों के पांच भेद होते हैं। पुन: स्थावर के दो भेद हैं–सूक्ष्म और बादर। त्रस-स्थावर के भी दो भेद हैं–पर्याप्तक और अपर्याप्तक ॥1॥

(2)

त्रस जीव चार प्रकार के हैं–द्विइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। दो इन्द्रिय जीवों के स्पर्शन और रसना इन्द्रिय होती हैं। तीन इन्द्रिय जीवों के स्पर्शन, रसना और घ्राण इन्द्रियां होती हैं। चतुरिन्द्रिय जीवों के स्पर्श, न रसना, घ्राण और चक्षु इन्द्रियां होती हैं तथा पंचेन्द्रिय जीवों के स्पर्शन रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियां होती हैं। इनमें कुछ संज्ञी भी होते हैं। एकेन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण कुछ अधिक एक हजार योजन है। डीन्द्रिय जीव के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण बारह योजन है। द्वीन्द्रिय जीवों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण तीन कोश है और चतुरिन्द्रिय जीव के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण एक योजन है। पंचेन्द्रिय जीवों के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण एक हजार योजन है। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय पर्यन्त सभी जीवों का जन्म संमूर्छन ही हुआ करता है। पशु-पक्षियों और मनुष्यों का जन्म गर्भ से होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। देव और नारकियों का जन्म औपपादिक होता है। देवों और नारकियों के अचित्त योनि होती है। गर्भ जन्म वालों की मिश्र–सचित्ताचित्त योनि होती है और शेष जीवों के तीनों तरह की योनि होती है–सचित्ता, अचित्ता और सचित्ताचित्ता। गर्भ जन्म वाले तथा देवगति के जीवों के मिश्र रूप शीतोष्ण योनि होती है, तेजस्कायिक जीवों के उष्ण योनि होती हैं, शेष जीवों के तीनों ही प्रकार की योनि हुआ करती है–शीत, उष्ण और शीतोष्ण। नरक गति तथा एकेन्द्रिय जीवों के और देवों के संवृत योनि ही हुआ करती है। गर्भ जन्म वालों के मिश्र–सुसंवृतविवृत, किन्तु शेष जीवों के तीनों ही–संवृत, विवृत, और संवृतविवृत योनि हुआ करती हैं। पृथिवी कायिकजीवों की उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष, जल कायिक की सात हजार, वायु कायिक की तीन हजार, वनस्पति कायिक की दस हजार और तेजस्कायिक जीवों की उत्कृष्ट आयु केवल तीन दिन की है, द्वीन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु बारह वर्ष की, त्रिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु एक कम पचास दिन की, चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु छह मास की और पंचेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु एक पूर्व कोटि की है ॥2॥

(3)

इन्द्रियों का आकार स्पर्शनेन्द्रिय के सिवाय चार का नियत हे और स्पर्शनेन्द्रिय का अनियत है, श्रोत्रेन्द्रिय का आकार यवनाली के सदृश, चक्षुरिन्द्रिय का आकार मसूर अन्न विशेष के समान, घ्राणेन्द्रिय का आकार अतिमुक्तक पुष्प विशेष के तुल्य और रसना इन्द्रिय का आकार क्षुरप्र (खुरपा) सदृश हुआ करता है। स्पर्शनेन्द्रिय का आकार शरीर के अनुसार नाना प्रकार का होता है। संज्ञी के स्पर्शन, रसना, घ्राण का श्रोत्र नौ-नौ योजन, क्षेत्र और चक्षु का सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ से कुछ अधिक है। मन के दो भेद हैं–द्रव्यमन और भाव। द्रव्य हृदय में अष्टावर्त वर्त कमल के समान है और भावमन आत्मा रूप है। इसके बाद संक्षेप में त्रिभुवन का वर्णन किया जायेगा ॥2॥

(4–5)

तीन वलयों से वेष्टित रत्नप्रभा आदि सात नरक पृथ्वियां सात राजू प्रमाण नीचे अधिष्ठित हैं। प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है। जिसके तृतीय भाग अब्बहुल के मध्य भाग में नरक बिल हैं। वे इन्द्रक श्रेणि और पुरुष प्रकीर्णक के रूप में तीन विभागों में विभाजित हैं। इसके 13 नरक प्रस्तार हैं और उनमें सीमान्तक निरय रौरव आदि 13 ही इन्द्रक हैं। शर्कराप्रभा में 11 नरक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तार और 11 इन्द्रक हैं। बालुकाप्रभा में 9 नरक प्रस्तार और 9 इन्द्रक हैं। पंकप्रभा में 7 नरक प्रस्तार और 7 इन्द्रक हैं। धूमप्रभा में 5 नरक प्रस्तार और 5 इन्द्रक हैं। तमःप्रभा में तीन नरक प्रस्तार और तीन ही इन्द्रक हैं। और महातमःप्रभा में एक ही इन्द्रक नरक है। सीमान्तक इन्द्रक नरक की चारों दिशाओं और विदिशाओं में क्रमबद्ध नरक हैं तथा मध्य में प्रकीर्णक दिशाओं की श्रेणी में 49-49 नरक हैं, तथा विदिशाओं की श्रेणी में 48-48। निरय आदि शेष इन्द्रकों में दिशा और विदिशा के श्रेणीबद्ध नरकों की संख्या क्रम से कम होती गई है। सातवें की विदिशाओं में नरक नहीं हैं। इन सातों पृथ्वियों में कुछ नरक संख्यात योजन विस्तार वाले और कुछ असंख्यात लाख योजन विस्तार वाले हैं। पांचवे भाग तो में संख्यात योजन बिस्तार वाले हैं और चार भाग असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं। इन्द्रक बिलों की गहराई प्रथम नरक में एक कोश और आगे क्रमशः आधा-आधा कोश बढ़ती हुई सातवें में चार कोश हो जाती है। श्रेणीबद्ध की गहराई अपने इन्द्रक की गहराई से तिहाई और अधिक है। प्रकीर्णकों की गहराई, श्रेणी और इन्द्रक दोनों की मिली हुई गहराई के बराबर है।

इन नरकों में नारकी जीव तीव्र अशुभ कर्मों के उदय से तथा विभंगावधि से पूर्वकृत वैर के कारणों को जानकर निरन्तर एक दूसरे को तीव्र दुःख उत्पन्न करते रहते हैं। आपस में मारना, काटना, छेदना, घानी में पेलना आदि भयंकर दुःख कारणों को जुटाते रहते हैं। यहां तीव्रतम उष्णवेदना और शीतवेदना रहती है। इन सातों पृथ्वियों में नारकियों की आयु क्रमशः एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस, और तेतीस सागर प्रमाण है। प्रथम पृथ्वी में नारकियों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष है, दूसरी पृथ्वी में जघन्य आयु वही है जो प्रथम पृथ्वी में उत्कृष्ट आयु है। उसी क्रम से सातवीं पृथ्वी तक के नारकीय की जघन्य आयु समझी जा सकती है। अर्थात् पूर्व पृथ्वी के नारकियों की जो उत्कृष्ट आयु है वही उससे अगली पृथ्वी के नारकियों की जघन्य आयु जाननी चाहिए। पहली पृथ्वी में तीस लाख नरक (नारकीयों के बिल), दूसरी में पच्चीस लाख, तीसरी में पन्द्रह लाख, चौथी में दस लाख, पांचवी में तीन लाख, छठी में पांच कम एक लाख और सातवीं में केवल पांच ही हैं ॥4–5॥

(6–7)

प्रथम नरक में शरीर की ऊँचाई सप्तधनुष तीन हाथ और छः अंगुल है। उससे आगे की शर्कराप्रभा आदिक पृथ्वियों में क्रमशः उसका प्रमाण दुगना होता है। इस तरह सातवें नरक में 5000 धनुष हो जाता है। असंज्ञी प्रथम पृथ्वी तक,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सरीसृप द्वितीय तक, पक्षी तीसरी तक, सर्प चौथी तक, सिंह पांचवी तक, स्त्रियां छठवीं तक और मत्स्य तथा मनुष्य सातवीं पृथ्वी तक उत्पन्न होते हैं। नारकी न देवों में उत्पन्न हो सकते हैं और न विकलत्रय में हो सकते हैं। नारक जीव मरने के बाद नरक से निकलकर तिर्यंग्योनि अथवा मनुष्य गति में ही जन्म ग्रहण कर सकता है, अन्यत्र नहीं। नरक से निकलकर जो जीव मनुष्य पर्याय को धारण किया करते हैं, उनमें से कोई-कोई जीव तीर्थंकर भी हो सकते हैं। परन्तु आदि की चार भूमियों से निकले हुए जीव मनुष्य होकर मोक्ष को भी जा सकते हैं; पर बलदेव, वासुदेव चक्रवर्ती नहीं होते। आदि की पांच भूमियों के जीव मरने के अनन्तर मनुष्य होकर संयम को धारण कर सकते हैं। छह भूमियों के निकले हुए जीव मनुष्य होकर संयमासंयम–देशव्रत को धारण कर सकते हैं, और सातवीं भूमि तक निकले हुए जीव सम्यग्दर्शन को धारण कर सकते हैं। प्रथम भूमि में चौबीस मुहुर्त तक नारकों की उत्पत्ति नहीं होती, दूसरे में सात दिन तक नहीं होती इसी तरह आगे क्रमशः एक पक्ष, एक माह, दो माह, चार माह और छह माह का विधान है। सभी नारकी नपुंसक होते हैं सौर अत्यन्त पीड़ा पाते हैं। संसार में पाप के कारण यह दुर्गति होती है। उनके शरीर के खण्ड-खण्ड होते हैं, और उनके कोई संहनन नहीं होता ।।6–7।।

(8)

आदि के चार नरकों में उष्णवेदना है। पांचवें के दो लाख बिलों में उष्णवेदना तथा शेष में शीतवेदना है। छठवें और सातवें में शीतवेदना ही है। अर्थात् 82 लाख नरक उष्ण हैं और दो लाख नरक शीत। उनके शरीर अशुभ नाम कर्म के उदय से हुंडक संस्थान वाले वीभत्स होते हैं। यद्यपि उनका शरीर वैक्रियक है फिर भी उसमें मल, मूत्र, पीब आदि सभी वीभत्स सामग्री रहती है। प्रथम और द्वितीय नरक में कापोत लेश्या, तृतीय नरक में ऊपर कापोत तथा नीचे नील, चौथे में नील, पांचवें में ऊपर नील और नीचे कृष्ण और सातवें में परमकृष्ण द्रव्यलेश्या होती है। भावलेश्या तो छहों होती हैं और वे अन्तर्मुहूर्त में बदलती रहती हैं। क्षेत्र के कारण वहाँ के स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और परिणमन अत्यन्त दुःख के कारण होते हैं। मुर्मुर (उपलों की अग्नि) के समान अंगारवाली वहां की भूमि तपे लोहे के समान स्पर्श-युक्त पाषाणों एवं छुरा के समान तीक्ष्ण बालु से संयुक्त तथा सुई के समान नुकीले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवीन तृणों से व्याप्त है अत्यन्त दुर्गन्धित कीड़ों के समूह से व्याप्त तालाब हैं। सर्वत्र क्रूर प्राणी हैं जो परस्पर मारण क्रिया करते रहते हैं। जो खाते हैं वह विष समान हो जाता है। जो सूंघते हैं वह नासिका को फोड़ देता है, जो भी स्पर्श करते हैं दुःख का कारण बन जाता है, जो भी देखते हैं, वह चक्षु विनाशक हो जाता है। जो भी होता है,सभी दुःख का कारण बन जाता है। यह संक्षेप में नारकियों के दुःखों का वर्णन है ॥8॥

(9–10)

इस प्रकार नारकीय जीवों को अवर्णनीय शारीरिक वेदना होती है, घोर, तीव्र, भयानक दारुण दुःख प्राप्त होता है, तरह-तरह की व्याधियां होती हैं। शक्ति, तलवार आदि अस्त्रों से शरीर के खण्ड-खण्ड कर दिये जाते हैं, वे पुनः पुनः पिण्ड बन जाते हैं। एक क्षण के लिए भी उन्हें सुख नहीं मिलता। कुअवधिज्ञान के कारण, स्वभाव से तथा विक्रिया से भी ये यातनाएं उन्हें प्राप्त होती हैं। मैं राजा, चक्रवर्ती रहा हूं, मैंने बड़े-बड़े राजाओं को पराजित किया है आदि प्रकार से मानसिक दुःखों से ग्रसित रहते हैं, पूर्वभव के वैर के कारण परस्पर संग्राम करते हैं, अग्नि में डाल देते हैं। इस तरह भयंकर छेदन-भेदन होने पर भी नारकियों की अकाल मृत्यु नहीं होती। वे एक-दूसरे के शरीर को चूर्ण-चूर्ण कर देते हैं, तप्त तेल की कढ़ाई में डाल देते हैं, तीव्र क्षार जल के कुण्ड में फेंक देते हैं, तपे हुए लोहे को पिलाते हैं, पर कलत्र से संपर्क करने के फलस्वरूप जलते हुए लोहस्तम्भ से चिपका देते हैं। शीत और उष्ण वेदनाओं से भी वे संतप्त रहते हैं। इस प्रकार नारकी जीव आयु पर्यन्त हर क्षण तीव्रतम दुःख भोगते रहते हैं। इसका विशेष चिंतनकर धर्म की ओर मन लगाना चाहिए ॥9–10

(11-12)

इस प्रकार संक्षेप में नारकियों का वर्णन किया। अब भवनवासी देवों की चर्चा करते हैं। वे भवनवासी देव दस प्रकार के होते हैं-असुर, नाग, विद्युत, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप और दिक्कुमार। ये तालाब, पर्वत और वृक्षों के आश्रित होकर रहते हैं। इन सभी को 'कुमार' संज्ञा प्राप्त है इसलिए कि वे कुमारों के समान रूप, सौन्दर्य, परिधान आदि से संपन्न होते हैं। असुर कुमारों की एक सागर, नाग कुमारों की तीन पल्य, सुपर्ण कुमारों की ढाई पल्य।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वीप कुमारों की दो पल्य तथा शेष छह कुमारों की डेढ पल्य उत्कृष्ट स्थिति है। और दस हजार वर्ष जघन्य स्थिति है। उनमें असुर कुमारों की शरीर की ऊंचाई पच्चीस धनुष है और शेष नौ के शरीर की ऊंचाई दस धनुष। इन देवों के विभिन्न प्रकार की विक्रियाएँ हुआ करती हैं। वे भवप्रत्यय हैं। असुर कुमार घन शरीर के धारक संपूर्ण अंगोपांगों द्वारा सुन्दर कृष्ण वर्ण महाकाय और रत्नों से उत्कट मुकुट के द्वारा दैदीप्यमान हुआ करते हैं। इनका चिन्ह चूड़ामणिरत्न है। नागकुमार शिर और मुखक भागों में अत्यधिक श्याम वर्ण वाले और मृदु तथा ललित गति वाले हुआ करते हैं। इनके शिर पर सर्प का चिन्ह हुआ करता है। विद्युत्कुमार स्निग्ध प्रकाशशील उज्ज्वल शुक्लवर्ण के धारण करने वाले होते हैं। इनका चिन्ह वज्र है। सुवर्णकुमार ग्रीवा और वक्षस्थल में अति सुन्दर श्याम किन्तु उज्ज्वल वर्ण के धारक हुआ करते हैं। इनका चिन्ह गरुड़ है अग्निकुमार और वातकुमार का वर्ण शुद्ध है, स्तनितकुमार और उदधिकुमार का वर्ण कृष्ण श्याम है, द्वीपकुमार उज्ज्वल वर्णी है तथा दिक्कुमार का वर्ण श्याभ है। नागकुमारों के 84 लाख भवन हैं। सुवर्णकुमारों के 72 लाख भवन है। विभव धरणेन्द्र के समान हैं। विद्युत्कुमार अग्निकुमार स्तनित कुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार प्रत्येक के 76 लाख भवन हैं। वातकुमारों के 96 लाख भवन हैं। उत्तराधिपति प्रभञ्जन के 96 लाख भवन हैं। इस तरह कुल मिलाकर सात करोड़ 72 लाख भवन है। इन प्रन्येक भवनों में जिनबिंब प्रतिष्ठित हैं। यह भवन वासी देवों का संक्षिप्त वर्णन है।

(13)

व्यंतर देवों के आठ भेद हैं—किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच। इनके भी भेद-प्रभेद होते हैं। इस जंबूद्वीप से तिरछे असंख्य द्वीप-समुद्रों के बाद नीचे खर पृथिवी भाग में दक्षिणाधिपति किन्नरेन्द्र के असंख्यात लाख नगर हैं। इसके चार हजार सामानिक, तीन परिषद्, सात अनीक, चार अग्रमहिषी, और सोलह हजार आत्मरक्ष हैं। ये अजनीक द्वीप में रहते हैं। किन्नरेन्द्र किंपुरुष का भी इतना ही परिवार है। ये वज्रधातकी द्वीप में रहते हैं। महोरग सुवर्ण द्वीप में, गंधर्व मनुष्य लोक में, यक्ष वज्र में, राक्षस रजत द्वीप में, भूत हिंगुलक में और पिशाच हरिदाल में निवास करते हैं। व्यंतरों के सामानिक आदि विभव परिवार एक जैसा है। भूमितल में भी व्यन्तर रहते हैं द्वीप, पर्वत, समुद्र, देश, ग्राम, नगर तिगड्डा चौराहा, घर, गली जलाशय उद्यान, देवमन्दिर आदि में सर्वत्र उनकी अवस्थिति है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(14–15)

ज्योतिष्क देव पांच प्रकार के हैं—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, और प्रकीर्णक तारागण। उनमें से जंबूद्वीप में दो सूर्य, लवणसमुद्र में चार सूर्य, धातकीखण्ड में बारह सूर्य, कालोदधि समुद्र में ब्यालीस और पुष्कर द्वीप के मनुष्य क्षेत्र सम्बन्धी अर्ध भाग में बहत्तर सूर्य हैं। इस प्रकार मनुष्य लोक में कुल मिलाकर 132 सूर्य होते हैं। चन्द्रमाओं का विधान भी सूर्यविधि के समान ही समझना चाहिए। प्रत्येक चन्द्रमा का परिग्रह इस प्रकार है–28 नक्षत्र, 88 ग्रह और 66975 कोड़ाकोड़ी तारे। इनका अस्तित्व सभी द्वीप समुद्रों में है। नक्षत्र विमानों का उत्कृष्ट विस्तार एक कोश है। और तारा विमानों का उत्कृष्ट विस्तार $\frac{1}{2}$ गव्यूत है। राहु के विमान रजतमय शुक्र हैं एक गव्यूति लम्बे चौडे हैं। बृहस्पति के विमान सुवर्ण तथा मोती के समान कान्ति वाले और कुछ कम गव्यूति प्रमाण लम्बे चोडे हैं। बुध के विमान पीले और शनैश्चर के विमान लाल रंग के हैं। मंगल के विमान तप्त स्वर्ण के समान। बुध आदि के विमान आधे गव्यूत लम्बे चौड़े हैं। शुक्र आदि के विमान राहू के विमान बराबर लम्बे चौडे है। ज्योतिषियों की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक पल्य है और जघन्य स्थिति पल्य के आठवें भाग प्रमाण है। चन्द्र की उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्य, सूर्य की एक-एक हजार वर्ष अधिक एक पल्य, शुक्र की एक सौ वर्ष अधिक एक पल्य तथा बृहस्पति की पूर्ण एक पल्य है। शेष बुध आदि ग्रहों की और नक्षत्रों की आधे पल्य प्रमाण स्थिति है। तारागण की उत्कृष्ट स्थिति पल्य का चौथा भाग है। तारा और नक्षत्रों की जघन्य स्थिति पल्य के आठवें भाग है। सूर्य आदि की जघन्य स्थिति पल्य के चौथाई भाग प्रमाण है। ये ज्योतिषी देव मनुष्य लोक में मेरु की प्रदक्षिणा करके नित्य भ्रमण करते रहते हैं।

(16)

सौधर्म, ऐशान आदि स्वर्ग, नवग्रैवेयक, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थ सिद्धि में कल्पोपपन्न और कल्पातीत विमानवासियों का निवास है। सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लांतव, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये बारह कल्प हैं। इन सौधर्म आदि कल्पों के विमानों में वैमानिक देव रहते हैं। अच्युत कल्प के ऊपर नव ग्रैवेयक हैं जो कि ऊपर ऊपर अवस्थित हैं। ग्रैवेयकों के ऊपर पांच महाविमान हैं जिनको अनुत्तर कहते हैं। उनके नाम हैं—विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थ सिद्धि। ग्रैवेयकों के ऊपर और सर्वार्थ सिद्धि के नीचे नौ अनुदिश हैं। सौधर्म कल्प से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त सभी का अवस्थान क्रम से ऊपर ऊपर है। सौधर्म कल्प में विमानों की संख्या 32 लाख है। ऐशान कल्प में 28 लाख, सानत्कुमारकल्प में 12 लाख, माहेन्द्र कल्प में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

8 लाख, ब्रह्मलोक में 4 लाख लांतवकल्प में 50 हजार, महाशुक्र में 40 हजार सहस्रार में 6 हजार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्प में 700, अधोग्रैवेयक में 111, मध्यम ग्रैवेयक में 107 और उपरिम ग्रैवेयक में 100 विमान हैं। विजयादिक अनुत्तर विमान 5 ही हैं। इस तरह उर्ध्वलोक में वैमानिक देवों की समस्त विमानों की संख्या 8497023 है। सोलह स्वर्गों में एक-एक इन्द्र है पर मध्य के आठ स्वर्गों में चार इन्द्र हैं। इसके बाद विमानों की ऊंचाई का क्रम निर्दिष्ट है। इनकी अवधिज्ञान की भी सीमा निर्दिष्ट है।

ग्रैवेयकों में से अधस्तन ग्रैवेयक में असंख्यात विस्तार वाले विमान 108 तथा संख्यात विस्तार वाले 3 (=111) हैं, मध्यम ग्रैवेयकों में 89 विमान असंख्यात विस्तार वाले तथा 18 विमान संख्यात विस्तार वाले (= 107) हैं, उपरिम ग्रैवेयक में 74 असंख्यात विस्तार वाले और 17 संख्यात विस्तार वाले (=91) विमान कहे गये हैं। अनुदिशों में 8 असंख्यात विस्तार वाले विमान तथा 1 संख्यात विस्तार वाला (=9) हैं। उसी प्रकार से अनुत्तरों में भी संख्यात विस्तार वाला 1 तथा असंख्यात विस्तार वाले 4 (=5) विमान हैं। इस तरह 1699380 विमान संख्यात विस्तार वाले तथा 6797643 विमान असंख्यात विस्तारवाले हैं। पूर्व दो कल्पों में स्थित प्रासाद 600 योजन और आगे दो कल्पों में 500 योजन ऊंचे हैं। ये प्रासाद ब्रह्म-ब्रह्मोतर में 450, लान्तव कापिष्ठ में 400, शुक्र-महाशुक्र में 350, शतार-सहस्रार में 300, आनतादि शेष चार में 250, अधोग्रैवेयक में 200, मध्यम ग्रैवेयक में 150 और उपरिम ग्रैवेयक में 100 योजन ऊंचे हैं। यहां अनुदिशों में स्थित वे प्रासाद 50 योजन और अनुत्तरों में 25 योजन मात्र ऊंचे हैं।

(17–18)

ऊपर-ऊपर के देवों का अवधिज्ञान अधिकाधिक है। सौधर्म और ईशान कल्प के देव अवधिज्ञान के विषय की अपेक्षा रत्नप्रभा पृथिवी तक को देख सकते हैं। तिर्यक्-पूर्वादि दिशाओं की तरफ असंख्यात लक्ष योजन तक देख सकते हैं। ऊपर ऊर्ध्व दिशा में अपने विमान पर्यन्त ही देख सकते हैं। सनत्कुमार और महेन्द्र स्वर्ग के देव शर्करा पृथ्वी तक देख सकते हैं। विक्रिया ऋद्धि से सप्तम पृथ्वी तक की भी सीमा हो सकती है। ब्रह्मलोक और लान्तव विमान वाले देव बालुका प्रभा पर्यन्तशुक्र सहस्रार वाले पङ्कप्रभा पर्यन्त आनत प्राणत और आरण-अच्युत वाले धूम प्रभा पर्यन्त, अधस्तन ग्रैवेयक और मध्यम ग्रैवेयक वाले तम प्रभा पर्यन्त और उपरिम ग्रैवेयक वाले महातमःप्रभा पर्यन्त तथा पांच अनुतर और नौ अनुदिश विमानों के देव समस्त लोक नाड़ी को देख सकते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थात् प्रथम दो कल्पों के देव धर्मा पृथिवी तक, आगे के दो कल्पों के देव दूसरी पृथिवी तक, आगे के चार कल्पों के देव तीसरी पृथ्वी तक, शुक्र आदि चार कल्पों के देव चौथी पृथ्वी तक, आनत आदि चार कल्पों के देव पांचवी पृथ्वी तक, ग्रैवेयकवासी देव छठी पृथ्वी तक तथा आगे अनुदिश व अनुत्तरों में रहने वाले देव सातवी पृथ्वी तक विक्रिया करते हैं। उक्त देवों के दर्शन व अवधिज्ञान का बिषय प्रमाण विक्रिया के समान ही माना जाता हैं। अनुत्तर विमानवासी देव मूर्तिक कर्मों के अनंतवे भाग को, कर्मयुक्त जीवों को तथा समस्त लोकनाली को भी देखते हैं। सौधर्म ऐशान कल्प तक 7 दिन, सानत्कुमार और माहेन्द्र एक पक्ष (15 दिन), व्रह्म से कापिष्ठ तक एक मास, शुक्र से लेकर सहस्रार तक दो मास, आनत से अच्युत कल्प तक चार मास तथा ग्रैवेयक आदि शेष विमानों में आगमों के अनुसार छह मास अन्तर जन्म का और उतना ही मरण का भी अन्तर जानना चाहिए। इसके विषय में मतान्तर भी है जिसे लोकविभाग (10, 298-302) में देखा जा सकता है। प्रथम दो कल्पों के देव सात हाथ ऊंचे आगे के दो कल्पों के देव छह हाथ ऊंचे, व्रह्मा और लांतव कल्पों के देव पांच हाथ ऊंचे, शुक्र और सहस्रार कल्पों के देव चार हाथ ऊंचे, शेष आनतादि चार कल्पों के देव तीन हाथ ऊंचे, ग्रैवेयकों के दो हाथ ऊंचे, अनुत्तर व अनुदिशों के देव डेढ़ हाथ ऊंचे, तथा सर्वार्थसिद्धि के देव एक हाथ प्रमाण ऊंचे होते हैं।

असुर कुमारों की 1 सागर, नाग कुमारों की 3 पल्य, सुपर्ण कुमारों की $2\frac{1}{2}$ पल्य, द्वीप कुमारों की 2 पल्य तथा शेष छह कुमारों की $1\frac{1}{2}$ पल्य उत्कृष्ट स्थिति है। सौधर्म-ऐशान स्वर्ग में कुछ अधिक 2 सागर, सानत्कुमार-माहेन्द्र में 7 सागर, व्रह्म-व्रह्मोत्तर में 10 सागर लांतव-कापिष्ठ में 14 सागर, शुक्र-महाशुक्र में 16 सागर, शतार-सहस्रार में 18 सागर, आनत-प्राणत में 20 सागर, आरण-अच्युत में 22 सागर उत्कृष्ट स्थिति है। अधो ग्रैवेयकों में क्रमशः 23,24,25, मध्यम ग्रैवेयकों में क्रमशः 26,27,28 और उपरि ग्रैवेयकों में 29,30 और 31 सागर उत्कृष्ट स्थिति है। अनुदिश विमानों में 32 तथा विजयादि और सर्वार्थ सिद्धि में 33 सागर हैं। सौधर्म और ईशान स्वर्ग की जघन्य स्थिति एक पल्य है। इन दो स्वर्गों तथा आगे के स्वर्गों की जो उत्कृष्ट स्थिति है वही उनके आगे के स्वर्गों की जघन्य स्थिति हो जाती है। ईशान स्वर्ग तक के देव संक्लिष्ट कर्म वाले होने से मनुष्यों की तरह कायप्रविचारी (शरीर से मैथुन करने वाले) होते है। सानत्कुमार- माहेन्द्र में परस्पर अंगस्पर्श करने से, चतुर्थ से आठवें स्वर्ग तक सुदर रूप देखकर, नौ से 12 वें स्वर्ग तक मधुर संगीत श्रवण, मृदु हास्य, भूषणों की झकार आदि के शब्दों को सुनने से तथा तेरहवें से सोलहवें स्वर्ग तक के देव-देवियां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मन से प्रविचार करते हैं। कल्पातीत-ग्रैवेयकादि वासी देव प्रविचार से रहित हैं। उनके कामवेदना होती ही नहीं है।

(19)

स्वयंभूरमण पर्यन्त असंख्यात द्वीप समुद्र तिर्यक्, समभूमि पर तिरछे व्यवस्थित हैं। अतः इनको तिर्यक्लोक कहते हैं। अति विशाल महान् जम्बू वृक्ष का आधार होने से यह द्वीप जंबूद्वीप कहलाता हैं। वह एक लाख योजन विस्तृत है और सभी द्वीप के बीच स्थित है।इसके बीच नाभि की तरह गोलाकार सुमेरु पर्वत है। इसके दक्षिण में भरत क्षेत्र और उत्तर में ऐरावत क्षेत्र अवस्थित है। भरत क्षेत्र का विस्तार $526\frac{6}{19}$ योजन है। इसके बाद विदेह क्षेत्र पर्यन्त के पर्वत और क्षेत्र क्रमशः दूने-दूने विस्तार वाले हैं। अर्थात् हिमवान् का विस्तार $1052\frac{12}{19}$ योजन, हैमवत का $2005\frac{5}{19}$ योजन, महाहिमवान् का $4010\frac{10}{19}$ यांजन; हरिवर्षका $8421\frac{1}{19}$ योजन, निषध का $1684\frac{2}{19}$ योजन और विदेह का $33684\frac{4}{19}$ योजन है। ऐरावत आदि नील पर्वत पर्यन्त क्षेत्र-पर्वत भरत आदि के समान विस्तार वाले हैं। पूर्व और पश्चिम लवण समुद्र तक लम्बे हिमवन्, महाहिमवन् निषध, नील, और शिखरी ये छः पर्वत हैं। इन पर्वतों के कारण भरत, आदि क्षेत्रों का विभाग होता है अतः ये वर्षधर पर्वत कहे जाते हैं ॥19॥

(20)

हिमगिरि आदि पर्वतों पर पद्म, महापद्म आदि छह सरोवर हैं। प्रथम सरोवर पूर्व-पश्चिम एक हजार योजन लम्बा और उत्तर-दक्षिण पांच सौ योजन चौड़ा है। उसकी गहराई दस योजन है। इसके मध्य में एक योजन का कमल है। इसके पत्ते एक-एक कोस के और कर्णिका दो-दो कोस विस्तृत है। आगे के सरोवरों और कमलों का विस्तार दूना-दूना है। इनमें श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामक देवियां सामानिक और पारिषत्क जाति के देवों के साथ रहती हैं। इनकी आयु एक पल्य की है। हिमवान् हेममय चीन पट्ट वर्ण का है। महाहिमवान् अर्जुनमय शुक्ल वर्ण है, निषध तपनीयमय मध्यान्ह के सूर्य के समान वर्णवाला है। नील वैडूर्यमयी मोर के कंठ के समान वर्ण का है। रुक्मी रजतमय शुक्ल वर्ण वाला है। शिखरी हेममय चीन पट्ट वर्ण का है। उपर्युक्त क्षेत्रों के मध्य में गंगा, सिन्धु आदि चौदह नदियां हैं। इसके पूर्व विदेह और अपर विदेह में सोलह-सोलह क्षेत्र हैं। भरत क्षेत्र का विस्तार $526\frac{6}{19}$ योजन हैं। धातकी खण्ड में दो मेरु पर्वत हैं। पुष्कारार्ध में भी दो मेरु हैं। इस तरह मनुष्योत्तर के पहले चौंतीस क्षेत्र हैं। पांच मेरु हैं ढाई द्वीप हैं। यहां सदैव भोगभूमि रहा करती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(21)

जम्बूद्वीप की अपेक्षा दुगना विस्तार वाला लवण समुद्र इस द्वीप को घेर कर चक्र में नेमि के समान स्थित है। उस समुद्र के मध्य भाग में पूर्व दिशाओं के क्रम से चार पाताल, विदिशाओं के क्रम से चार मध्यम पाताल और दोनों के मध्य आठ अन्तर दिशाओं में एक हजार जघन्य पाताल स्थित हैं। म्लेच्छ दो प्रकार के हैं—अन्तरद्वीपज और कर्मभूमिज। लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र के मिलाकर 96 अन्तरद्वीप माने हैं। अन्यत्र लवण समुद्र की आठों दिशाओं में आठ और उनके अन्तराल में आठ, हिमवान् और शिखरी तथा दोनों विजयार्धों के अन्तराल में आठ, इस तरह चौबीस अन्तरद्वीप हैं। पूर्व दिशा में एक जांघ वाले, पश्चिम में पूंछ वाले उत्तर में गूंगे, दक्षिण में सींग वाले प्राणी हैं। विदिशाओं में खरगोश के कान सरीखे कान वाले, पुड़ी के समान कान वाले, बहुत चौड़े कान वाले और लम्बकर्ण मनुष्य हैं। अन्तराल में अश्व, सिंह, कुत्ता, सूअर, व्याघ्र, उल्लू और बन्दर के मुख जैसे मुख वाले प्राणी हैं। ये सब प्राणी अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ हैं और पल्योपम आयु वाले हैं।

सामान्यतः काल दो प्रकार के हैं—एक अपसर्पिणी और दूसरा उत्सर्पिणी। इन दोनों को कल्पकाल कहा जाता है। दोनों कालों के छह-छह विभाग हैं। जिनका अलग-अलग प्रमाण है। प्रथम काल के मनुष्यों का वर्ण सूर्य के समान, द्वितीय काल के मनुष्यों का वर्ण चन्द्र के समान तथा तृतीय काल के मनुष्यों का वर्ण प्रियंगु पुष्प के समान होता है। इन कालों में मनुष्यों की आयु का प्रमाण यथाक्रम से तीन पल्य, दो पल्य और एक पल्य होता है। भरत और ऐरावत के सिवाय दूसरे क्षेत्रों में काल की प्रवृति अवस्थित है। यथा–कुरुक्षेत्र में (देवकुरु और उत्तरकुरु में) सदा सुषमा-सुषमा काल ही अवस्थित रहता है। यह उत्तम भोग भूमि है। हरि और रम्यक क्षेत्र में सुषमा काल की परिस्थिति हमेशा रहा करती है। यह मध्यम भोगभूमि है। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र में सदा सुषम-दुःषमा काल की प्रवृति रहती है। यह जघन्य भोगभूमि है। यहां मनुष्य पुष्प के प्रभाव से ही उत्पन्न होते हैं। उक्त तीनों कालों में युगल रूप से ही उत्पन्न होकर कल्पवृक्षों से आजीविका करते हैं अर्थात् उन्हें समस्त भोगोपभोग की सामग्री कल्पवृक्षों से ही प्राप्त होती है। इन तीनों कालों में दश प्रकार के कल्प वृक्ष होते हैं पानांग, तुर्यांग, भूषणांग, वस्त्रांग, भोजनांग, आलयांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग और ज्योतिरंग। धीरे-धीरे यह भोगभूमि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अवस्था समाप्त हुई और कर्मभूमि का प्रारम्भ हुआ। प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ने समुचित व्यवस्था दी। त्रेसठ शलाका पुरुष कर्मभूमियों में ही उत्पन्न हुए। चतुर्थ काल के प्रारंभ में शरीर की ऊंचाई पांच सौ धनुष प्रमाण होती है। प्रजाजन धर्मात्मा और पापिष्ठ दोनों प्रकार के होते हैं। क्रमशः बुद्धि व आयु आदि गुणों के हीयमान होने पर चतुर्थ काल में बाद पंचम काल उपस्थित होता है। उसके प्रारंभ में शरीर की ऊंचाई सात हाथ और आयु 120 वर्ष प्रमाण होती है। लोग प्रायः पापिष्ठ होते हैं। पंचम काल के अन्त में तथा छठे काल के आदि में आयु बीस वर्ष से अधिक तथा मनुष्यों के शरीर दो हाथ ऊंचे एवं धूम के समान श्याम वर्ण होकर कुरूप होते हैं। घनघोर मिथ्यात्वी होते हैं। चतुर्थ, पंचम और षष्ठ कालों का प्रमाण एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है।

(23)

स्थावर जीव पांच प्रकार के होते हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक। पृथ्वी कायिक जीव सर्वत्र पाये जाते हैं। कृष्ण, पीत, हरित, श्वेत और रक्त ये पांच वर्ण भेद कायिक जीवों के हैं। इनका आकार मसूर के समान होता है और उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष प्रमाण है। पृथ्वी, शर्करा, बालुका, मृत्तिका और उपल आदि के भेद से भी अनेक प्रकार के हैं। जलकायिक जीव दर्भाकार के होते हैं। वे हिम, अवश्याय आदि के भेद से अनेक प्रकार के हैं। उनकी उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्ष की है। अग्निकायिक जीव सूचिकाग्राकार होते हैं। वे कुलिश, अग्नि, विद्युत, सूर्य, सूर्यकान्तमणि, अंगार, स्फुलिंग पंक्ति जैसे प्रमुख भेद वाले होते हैं। उनका तेज विस्फुरायमान होता है। इनकी उत्कृष्ट आयु केवल तीन दिन की होती है। वायुकायिक जीव ध्वजाकार होते हैं। वात वलय के आधार पर वे रहते हैं। धनवात, तनुवात, उत्कलिका, मंडलि इत्यादि भेद वायुकायिक जीवों के माने गये हैं। इनके प्रतिघात से शब्द ध्वनित होता है। दिशा भेद से भी ये अनेक प्रकार के होते है। इनकी उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्ष की है। वनस्पतिकायिक जीव शैवल, मलक, आद्रक, पणक, वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता आदि के भेद से अनेक प्रकार के हैं। इनकी उत्कृष्ट आयु दश हजार वर्ष की है। इन्हें चार और पांच (वृक्ष, विटपि, गुल्म, वल्ली और तृण) भागों में भी विभाजित किया जाता है। इनकी उत्कृष्ट आयु दश हजार वर्ष की है। इन एकेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण कुछ अधिक हजार योजन है ।।23।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(24)

यह स्थावर जीवों का वर्णन हुआ। अजीव द्रव्य पांच प्रकार का है—धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल। धर्म द्रव्य अमूर्तिक नित्य है, अखंड है। यह जीवों और पुद्गलों के चलने में सहायक है। यह सारे लोकाकाश में व्याप्त है। असंख्य प्रदेशी है। पुद्गल आदि द्रव्यों की स्थिति में जो कारण है वह अधर्म द्रव्य है। वह सारे लोकाकाश में व्याप्त है। अमूर्तिक है, नित्य है, असंख्यप्रदेशी है। पुद्गल के परिणमन में जो कारण है वह काल है। परिणमन कराना उसका उपकार है जिसके निमित्त से दूसरों के परिणमन कराने में प्रवृत्त होता है। व्यवहारत: वह तीन प्रकार का है। पर निश्चयत: वह निश्चल और अभेद्य है। पुद्गल और जीव द्रव्यों को अवगाह देना आकाश का उपकार है। यह अनन्तप्रदेशी है। जिसमें रूप, रस, गंध और स्पर्श हो उसे पुद्गल कहते हैं। वह अणु और स्कन्ध के भेद से दो प्रकार का है। स्थूल और सूक्ष्म आदि भेदों की दृष्टि से वह पुद्गल पृथ्वी आदि के रूप में या छाया आतप आदि के रूप में नाना प्रकार से विभक्त हो जाता है। शरीर इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास आदि के रूप में यह पुद्गल सभी प्राणियों के उपकार में लगा हुआ है। अणु नेत्रेन्द्रिय को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों का विषय है। पुद्गल द्रव्य संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश वाला है। परमाणु अप्रदेशी है। उसमें आदि-मध्य भाग नहीं होता है। ये सब पुद्गल अपने गुणों से निश्चल हैं।

(25)

कर्मों के प्रवेश द्वार को आश्रव कहते हैं। उसके दो भेद पुण्यास्रव और पापास्रव। मन, वचन, कायकी चंचलता (योग) से आश्रव होता है। शुभयोग पुण्याश्रव का तथा अशुभ योग पापाश्रव का कारण है। सकषाय जीवों के सांपरायिक और अकषाय जीवों के ईर्यापथ आश्रव होते हैं। इसी तरह के और भी भेद हैं। सकषाय होने के कारण जीव का कर्म योग्य पुद्गलों से जो सम्बंध होता है उसे बन्ध कहते हैं। यह बन्ध चार प्रकार का है- प्रकृतिबंध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध है। आश्रव के निरोध को संवर कहते हैं। आने वाले कर्मों का जिसके द्वारा निरोध हो उसे संवर कहते हैं। पहले बंधे हुए कर्मों का अंशत: क्षरण होना निर्जरा का लक्षण है। सकल कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है जो परिणामी नित्य भव्य जीव के ही संभव है। ऐसा केवलज्ञानी ने कहा है। सर्वज्ञ चन्द्रप्रभ ने इस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार भव्य जीवों के प्रतिवोधित किया और उनके अज्ञान अंधकार को नष्ट किया। उनकी सभा में तेरानवें गणधर थे जिन्होंने त्रिभुवन के संदेहों को दूर किया। दो हजार तीक्ष्ण बुद्धिवाले पूर्वधारी थे। दो लाख चार सौ उपाध्याय और आठ हजार तीव्र बुद्धिवाले अवधिज्ञानी थे। दस हजार निर्मल आत्मा वाले केवली तथा चौदह हजार विक्रिया ऋद्धि धारी साधु थे आठ हजार तेजस्वी मनःपर्ययज्ञानी थे और सात हजार छह सौ वादी थे। एक लाख अस्सी हजार वरुणा आदि आर्यिकाएँ थी तीन लाख सम्यग्दृष्टि और पांच लाख व्रत आदि से पवित्र श्राविकाएँ थी। असंख चारो प्रकार के देवता थे। इस प्रकार चतुर्विध संघ के साथ बिहार करते हुए संसारी जीवों के पाप मलों को धोया और ज्ञान किरणों का विकास किया।

(26)

आयुछेद जानकर चन्द्रप्रभ भगवान ने एक मास पर्यन्त बिहार का त्याग किया और और सम्मेदाचल (शिखर जी) के शिखर पर मुनिसंघ के साथ प्रतिमायोग धारण किया। फिर भाद्रपद शुकला सप्तमी को शुक्लध्यान के द्वारा समस्त पापों को नष्ट कर सारी बाधाओं से रहित, दश लाख पूर्व प्रमाण आयु के समाप्त होते ही अष्टकर्मों का विध्वंसकर मुक्ति प्राप्त की। उन्होंने तीर्थ की स्थापना कर अपार जन कल्याण किया।

तीर्थंकर चन्द्रप्रभ एक ही समय में सकल पदार्थों को जानते थे, उनकी द्रव्य-पर्यायों को सूक्ष्मता पूर्वक जानते-देखते थे। देखने, सुनने, स्वाद लेने, स्पर्श करने, सूंघने आदि जैसी कियाएं नेत्र, श्रोत्र, रसना स्पर्श, घ्राण जैसी इन्द्रियों के बिना ही करते थे। भूख, प्यास, निद्रा पलकक्रिया आदि से मुक्त थे, रति, अरति आदि भावों से दूर थे, दर्शन और ज्ञान-चरित्र से युक्त थे। ज्ञान ही उनका देह था, ज्ञान ही चेतना थी, ज्ञान ही ज्ञेय था, ज्ञान ही भोजन था, ज्ञान ही स्वभाव था, ज्ञान ही आत्मा थी, ज्ञान ही सब कुछ था। ज्ञान में ही सकल द्रव्य स्वभावतः झलकते थे। वे दश अतिशय आदि से सुशोमित थे।

(28)

तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का मोक्ष हो जाने पर हर्ष और शोक से युक्त होकर लोगों ने सपरिवार विस्मित रसासिक्त होकर उनकी पूजा की। तदनन्तर अगुरुचन्दन, घनसार (कपूर) आदि इकठ्ठा किया। जलध कुमार ने प्रणाम किया, सुरति गंधों से आकाश सुगन्धित हो गया, सुरगण नृत्य गायन करते हुए शोकमग्न हो गये। चतुर्विध संघ ने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिलकर तीर्थंकर के निर्वाण की प्रक्रिया पूरी की जय जयकार किया, अनाथ हो जाने का उन्हें आभास हुआ। परमेश्वर शिव सुख—परमधाम पाकर संसार के बंधन से सदैव के लिए मुक्त हो गये अतः वे परम मंगलकारी हैं और वन्दनीय हैं इत्यादि प्रकार से सुरों ने जिनस्तुति की पंचम कल्याण (मोक्ष कल्याण) मनाया और अगरू चन्दन से अंतिम संस्कार कर अपने-अपने स्थान चले गये।

(29)

ग्रन्थ शुद्ध अशुद्ध सार असार अनेक प्रकार होते हैं। जिनवाणी उन सभी को स्वीकार कर लेती है। मेरा ग्रन्थ भी ऐसा ही है। इस ग्रन्थ पर मुझे कोई अभिमान नही हैं। परमेश्वर सर्वज्ञ हैं। सारवाली बात तो उन्हीं के साथ जुड़ सकती है। कषाय को छोड़ने वाले ही मुनि और पण्डित होते हैं। गुर्जर देश में एक उम्मत्त नामक ग्राम है जहां दोंण नामक एक जिनधर्मी भव्य बंधु रहता है उसका ज्येष्ठ पुत्र बहुदेव, बहुदेव का लघुपुत्र श्रीकुमार श्रीकुमार का पुत्र सिहपाल था जो जिनपूजा, दानादि गुणों से मण्डित था। उसी सिद्धपाल के अनुरोध से इस ग्रन्थ की रचना हुई है। जब तक चंद्र और सूर्य हैं, सागर, कुलपर्वत और भूवलय हैं तब तक यह ग्रन्थ प्रकाशित रहेगा।

5273

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महत्वपूर्ण शब्द-सूची

अ—अं

अकलंक, 1, 1
अच्छ=निर्मल, 6-8, 3-2
अच्छरिय=आश्चर्य, 9-3
अज्जखंड=आर्यखण्ड, 4-20
अजितंजउ=अजितंजय, 3-10
अजियसेण=अजितसेन, 3-11, 4-10
अज्जु=आज, 5-14
अणिच्च भावना=अनित्य भावना, 9-9
अणंगु=अनंग, 4-10
अद्धु=आधा, 10-7
अमिय=अमृत, 1-11, 3-1
अरिंजय=देश का नाम, 4-5
अलका=नगरी का नाम, 3-10
असरणु=अशरण भावना, 9-8
असुइ=अशुचिभावना, 9-12
अहिणव=अभिनव, 8-11
आलसु=आलस्य, 2-8
आसव=मद्य 3-10; आश्रव 9-13
आसीविसु=सर्प, 6-16
इक्कु=एकत्व भावना, 9-11
उअरहु=सर्प, 8-9
उग्गिण्ण=उद्गीर्ण, 9-2
उत्तरगुण=उत्तरगुण, 9.16
उद्धउ=उद्धत नामक दूत, 4-11
उप्परि=ऊपर, 1-7
उप्पाडि=उखाड़कर, 5-15
उम्मत्तगाम=उन्मत्तग्राम, 11-29
उववण=उपवन, 5-3
एरावउ=एरावत, 10-14
एरिसु=इस प्रकार, 3-1
एयारह=ग्यारह, 10-17
अंगुट्ठ=अंगूठा, 8-23
अंजणगिरि=पर्वत नाम, 4-2, 5-10
अंतेउरु=अन्तःपुर, 2-1, 2-19, 5-4
अंवय=आम्र, 2-14

क

कइरव=कुमुद, 5-7
कच्छवि=कोई, 6-1
कच्छूरी=कस्तूरी, 9-13
कज्जल=काजल, 2-11, 5-11
कद्दम=कर्दम, 1-12
कणयकुंभ=कनककुभ, 9-4
कणयमाल=कनकमाला, 1-10
कणयरयण=स्वर्ण रत्न, 5-10

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कप्परुक्ख=कल्पवृक्ष, 2-3, 7-5
कम्मपासु=कर्मपाश, 2-3, 4-21
कम्मगंठि=कर्मग्रन्थि, 9-15
कल्लाण=कल्याण, 7-6
कलत्तु=कलत्र, 1-14, 3-2
कसाय=कषाय, 4-20
कालायरु=कालागरु, 1-8, 11-27
कालिंदी=यमुना, 7-3
काहल=कोयल, 5-9
कहिवि=किसी तरह, 2-12
कित्ति=कीर्ति, 3-12
किण्हलेस=कृष्णलेश्या, 6-18
किवाण=कृपाण, 4-6
किसाणु=कृश, 6-21
कुक्खि=कुक्षि, 2-18
कुम्मपुट्ट=कर्मपृष्ठ, 5-10
कुवि=कोई भी, 5-4
केयारपालि=खेत का रक्षक, 1-5
केवलणाण=केवल ज्ञान, 10-7, 11-23
कूटलेख=कूटलेख, 2-16
कोवीण=कोपीन, 4-10
कोसल=कौशल प्रदेश, 3-10
कोइल=कोयल, 2-14
कोव=कोप, 6-18
कंचुअ=कंचुक, 1-10
कंत=कांता, 1-10
कुंदकुंद=आचार्यनाम, 1-1

ख

खण=क्षणभर, 1-13
खत्तिधम्म=क्षत्रियधर्म, 3-7
खयरोय=क्षयरोग, 2-5
खल्ली=टांटि, 3-4
खाइय=खाई, 2-8
खिज्जइ=खीझता है, 6-18
खीरोवहि=क्षीरोदधि, 7-12, 8-23
खुहियउ=क्षुब्ध, 6-13
खोणी=पृथ्वी, 6-21
खंभ=खंभा, 1-15

ग

गब्भभर=गर्भभार, 1-10
गहवइ=गृहपति, 1-5
गउणं=गगन, 1-8
गणहर=गणधर, 1-1; 11-1; 11-25
गयणयल=गगनतल, 5-7
गल्ल=गला, 2-11
गहचक्कु=ग्रहचक्र, 6-3
गुज्जरदेश=गुर्जरदेश, 11-29
गुत्तकम्म=गुप्तकर्म, 5-13
गुत्तभेउ=गुप्तभेद, 5-4
गुणपहु=गुणप्रभ, 5-12
गुणव्वय=गुणव्रत, 2-17
गुणसेढि=गुणश्रेणी, 3-14; 5-13
गंधोवय=गंधोदक, 8-10; 9-4; 10-4

घ

घर=गृह, 3-1
घाइकम्म=घातिकर्म, 4-21

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

च

चउगइ=चतुर्गति, 4-20
चउदहरयण=14 रत्न, 4-16
चउरंगु सेण्णु=चतुरंगिणी सेना, 4-6
चक्कवट्टि=चक्रवर्ती, 3-16; 11-9
चक्कवाउ=चक्रवात, 8-14
चक्काउह=चक्रायुध, 4-15
चम्मचक्खु=चर्मचक्षु, 1-14
चडिया=चिड़िया, 4-7
चित्त=चैत्यवृक्ष, 10-12
चोईय=चोई, 5-5
चोरकम्मु=चौर्यकर्म, 2-4
चंदउरी=चन्दपुरी नगरी, 7-2
चंदकंति=चन्द्रकान्ति, 1-6
चंदप्पहसामि=चन्द्रप्रभस्वामी, 1-1
चंदरोइ=चंडरुचि, 1-13
चंडु = गेंद, 6-2

छ–ज

छेयालीसदोस=46 दोष, 10-2

जइ=यदि,
जयकुंजरु=हाथी का नाम, 5-10
जयवम्मा=जयवर्मा, 4-5
जयसिरि=जयश्री, 6-17
जयसिरिकंता=जयश्रीकांता, 4-5
जयसेणु=जयसेन, 4-10
जलवुव्व=जलवुद्वुद, 9-8
जसकित्ति = यश: कीर्ति, 1-1
जलकेलि = जलक्रीड़ा, 5-6
जलहि=जलधि, 5-11
जसनिहाणु=यशनिधान, 1-13
जहिं तहिं=जहाँ-तहाँ, 1-14
जारिस=जिस प्रकार, 4-17
जिट्ठमास=ज्येष्ठ मास, 4-15
जिणचरिउ=जिण चरित, 1-13
जिणभत्ति=जिन भक्ति, 1-3
जिणसेण=जिनसेन आचार्य, 1-1
जीउ=जीव, 4-20; 11-1
जीवरक्ख=जीवरक्षा, 2-4
जीवसमास=जीवसमास, 5-12
जुण्हसरिस=ज्योत्स्ना सदृश, 6-8
जुवराय=युवराज, 2-19; 3-12; 6-3
जोग पण्णारस=पन्द्रह योग, 4-20
जोयण=योजन, 8-17
जंगम=सजीव, 4-15
जंभाइ=जंभाई, 2-18
जबुदीउ=जंबुद्वीप, 1-4

ड

डिंभ=बालक, 2-12

ण

ण्हाणु=स्नान, 7-12
णउरि=अनन्तर, ,25
णरय भूमि=नरक भूमि, 11-4
णरवइ, णहवइ=नरपति, 1-2; 1-12
णवकोडि=नवकोटि, 102
णहपहु=नभपथ, 8-11
णायरजण=नागरजन, 2-2
णायवेलि=नागवल्लि, 2-7

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णिक्कंटउ = निष्कंटक, 6-4
णिज्जरु=निर्जरा, 9-15
णिच्चल=निश्चल, 5-3
णिट्ठीवण=थूक, 3-2
णिरु=नितराम, 32
णिरंजण=निरंजन, 8-21
णिहाणु=निधान, 2-13
णीलुप्पल=नीलोत्पल, 4-9
णेउर=नूपुर, 8-19
णेसप्पु=,4-17
णंदण=पुत्र, 2-13; वन 8-23
णंदीसरि = नन्दीश्वरद्वीप, 2-18

त

तवभूसणु=मुनि नाम, 3-15
तस=त्रस, 11-2
ताण=शिविका, 9-23
तारादेवी = नाम, 1-1
तित्थयर=तीर्थंकर, 9-18
तिल्लु=लोहा, 6-7
तेरहविहुचरित्त=तेरह प्रकार का चरित्र, 3-9

थ

थक्कु=थकना, 4-5
थण = स्तन, 1-11
थेरी=वृद्धा, 3-11
थोडइं=थोड़ा, 8-23

द

दगडय=पत्थर, 6-19
दप्पगंठि=दर्पग्रंथि, 7-7
दालिद्द=दारिद्रय, 9-5
दिणयरु=दिनकर, 6-12
दिसिपाल=दिक्पाल, 10-16
दुज्जणु = दुर्जन, 1-3
दुद्धरु = दुर्धर, 3-7
दुल्लहु=दुर्लभ, 8-11
दुह=दुःख, 1-15
देउकुमरसिंह=देवकुमारसिंह, 1-1
देवणंदि = देवनन्दि आचार्य, 1-1
दोहल, दोहलय = दोहद, 2-18; 8-2
दंडाउह=दंडायुध, 4-27
दंतधवणु = दंतधावन, 10-1

ध

धम्म = धर्म, 1-11; 9-17-18
धम्मचक्क=धर्मचक्र, 10-13-15
धम्मझाण=धर्म ध्यान, 1,2-3; 2-18
धम्मदेस = धर्मदर्शना, 2-3
धम्मलद्धि=धर्मलब्धि, 9-4
धरणीधरउ = धरणीधर, 4-10
धादय=धातृ खण्ड द्वीप, 3-10
धीवरि=ढीमर, 5-5

प

पउमनाभ=पद्मनाभ, 1-11, 1-15
पक्खाल=प्रक्षाल, 5-5
पच्चक्खुणाण=प्रत्यक्ष ज्ञान, 2-7
पडिचंद=प्रतिचन्द, 1-7
पडिबोहणु=प्रतिबोधन, 8-2
परक्कमु=पराक्रम, 3-8; 4-16
परमप्पय=परमात्मपद, 8-21
परदारगमणु = परदारगमन, 2-5
परवाइ = परवादी, 1-1
परमिट्ठी, परमेष्ठि=परमेष्ठी, 4-19; 5-12
परमेसरु=परमेश्वर, 9-6; 11, 9-6

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परियणु = परिजन, 3-11
परीसह = परीषह, 10-6
पिंगलु = पिंगल वर्ण,
परुसा=परुषा नामक अटवी, 4-1
पल्लंक=पलंग, 5-14
पलयमेहु=प्रलयमेध, 6-2
पविचारउ=प्रविचार, 11-18
पाइयकव्व=प्राकृत काव्य, 1-1
पाणायाम=प्राणायाम, 11-11
पायच्छित्त=प्रायश्चित्त, 5-16
परिगहपमाणु=परिग्रह परिमाण, 2-5
पियधम्मु = ब्रह्मचारी का नाम, 4-10
पिसुणजणु=चुगलखोर, 1-3
पिहुत्थणु=पीनस्तन, 7-8
पुक्खरद्धु=पुष्करार्ध, 2-7
पुट्ट=पृष्ठ, 3-1
पुप्फयंत=पुष्पदंत, 1-1, 7-10
पुखरि = पुष्कर, 2-9
पुव्वदेसु=पूर्व देश, 7-1
पुव्वभवंतर=पूर्व भवान्तर, 2-7, 6-1
पुव्वविदेह=पूर्व विदेह, 11-20
पुहवी = पृथ्वी, 2-13
पुहवीपालु=पृथ्वीपाल, 6-13
पुछि=पूंछ, 6-2
पोमराय=पद्मराज, 7-3; 10-9
पोमह=पुष्पनाली, 11-3
पोसहु=प्रोषध, 2-6
पोरंगण=पौरांगण, 3-9
पंचमहव्वय=पंच महाव्रत, 5-12, 5-12; 10-1
पंचयठाण = पंचम स्थान, 5-12
पंचाचार=पांचविध, आचार 5-12
पंचाणुव्वय=पंचाणुव्रत, 5-12
पचिंदियसुह=पंचेन्द्रियसुख, 1-11
पडुयवण=पाण्डुकवन, 8-15

फ

फुड, फुट्टी=स्फुट, 6-7, 3-4
फेणु=जल फेन, 9-8

ब

बारहवय=बारह व्रत, 2-16
बारह भावना, 9 6-12

भ

भरह=भारतवर्ष,
भल्ल = भाला.
भुवंगु=भुजंगु, 6-9
भोयोपभोय=भोगोपभोग, 2-6

म

मज्जारु = मार्जार, 3-9
मणिभित्ति=मणि दीवाल, 1-7
मणुय=मनुज, 5-11
मणोरह=मनोरथ, 2-19, 3-13, 6-8
मउणबाण=मदनवाण, 5-4
मसिलिंपण = स्याही का लेप, 1-6
महासेउ=महसेन राजा, 7-4
महुपाण = मधुपान, 2-2
महिंद=महेन्द्र, 4-5
मागहवाणि=प्राकृत भाषा, 11-1
माण=मान, 6-19
माणखंभ=मानस्तम्भ, 10-10
माया=माया, 6-20
मासूलि=नकुल, 8-5
मिच्छह=मिथ्यात्व, 5-12, 9-14; 8-21

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिसि=बहाना, 5-6
मुक्कु=मुक्का, 4-3
मुक्खु=मोक्ष, 1-15
मुग्गार=मुद्गर, 4-2
मुच्छा=मूर्छा, 3-13
मुत्ताहलु=मुक्ताफल, 1-2; 6-11
मुणिंदु=मुनीन्द्र, 2-4
मुहचंद=मुखचंद्र, 2-8
मुंडु=शिर, 6-15
मूलगुण=मूलगुण, 2-6
मेयणि, मेइणि=मेदिनी, 1-16, 4-8
मेरु=सुमेरु पर्वत, 8-22
मोक्ख मग्गु=मोक्ष मार्ग, 2-3
मंगलवइ=मंगलावती देश, 1-5

र

रक्खवालु=रक्षपाल, 9-7
रज्ज=राज्य, 1-15
रत्तुप्पलु=रक्तोत्पल, 2-11
रयपडलुग्ग=रजयटल, 8-15
रयण=रत्न, 1-15
रवि=सूर्य नामक कृषक, 4-4
रविपुर=नगर नाम, 4-10
रायकण्ण=राजकर्ण, 2-19
रिउ=रिपु, 1-10
रुद्दकोडि=रूद्रकोटि, 1-1
रुहिर=रुधिर, 5-10

ल

लक्खण=लक्षण, 1:11
लक्खणादेवी=लक्ष्मण देवी, 7-7
लोयणु=लोचन, 5-10
लोयत्तउ=त्रिलोक, 5-13
लोहु=रक्त, 6-21

व

वइवाविच्च=वैय्यावृत्ति, 6-24
वग्घ=व्याघ्र, 8-6
वणमाला=वनमाला, 5-4
वणवालु=वनपाल, 2-1
वय=व्रत, 1-5
वसहु=वृषभ, 8-9
वसंतमासु=वसंतकाल, 2-16, 5-3
वायलु=सर्प, 4-15
विउलुंपुरु=विपुलपुर, 4-5
विच्छर=विस्तर, 3-1
विजयजत्त=विजय यात्रा,
विज्जाहर=विद्याधर, 4-12, 8-7
विज्जुलरयणु=विद्युत् रत्न, 4-16
वित्थरेण=विस्तार से, 8-15
विंतर=व्यंतरदेव, 11-13
विम्यिह, विम्हिउ=विस्मित, 4-4
विंभियरस=विस्मयरस, 11-28
विसूरियउ=विषाद किया, 8-10
वेउव्वण=वैक्रियक देव, 7-17
वेरग्ग=वैराग्य, 3-1; 1-14

स

सग्गु=स्वर्ग, 9-6
सज्झाय=स्वाध्याय, 5-12
संत्तगरज्जु=सप्तांगराज्य, 9-6
संततत्त=सप्त तत्त्व, 11-1
सत्तभंगि=सप्तभंगि, 8-21
सच्छ=स्वच्छ, 5-12
सावयवय=श्रावक व्रत, 5-16
सिक्खावय=शिक्षा व्रत, 2-17, 2-6
सिद्धपाल=राजा का नाम, 1-1
सिद्धसेण=आचार्य का नाम, 1-1

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्मत्त दोस=सम्यक्त्व दोष, 2-6
सद्दागम=शब्दागम, 9-1
समचउरसु संठाए=समचतुस्र संस्थान, 8-3
समवसरणि=समवशरण, 4-18; 10-9-10; 11-26
समिदि=समिति, 10-6
सर=अष्टापद, 8-9
सरपंति=वाण पंक्ति, 4-13
सरिच्छ=सदृश, 4-19; 4-12
सल्लेहण=सल्लेखना, 2-6
ससि=शशि नामक कृषक, 4-4
ससिरुइ=शशिरुचिदेव, 9-6
ससिपह=शशिप्रभ, 4-5
सहाउ=स्वभाव, 5-13
सज्जणगुण=सज्जनगुण, 1-2
समंतभद्द=आचार्य नाम, 1-1
सरसइ, सरस्सई=सरस्वती, 1-1, 2-1, 1-9
सत्तंगुरज्ज=राज्य के सात अंग, 1-6
सद्दंसण मेरु=सुदर्शन मेरु, 1-4
सायारुधम्म=सागारधर्म, 2-8, 2-4, 2-18, 2-16
सरिसु=सदृश, 1-7
साधुधम्मु=साधुधर्म, 7-15
साणु=श्वान (कुत्ता), 3-4
सामि=स्वामी, 6-4
सीवर=सीकर, 5-6
सूयार=सुअर 4-15
सेसवि=सहस्राक्षि इन्द्र, 8-11
सोमदतु=सोमदत्त, 10-4
सोय=थोक,

सिरिकुक्खि=श्री कुक्षि ,2-15
सिरिकंत=श्रीकांत, 2-16, 2-10
सिरिधम्मु=श्रीधर्म, 2-19
सिरिदेवी=श्रीदेवी, 7-11
सिरियह=श्रीप्रभ, 3-6
सिरिपुर=श्रीपुर, 4-4
सिरिधम्मराउ – श्रीधर्म, 3-6
सिरिहरु=श्रीधर मुनि, 2-1, 1-16, 6-22
सिरि सिरिपुर=श्री श्रीपुर, 2-8
सिरिसेण=श्रीषेण, 3-1, 2-9
सिसिराणिला=शिशिरानल, 5-8
सिरिफल=श्रीफल, 1-10
सिवपिण्डि=शिव पिण्डि, 1-1
सिवरस=शिवरस, 11-27
सिंगारु=शृंगार, 1-14
सुरवइ=सरस्वती,
सुअंधि=सुगन्धि देश, 2-7
सुक्कलेस=शुक्ललेश्या, 6-26
सुक्खु=शुक्ल,
सुधम्म मुणिवा=सुधर्म मुनि,
सुण=श्वान कुत्ता,
सुणंदा=सुगंधा, 2-15
सुरडियवण=सुरभित, वन 2-1
सुवण्णाह=स्वर्णनाभ, 6-22
सुहड=सुभट, 6-15
सुहकित्ति=शुभकीर्ति, 3-15
सोहग्ग=सौभाग्य,
संगर=युद्ध, 4-5
संजमबारह=संयम बाहर,
संठवियउ=आच्छादित, 8-11
संसार=लोक. 1-13-14, 9-10

ह

हउ=मैं, 3-5
हवकमित्ति=हकाल मात्र से,
हिरण्णु=हिरण्य देव, 4-4
हुबंडकुल=कुल नाम, 1-1

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तावनागत शब्द-सूची

अपभ्रंश विशेषताएं, 37-48
अलंकार, 34
आल्हादपुर, 11
उम्मत्तगाम, 13
कथा भाग की तुलना, 28
कथावस्तु, 14
कारक रूप, 43-44
क्रियारूप, 45
कृदन्त, 45
ग्रन्थकार परिचय, 12
चंद्रप्रभ चरित पर निर्मित साहित्य, 2
छन्दयोजना, 35
जैन चरित काव्य परम्परा एवं विशेषताएँ, 1
तद्धित प्रत्यय, 45
दक्षिणी अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएं, 45
धार्मिक-सामाजिक संदर्भ, 36
प्रति परिचय, 3
पश्चिमी अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएँ, 46
पाठ संपादन पद्धति, 11
पूर्ववर्ती और समकालीन कवि, 14
पूर्वी अपभ्रंश की सामान्य विशेषताएं, 46
भाषा और व्याकरण, 36-48
महाकाव्यत्व, 32
यशःकीर्ति, 12
रस, 35
राणा संग्राम, 6
रामचन्द्र, 6
विशेषण और अव्यय, 44
वोहीथ, 9
स्वर-व्यंजन, 32-43
सर्वनाम, 44
सिद्धपाल, 5
सूर्यमल, 9
सूरीताण, 9
सप्तभव, 34
संख्यावाचक शब्द, 44

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्टके महत्वपूर्ण प्रकाशन

१. जैन तर्कशास्त्र में अनुमान-विचार (न्याय)	अप्राप्य
२. देवागम अपरनाम आप्तमीमांसा (दर्शन)	५-००
३. युगवीर-निबन्धावली भाग—१ (संस्कृति)	अप्राप्य
४. युगवीर-निबन्धावली भाग—२ (संस्कृति)	१०-००
५. प्रमाण-नय-निक्षेपप्रकास (सिद्धान्त)	३-००
६. लोक-विजय-यन्त्र (ज्योतिष)	१२-००
७. नयी किरण : नया सवेरा (धार्मिक लघु उपन्यास)	३-५०
८. प्रमाण-परीक्षा (न्यायशास्त्र)	१०-००
९. रत्नकरण्डकश्रावकाचार	अप्राप्य
१० जैनधर्म परिचय (धर्मशास्त्र)	२-००
११. आरम्भिक जैनधर्म (धर्मशास्त्र)	१-५०
१२. करणानुयोग-प्रवेशिका (सिद्धान्त)	अप्राप्य
१३. द्रव्यानुयोग-प्रवेशिका (सिद्धान्त)	३-०६
१४. चरणानुयोग-प्रवेशिका (सिद्धान्त)	अप्राप्य
१५. महावीर-वाणी (सिद्धान्त संकलन)	अप्राप्य
१६. मंगलायतनम् (भ० महावीर का संस्कृत-गद्य में चरित)	१०-००
१७. ऐसे थे हमारे गुरूजी (डॉ० नेमीचन्द्र शास्त्री का जीवन-वृत्त)	३-००
१८. जैनदर्शनका व्यावहारिक पक्ष : अनेकात्तवाद	२-००
१९. भगवान महावीर का जीवन-वृत्त	१-००
२०. जैनदर्शन और प्रमाणशास्त्र परिशीलन	७५-००
२१. समाधिमरणोत्साहदीपक (द्वि० सं०)	६-००
२२. तत्त्वानुशासन (ध्यानशास्त्र)	अप्राप्य
२३. प्रमेय-कण्ठिका (न्याय)	३-००
२४. जैन तत्त्वज्ञान-मीमांसा	५०-००
२५. द्वापर का देवता : अरिष्टनेमि	१२-००
२६. श्रावकाचार	४-००
२७. आराधनासार सटीक (हिन्दी अनुवाद सहित)	१०-००
२८. सम्यक्त्व-चिन्तामणि	३०-००
२९. समन्तभद्र-ग्रन्थावली	प्रेस में
३०. पत्र-परीक्षा	,,
३१. पर्याएँ क्रमवद्ध भी होती हैं और अक्रमबद्ध भी	४-५०
३२. सिद्धान्त-सार	४-५०
३३. ज्ञान-सार	४-५०
३४. भाग्य और पुरुषार्थ : एक नया अनुचिन्तन	४-००
३५. आप्त-मीमांसा—देवागमस्तव—पद्यानुवाद	७-००
३६. सम्यग्ज्ञान-चन्द्रिका	१५-००
३७. चंदप्पह चरिउ	२५.००

मिलने का पता : **वीर-सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट**

बी० ३२/१३ बी, नरियाँ, वाराणसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi